BASO (N) 222

सामाजिक अनुसंधान विधियाँ
Social Research Methods

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग, ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी-263139

नैनीताल, (उत्तराखण्ड़)

फोन न0- 05946- 261122, 061123

Toll free No.: 18001804025

Email: info@uou.ac.in Website: https://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष	संयोजक
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. **प्रो. जे.पी. पचौरी,** (सदस्य) कुलपति, हिमालयन, विश्वविद्यालय, जीवनवाला, देहरादून
2. **प्रो. सी.सी.एस. ठाकुर,** (सदस्य) प्रो. (से.नि.), रानी दुर्गावती, विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश
3. **प्रो. रबीन्द्र कुमार,** (सदस्य) इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली
4. **प्रो. रेनू प्रकाश,** (सदस्य) समन्वयक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
5. **डॉ. भावना डोभाल,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
6. **डॉ. गोपाल सिंह गौनिया,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. रेनू प्रकाश, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	इकाई संख्या
प्रो. अरविन्द जोशी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश	1, 2
डॉ. रवींद्र सैनी सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	3, 5
डॉ. घनश्याम जोशी सहायक प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड़	10
डॉ. योगेन्द्र चन्द्र उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	13, 11, 12, 15, 16
डॉ. जे. पी. भट्ट राजकीय महाविद्यालय, रामनगर, उत्तराखण्ड़	6, 14
इकाई संकलन	4, 7, 8, 9

सम्पादन

प्रो. रेनू प्रकाश	शैलजा	डॉ. किशोर कुमार
समन्वयक	असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी),	असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी),
समाजशास्त्र विभाग	समाजशास्त्र विभाग	समाजशास्त्र विभाग
उ. मु. वि. वि., हल्द्वानी	उ. मु. वि. वि., हल्द्वानी	उ. मु. वि. वि., हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन. :

कापीराइट: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139 **प्रकाशन वर्ष: 2025**

प्रकाशक: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139

नोट: सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ या किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। **मुद्रित प्रतियॉ-**

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पंचम सेमेस्टर (Fifth Semester) BASO (N) 222

MINOR PAPER 4 CREDITS

अनुक्रमणिका

समाजिक अनुसंधान विधियाँ

Social Research Methods

खण्ड-1

सामाजिक अनुसंधान चरण प्रकार एवं शोध प्रारूप

Social Research Methods

इकाई-1 सामाजिक अनुसंधान अर्थ परिभाषा उद्देश्य व प्रकृति 1-7
Social Research Meaning Definition Objectives & Nature

इकाई-2 सामाजिक शोध के चरण 8-23
Step Of Social Research

इकाई-3 अनुसंधान के प्रकार: विशुद्ध, व्यावहारिक तथा क्रियात्मक 24-38
Types Of Research Basic, Applied & Action

इकाई-4 शोध प्रारूप 39-58
Research Design

खण्ड-2

सामाजिक अनुसंधान सर्वेक्षण एवं उपकल्पना

Social Research Survey And Hypothesis

इकाई-5 सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक सर्वेक्षण में अंतर 59-70
Difference Between Social Research & Social Survey

इकाई-6 उपकल्पना: अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व 71-82
Hypothesis Meaning Need & Importance

इकाई-7 निदर्शन 83-108
Sampling

खण्ड-3

सूचनाओं के स्रोत एवं तथ्य संकलन विधि

Source Of Information and Methods of Data Collection

इकाई-8 तथ्य संकलन के स्रोत: प्राथमिक एवं द्वितीयक 109-1631
Source Of Data Collection Primary and Secondary

इकाई-9	अवलोकन Observation	132-152
इकाई-10	साक्षात्कार Interview	153-167
इकाई-11	अनुसूची Schedule	168-184
इकाई-12	पश्नावली Questionnaire	185-202
इकाई-13	वैयक्तिक अध्ययन Case Study	203-217

खण्ड-4

तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीयन विधि

Classification and Tabulation Method of Data

इकाई-14	तथ्यों के वर्गीकरण व सारणीयन Classification & Tabulation of Data	218-233
इकाई-15	सांख्यिकीय Statistics	234-255
इकाई-16	केन्द्रीय प्रवृत्तियों का मापन Measurement of Central Tendencies	256-289

इकाई-1 सामाजिक अनुसंधान: अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य व प्रकृति
Social Research: Meaning, Definition, Objectives and Nature

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 अध्ययन के उद्देश्य

1.2 सामाजिक शोध का अर्थ

1.3 सामाजिक शोध के उद्देश्य

1.4 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता

1.5 सार-संक्षेप

1.6 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1.7 अभ्यास-प्रश्न

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 प्रस्तावना

सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए समाजशास्त्रीय ज्ञान नितान्त आवश्यक है। समाजशास्त्रीय ज्ञान सामाजिक शोधों से जन्म लेता है तथा निरन्तर चलने वाली शोध प्रक्रियाओं से समृद्ध होता जाता है। सामाजिक संरचनाओं एवं पद्धतियों के अध्ययन के लिए सामाजिक शोध की वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसमें मनुष्यों के द्वारा, मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है, अतः विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। इस सन्दर्भ में बार्न्स (1977: 2-3) का उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है। वह कहता है कि, ''सामाजिक शोध का विशिष्ट गुण अनिवार्यतः उस गतिविधि में पाया जाता है, जिसमें मनुष्यों द्वारा स्वयं मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है, और इस तरह की गतिविधि के साथ जुड़े नैतिक प्रश्नों का उन्हें सामना करना पड़ता है। ये नैतिक प्रश्न सामाजिक विज्ञानों में अन्तर्निहित, सर्वगत और अपरिहार्य हैं।''

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको सामाजिक शोध/अनुसन्धान के अर्थ, उसके क्षेत्र एवं सार्थकता तथा उद्देश्यों से अवगत कराना है। सामाजिक शोध विविध चरणों से गुजरता है। दूसरे शब्दों में, शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए क्रमशः विविध चरणों को पार करना होता है। प्रस्तुत इकाई में सामाजिक शोध के विविध चरणों से भी आपको परिचित कराया जायेगा ताकि आप यह समझ सकें कि वास्तव में सामाजिक शोध क्या होता है और कैसे किया जाता है। आपकी रुचि सामाजिक शोध में बढ़े और आप एक अच्छे अनुसंधानकर्ता बनें इसी आशा के साथ इस इकाई को सरलतम रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.1 अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए निम्नलिखित को समझना संभव होगा:

- सामाजिक शोध से आशय,
- शोध के उद्देश्यों, क्षेत्र एवं सार्थकता तथा
- शोध प्रक्रिया के चरण।

1.2 सामाजिक शोध का अर्थ

सामाजिक शोध के अर्थ को समझने के पूर्व हमें शोध के क्षेत्र को समझना आवश्यक है। मनुष्य स्वभावतः एक जिज्ञासु प्राणी है। अपनी जिज्ञासु प्रकृति के कारण वह समाज एवं प्रकृति में घटित विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में विविध प्रश्नों को खड़ा करता है, स्वयं उन प्रश्नों के उत्तर ढूढ़ने का प्रयत्न भी करता है और इसी के साथ शोध प्रारम्भ होती है। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के प्रयोग द्वारा प्रश्नों के उत्तरों की खोज करना है। स्पष्ट है कि किसी क्षेत्र विशेष में नवीन ज्ञान की खोज या पुराने ज्ञान का पुनः परीक्षण अथवा दूसरे तरीके से विश्लेषण कर नवीन तथ्यों का उद्घाटन करना शोध कहलाता है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है, जिसमें तार्किकता, योजनाबद्धता एवं क्रमबद्धता पायी जाती है। जब यह शोध सामाजिक क्षेत्र में होता है तो उसे सामाजिक शोध कहा जाता है। प्राकृतिक एवं भौतिक विज्ञानों की तरह सामाजिक शोध भी वैज्ञानिक होता है क्योंकि इसमें वैज्ञानिक विधियों की सहायता से निष्कर्षों पर पहुँचा जाता है। वैज्ञानिक विधियों से यहाँ आशय मात्र यह है कि किसी भी सामाजिक शोध को पूर्ण करने के लिए एक तर्कसंगत शोध प्रक्रिया से गुजरना होता है। शोध में वैज्ञानिकता का जहाँ तक प्रश्न है, इस पर भी विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। रीड (1995:2040) का मानना है कि, ‘‘शोध हमेशा वह नहीं होता जिसे आप ‘वैज्ञानिक’ कह सकें। शोध कभी-कभी उपयोगी जानकारी एकत्र करने तक सीमित हो सकता है। बहुधा ऐसी जानकारी किसी कार्य विशेष का नियोजन करने और महत्वपूर्ण निर्णयों को लेने हेतु बहुत महत्वपूर्ण

होती है। इस प्रकार के शोध कार्य में एकत्र की गयी सामग्री तदनन्तर सिद्धान्त निर्माण की ओर ले जा सकती है।''

सामाजिक शोध को और भी स्पष्ट करने के लिए हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं का उल्लेख कर सकते हैं। पी.वी. यंग (1960:44) के अनुसार, ''हम सामाजिक अनुसंधान को एक वैज्ञानिक कार्य के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों की खोज या पुराने तथ्यों को, और उनके अनुक्रमों, अन्तर्सम्बन्धों, कारणों एवं उनको संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों को खोजना है।''

सी.ए. मोज़र (1961:3) ने सामाजिक शोध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं।'' वास्तव में देखा जाये तो, 'सामाजिक यथार्थता की अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रियाओं की व्यवस्थित जाँच तथा विश्लेषण सामाजिक शोध है।''

पी.वी. यंग (1960:44) के अनुसार स्पष्ट है कि विद्वानों ने सामाजिक शोध को अपनी-अपनी तरह से परिभाषित किया है। उन सभी की परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन है, जिसमें कार्य-कारण सम्बन्धों के आधार पर व्याख्या की जाती है। सामाजिक शोध की प्रासंगिकता तभी है जब किसी निश्चित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक संदर्भ संरचना के अन्तर्गत उसे सम्पादित किया जाये। सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता किसी अध्ययन समस्या से सम्बन्धित दो आधारभूत शोध प्रश्नों को उठाता है- **(i)** क्या हो रहा है? और **(ii)** क्यों हो रहा है? अध्ययन समस्या का 'क्या हो रहा है?' प्रश्न का यदि कोई उत्तर खोजता है और उसे देता है तो उसका शोध कार्य विवरणात्मक शोध की श्रेणी में आता है। 'क्यों हो रहा है?' 'का उत्तर देने के लिए उसे कारणात्मक सम्बन्धों की खोज करनी पड़ती है। इस प्रकार का शोध कार्य व्याख्यात्मक शोध कार्य होता है जो कि सिद्धान्त में परिणत होता है। यह सामाजिक घटनाओं के कारणों पर प्रकाश डालता है तथा विविध परिवर्त्यों के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट करता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. किसी समस्या से सम्बन्धित दो आधारभूत शोध प्रश्न कौन-कौन से है?

.....

.....

.....

.....

.....

1.3 सामाजिक शोध का उद्देश्य

सामाजिक शोध का प्राथमिक उद्देश्य चाहे वह तात्कालिक हो या दूरस्थ-सामाजिक जीवन को समझना और उस पर अधिक नियंत्रण पाना है (पी. वी. यंग 1960: 44)। इसका तात्पर्य यह नहीं समझा जाना चाहिए कि ''सामाजिक शोधकर्ता या समाजशास्त्री कोई समाजसुधारक, नैतिकता का प्रचार-प्रसार करने वाला या तात्कालिक सामाजिक नियोजनकर्ता होता है। बहुसंख्यक लोग समाजशास्त्रियों से जो अपेक्षा रखते हैं, वह वास्तव में समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के बाहर की होती है। इस सन्दर्भ में पी. वी. यंग (1960:75) ने उचित ही लिखा है कि 'सामाजिक शोधकर्ता न तो व्यावहारिक समस्याओं और न तात्कालिक सामाजिक नियोजन, उपचारात्मक उपाय, या सामाजिक सुधार से सम्बन्धित होता है। वह प्रशासकीय परिवर्तनों और प्रशासकीय प्रक्रियाओं के परिष्करण से भी सम्बन्धित नहीं होता। वह अपने को जीवन और कार्य, कुशलता और कल्याण के पूर्व स्थापित मापदण्डों द्वारा निर्देशित नहीं करता है और सामाजिक घटनाओं को सुधार की दृष्टि से इन मापदण्डों के परिप्रेक्ष्य में मापता भी नहीं है। सामाजिक शोधकर्ता की मुख्य रुचि सामाजिक प्रक्रियाओं की खोज और विवेचन, व्यवहार के प्रतिमानों, विशिष्ट सामाजिक घटनाओं और सामान्यतः सामाजिक समूहों में लागू होने वाली समानताओं एवं असमानताओं में होती है।

सामाजिक शोध के कुछ अन्य उद्देश्य पुरातन तथ्यों का सत्यापन करना, नवीन तथ्यों को उद्घाटित करना परिवर्त्यों-अर्थात् विभिन्न चरों के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध ज्ञात करना, ज्ञान का विस्तार करना, सामान्यीकरण करना तथा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सिद्धान्त का निर्माण करना हैं। सामाजिक शोध से प्राप्त सूचनाएँ सामाजिक नीति निर्माण अथवा जीवन के गुणवत्ता में सुधार अथवा सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकती हैं। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो इसे उपयोगितावादी कहा जा सकता है।

गुडे तथा हाट (1952) ने सामाजिक अनुसंधान को दो भागों- सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक में रखते हुए इसके उद्देश्यों को अलग-अलग स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि सैद्धान्तिक सामाजिक अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य नवीन तथ्यों को ज्ञात करना, सिद्धान्त की जाँच करना, अवधारणात्मक स्पष्टीकरण में सहायक होना तथा उपलब्ध सिद्धान्तों को एकीकृत करना है। व्यावहारिक अनुसन्धान का उद्देश्य व्यावहारिक समस्याओं के कारणों को ज्ञात करना और उनके समाधानों का पता लगाना एवं नीतिनिर्धारण हेतु आवश्यक सुधार प्रदान करना होता है।

स्वप्रगति परीक्षण

2. सामाजिक शोध का प्राथमिक उद्देश्य बताइए।

.....

.....

.....

.....

1.4 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता:

समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। स्वाभाविक है कि सामाजिक शोध का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक होता है। सामाजिक शोध के विस्तृत क्षेत्र को कार्ल पियर्सन (1937: 16) के इस कथन से आसानी से समझा जा सकता है कि, ''सामाजिक शोध का क्षेत्र वस्तुतः असीमित है, और शोध की सामग्री अन्तहीन। सामाजिक घटनाओं का प्रत्येक समूह, सामाजिक जीवन का प्रत्येक पहलू, पूर्व और वर्तमान विकास का प्रत्येक चरण सामाजिक वैज्ञानिक के लिए सामग्री है।'' पी.वी. यंग (1977: 34-98) ने सामाजिक शोध के क्षेत्र की व्यापक विवेचना करते हुए विविध विद्वानों के अध्ययनों यथा कूले, मीड थामस, नैनकी, पार्क, बर्गेस, लिण्डस्, सीण् राइट मिल्स, एंगेल, कोमोरोस्की, मर्डाल, स्टॉफर, मर्डोक, मर्टन, गौर्डन, आलपोर्ट, ब्लूमर, बेल्स, मैज का विवरण प्रस्तुत किया है।

एक समाजशास्त्री सामाजिक जीवन की किसी विशिष्ट अथवा सामान्य घटना को शोध हेतु चयन कर सकता है। सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत मानव समाज व मानव जीवन के सभी पक्ष आते हैं। समाजशास्त्र की विविध विशेषीकृत शाखाओं यथा- ग्रामीण समाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र, औद्योगिक समाजशास्त्र, वृद्धावस्था का समाजशास्त्र, युवाओं का समाजशास्त्र, चिकित्सा का समाजशास्त्र, विचलन का समाजशास्त्र, सामाजिक आन्दोलन, सामाजिक बहिष्करण, सामाजिक परिवर्तन, विकास का समाजशास्त्र, जेण्डर स्टडीज, कानून का समाजशास्त्र, दलित अध्ययन, शिक्षा का समाजशास्त्र, परिवार एवं विवाह का समाजशास्त्र इत्यादि-इत्यादि से सामाजिक शोध का व्यापक क्षेत्र स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

सामाजिक शोध के उपरोक्त विस्तृत क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कदापि गलत न होगा कि एक विस्तृत सामाजिक क्षेत्र के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करके सामाजिक शोध अज्ञानता का विनाश करता है। जब हम वृद्धों की समस्याओं, मजदूरों के शोषण और उनकी शोचनीय कार्यदशाओं, बाल मजदूरी, महिला कामगारों की समस्याओं, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बेकारी इत्यादि पर सामाजिक शोध करते हैं, तो उसके प्राप्त परिणामों से न केवल समाज कल्याण के क्षेत्र में सहायता प्राप्त होती है अपितु सामाजिक नीतियों के निर्माण के लिए भी आधार उपलब्ध होता है। विविध सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित शोध कार्य कानून निर्माण की दिशा में भी योगदान करते हैं। सामाजिक शोध से सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक समझ विकसित होती है, कार्य-कारण सम्बन्ध ज्ञात होते हैं और अन्ततः विषय की उन्नति होती है। सामाजिक शोध न केवल सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है, अपितु सामाजिक-आर्थिक प्रगति में भी सहायक होता है। सूचना क्रान्ति के इस युग में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने समाजशास्त्रीय शोध के क्षेत्र को बढ़ा दिया है। पुराने विचार और सिद्धान्त अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। नवीन परिस्थितियों ने जटिल सामाजिक

यथार्थ को नये सिद्धान्तों एवं विचारों से समझने के लिए बाध्य कर दिया है। सामाजिक शोध के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्व का ही परिणाम है कि आज नीति निर्माता, कानूनविद्, पत्रकारिता जगत, प्रशासक, समाज सुधारक, स्वैच्छिक संगठन, बौद्धिक वर्ग के लोग इससे विशेष अपेक्षा रखते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

3. सामाजिक शोधकर्ता की मुख्य रूचि किसमें होती है?

.....

.....

.....

.....

4. सैद्धान्तिक सामाजिक अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य क्या है?

.....

.....

.....

.....

1.5 सार-संक्षेप

सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन सामाजिक शोध है, जिसके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उद्देश्य होते हैं। शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध चरणों से गुजरती हुई पूर्ण होती है। वस्तुनिष्ठता से युक्त सामाजिक शोध से न केवल विषय की समझ विकसित होती है, अपितु नवीन ज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ यह सामाजिक नियन्त्रण, समाज कल्याण, सामाजिक-आर्थिक प्रगति, नीति-निर्माण इत्यादि में भी सहायक होता है। आपको इस इकाई से जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसकी सहायता से आस-पास की किसी एक लघु शोध समस्या का चयन करना है तथा शोध के बताये गये चरणों का अनुसरण करते हुए लघु रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है।

1.6 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता किसी अध्ययन समस्या से सम्बन्धित दो आधारभूत शोध प्रश्नों को उठाता है- (i) क्या हो रहा है? और (ii) क्यों हो रहा है? अध्ययन समस्या का 'क्या हो रहा है?' प्रश्न का यदि कोई उत्तर खोजता है और उसे देता है तो उसका शोध कार्य विवरणात्मक शोध की श्रेणी में आता है। 'क्यों हो रहा है?' 'का उत्तर देने के लिए उसे कारणात्मक सम्बन्धों की खोज करनी पड़ती है।

2. सामाजिक शोध का प्राथमिक उद्देश्य चाहे वह तात्कालिक हो या दूरस्थ-सामाजिक जीवन को समझना और उस पर अधिक नियंत्रण पाना है (पी. वी. यंग 1960: 44)।

3. सामाजिक शोधकर्ता की मुख्य रुचि सामाजिक प्रक्रियाओं की खोज और विवेचन, व्यवहार के प्रतिमानों, विशिष्ट सामाजिक घटनाओं और सामान्यतः सामाजिक समूहों में लागू होने वाली समानताओं एवं असमानताओं में होती है।

4. सैद्धान्तिक सामाजिक अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य नवीन तथ्यों को ज्ञात करना, सिद्धान्त की जाँच करना, अवधारणात्मक स्पष्टीकरण में सहायक होना तथा उपलब्ध सिद्धान्तों को एकीकृत करना है।

1.7 अभ्यास-प्रश्न

1. सामाजिक शोध किसे कहते हैं ?
2. सामाजिक शोध के उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
3. सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
4. सामाजिक शोध की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
5. सामाजिक शोध के चरणों का उल्लेख कीजिए।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

शोध- किसी क्षेत्र विशेष में नवीन ज्ञान की खोज या पुराने ज्ञान का पुनः परीक्षण अथवा दूसरे तरीके से विश्लेषण कर नवीन तथ्यों का उद्घाटन करना शोध कहलाता है।

सामाजिक शोध- सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- यंग, पी. वी., 'साइण्टिफिक सोशल सर्वेज़ एण्ड रिसर्च, इण्डियन रिप्रिन्ट्स, फोर्थ प्रिन्टिंग, प्रेन्ट्सि हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977
- मोज़र, सी. ए, 'सर्वे मेथड्स इन सोशल इन्वेस्टिगेशन, न्यूयार्कः दी मैकमिलन कम्पनी, 1961.
- डे एण्ड हाट, 'मेथड्स ऑफ सोशल रिसर्च, मैकग्रा-हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1952.
- सारन्ताकोस, एस. 'सोशल रिसर्च', मैकमिलन: लन्दन, 1998.

इकाई-02 सामाजिक शोध के चरण

Steps of Social Research)

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 अध्ययन के उद्देश्य

2.2 सामाजिक शोध के चरण

2.3 सार-संक्षेप

2.4 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

2.5 अभ्यास-प्रश्न

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान का बीजारोपण वहीं से होता है जहाँ वह अपनी व्याख्या के संबंध में संदेह प्रकट करना प्रारंभ करता है। अनुसंधान की जो विधियाँ प्राकृतिक विज्ञानों में सफल हुई हैंए उन्हीं के प्रयोग द्वारा सामाजिक घटनाओं की समझ उत्पन्न करनाए घटनाओं में कारणता स्थापित करनाए और वैज्ञानिक तटस्थता बनाए रखनाए सामाजिक अनुसंधान के मुख्य लक्षण हैं। ऐसी व्याख्या प्रस्तुत नहीं करनी होती है जो केवल अनुसंधानकर्ता को संतुष्ट करेए बल्कि ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करनी होती है जो आलोचनात्मक दृष्टि वालों या विरोधियों का संदेह दूर कर सके। इसके लिए निरीक्षण को व्यवस्थित करनाए तथ्य संकलनए और तथ्य.निर्वचन के लिए विशिष्ट उपकरणों का प्रयोग करनाए और प्रयोग में आने वाले प्रत्ययों (Variables) को स्पष्ट करना आवश्यक है। सामाजिक शोध के सफल एवं उचित क्रियान्वयन के लिए सामाजिक शोध के सटीक चरणों का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है।

2.0 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सामाजिक शोध के विभिन्न चरणों के बारे में विस्तारपूर्वक जान सकेंगे।

2.2 सामाजिक शोध के चरण

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य यह है कि इसमें समस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। अध्ययन के निष्कर्ष पर इस प्रकार पहुँचा जाता है कि उसकी वैषयिकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता होती है। शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध सोपानों से गुजरती है। इन्हें सामाजिक शोध के चरण भी कहा जाता है। एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हुए अध्ययन को आगे बढ़ाया जाता है। सामाजिक शोध में कितने चरण होते हैं, इसमें विद्वान एकमत नहीं हैं। इसी तरह, शोध में चरणों का नामकरण भी विद्वानों ने अलग-अलग तरह से किया है। शोध के बीच के कुछ चरण आगे-पीछे हो सकते हैं, उससे शोध की वैज्ञानिकता पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है।

हम यहाँ पहले कुछ विद्वानों द्वारा बताये गये शोध के चरणों का उल्लेख करेंगे, तत्पश्चात् सामाजिक शोध के महत्वपूर्ण चरणों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

स्लूटर (1926:5) ने सामाजिक शोध के पन्द्रह चरणों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:

(1) शोध विषय का चुनाव।

(2) शोध समस्या को समझने के लिए क्षेत्र का सर्वेक्षण।

(3) सन्दर्भ ग्रन्थ सूची का निर्माण।

(4) समस्या को परिभाषित या निर्मित करना।

(5) समस्या के तत्वों का विभेदीकरण और रूपरेखा निर्माण।

(6) आँकड़ों या प्रमाणों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर समस्या के तत्वों का वर्गीकरण।

(7) समस्या के तत्वों के आधार पर आँकड़ों या प्रमाणों का निर्धारण।

(8) वांछित आँकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धता का अनुमान लगाना।

(9) समस्या के समाधान की जाँच करना।

(10) आँकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन।

(11) आँकड़ों को विश्लेषण के लिए व्यवस्थित एवं नियमित करना।

(12) आँकड़ों एवं प्रमाणों का विश्लेषण एवं विवेचन।

(13) प्रस्तुतीकरण के लिए आँकड़ों को व्यवस्थित करना।

(14) उद्धरणों, सन्दर्भों एवं पाद् टिप्पणियों का चयन एवं प्रयोग।

(15) शोध प्रस्तुतीकरण के स्वरूप और शैली को विकसित करना।

इग्नू ;इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालयद्ध की पाठ्यपुस्तक (MSS 002 शोध पद्धतियाँ और विधियाँ, 2006, पृ. 32) में सामाजिक शोध के चरणों को निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है:

शोध समस्या को परिभाषित करना।

↓

शोध विषय पर प्रकाशित सामग्री की समीक्षा करना।

↓

अध्ययन के व्यापक दायरे और इकाई को तय करना।

↓

प्राकल्पना का सूत्रीकरण और परिवर्तियों को बताना।

↓

शोध विधियों और तकनीकों का चयन।

↓

शोध का मानकीकरण।

↓

मार्गदर्शी अध्ययन/सांख्यकीय व अन्य विधियों का प्रयोग।

↓

शोध सामग्री इकट्ठा करना।

↓

सामग्री का विश्लेषण करना।

↓

व्याख्या करना और रिपोर्ट लिखना।

राम आहुजा (2003:125) ने मात्र छः चरणों का उल्लेख किया है, जो कि निम्नवत् हैं:

(1) अध्ययन समस्या का निर्धारण।

(2) शोध प्रारूप तय करना।

(3) निदर्शन की योजना बनाना (सम्भाव्यता या असम्भाव्यता अथवा दोनों)

(4) आँकड़ा संकलन

(5) आँकड़ा विश्लेषण (सम्पादन, संकेतन, प्रक्रियाकरण एवं सारणीयन)।

(6) प्रतिवेदन तैयार करना।

सी. आर. कोठारी (2005:12) ने शोध प्रक्रिया के ग्यारह चरणों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् हैं:

(1) शोध समस्या का निर्माण।

(2) गहन साहित्य सर्वेक्षण

(3) उपकल्पना का निर्माण

(4) शोध प्रारूप निर्माण

(5) निदर्शन प्रारूप निर्धारण

(6) आँकड़ा संकलन

(7) प्रोजेक्ट का सम्पादन

(8) आँकड़ों का विश्लेषण

(9) उपकल्पनाओं का परीक्षण।

(10) सामान्यीकरण और विवेचन, तथा

(11) रिपोर्ट तैयार करना या परिणामों का प्रस्तुतीकरण यानि निष्कर्षों का औपचारिक लेखन।

शोध के उपरोक्त विविध चरणों को हम क्रमशः निम्नांकित रूप से सीमित कर सामाजिक शोध कर सकते हैं:

प्रथम चरण- शोध प्रक्रिया में सबसे पहला चरण समस्या का चुनाव या शोध विषय का निर्धारण होता है। यदि आपको किसी विषय पर शोध करना है तो स्वाभाविक है कि सर्वप्रथम आप यह तय करेंगे कि किस विषय पर कार्य किया जाये। विषय का निर्धारण करना तथा उसके सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पक्ष को

स्पष्ट करना शोध का प्रथम चरण होता है। शोध विषय का चयन सरल कार्य नहीं होता है, इसलिए ऐसे विषय को चुना जाना चाहिए जो आपके समय और साधन की सीमा के अन्तर्गत हो तथा विषय न केवल आपकी रुचि का हो अपितु समसामयिक हो। इस तरह आपके द्वारा चयनित एक सामान्य विषय वैज्ञानिक खोज के लिए आपके द्वारा विशिष्ट शोध समस्या के रूप में निर्मित कर दिया जाता है। शोध विषय के निर्धारण और उसके प्रतिपादन की दो अवस्थाएँ होती हैं- प्रथमतः तो शोध समस्या को गहन एवं व्यापक रूप से समझना तथा द्वितीय उसे विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रकारान्तर में अर्थपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत करना।

अक्सर शोध छात्रों द्वारा यह प्रश्न किया जाता है कि किस विषय पर शोध करें। इसी तरह अक्सर शोध छात्रों से यह प्रश्न किया जाता है कि आपने चयनित विषय क्यों लिया। दोनों ही स्थितियों से यह स्पष्ट है कि शोध के विषय या अध्ययन समस्या का चुनाव महत्वपूर्ण चरण है, जिसका स्पष्टीकरण जरूरी है, लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं है। अनेकों शोध छात्र अपने शोध विषय के चयन का स्पष्टीकरण समुचित तरीके से नहीं दे पाते हैं। विद्वानों ने अपने शोध विषय के चयन के तर्कों पर काफी कुछ लिखा है। हम यहाँ उनके तर्कों को प्रस्तुत नहीं करेंगे अपितु मात्र बनार्ड (1994) के उस सुझाव का उल्लेख करना चाहेंगे जिसमें उसने शोधकर्ताओं को यह सुझाव दिया है कि वे स्वयं से निम्नांकित प्रश्न पूछें:

क्या आपको अपने शोध का विषय रुचिकर लगता है?

(1) क्या आपके शोध विषय का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव है?

(2) क्या आपके पास शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए पर्याप्त संसाधन हैं?

(3) क्या शोध प्रश्नों को पूछने अथवा शोध की कुछ विधियों एवं तकनीकों के प्रयोग से आपके समक्ष किसी प्रकार की नीतिगत अथवा नैतिक समस्या तो नहीं आयेगी?

(4) क्या आपके शोध का विषय सैद्धान्तिक रूप से महत्वपूर्ण और रोचक है?

निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों पर तार्किक तरीके से विचार करने पर उत्तम शोध समस्या का चयन सम्भव हो सकेगा।

द्वितीय चरण- यह तय हो जाने के पश्चात् कि किस विषय पर शोध कार्य किया जायेगा, विषय से सम्बन्धित साहित्य (अन्य शोध कार्यों) का सर्वेक्षण (अध्ययन) किया जाता है। इससे तात्पर्य यह है कि चयनित विषय से सम्बन्धित समस्त लिखित या अलिखित, प्रकाशित या अप्रकाशित सामग्री का गहन अध्ययन किया जाता है, ताकि चयनित विषय के सभी पक्षों की जानकारी प्राप्त हो सके। चयनित विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक साहित्य तथा आनुभविक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इस पर ही शोध की समस्या का वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रस्तुतीकरण निर्भर करता है। कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण शोध की समस्या के चयन के पूर्व होना चाहिए

कि पश्चात्। ऐसा कहा जाता है कि, 'शोध समस्या को विद्यमान साहित्य के प्रारम्भिक अध्ययन से पूर्व ही चुन लेना बेहतर रहता है।' (इग्नू 2006: पृष्ठ 33) यहाँ यह भी प्रश्न उठ सकता है कि बिना विषय के बारे में कुछ पढ़े कोई कैसे अध्ययन समस्या का निर्धारण कर सकता है? विशेषकर तब जब आप यह अपेक्षा रखते हैं कि शोधकर्ता शोध के प्रथम चरण में ही अध्ययन की समस्या को निर्धारित निर्मित, एवं परिभाषित करे तथा उसके शोध प्रश्नों एवं उद्देश्यों को अभिव्यक्त करे। समस्या का चयन एवं उसका निर्धारण शोधकर्ता के व्यापक ज्ञान के आधार पर हो सकता है। तत्पश्चात् उसे उक्त विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक तथा विविध विद्वानों द्वारा किये गये आनुभविक अध्ययनों से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने से उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्बन्धित विषय पर किन-किन दृष्टियों से, किन-किन विद्वानों ने विचार किया है और विविध अध्ययनों के उद्देश्य, उपकल्पनाएं तथा कार्यविधि क्या-क्या रही हैं।'' साथ ही विविध विद्वानों के क्या निष्कर्ष रहे हैं। इतना ही नहीं उन विद्वानों द्वारा झेली गयी समस्याओं या उनके द्वारा भविष्य में अध्ययन किये जाने वाले सुझाये विषयों की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। ये समस्त ज्ञान एवं जानकारियाँ किसी भी शोधकर्ता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं।

तृतीय चरण- सम्बन्धित समस्त सामग्रियों के अध्ययनों के उपरान्त शोधकर्त्ता अपने शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट अभिव्यक्त करता है कि उसके शोध के वास्तविक उद्देश्य क्या-क्या हैं। शोध के स्पष्ट उद्देश्यों का होना किसी भी शोध की सफलता एवं गुणवत्तापूर्ण प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक है। उद्देश्यों की स्पष्टता अनिवार्य है। उद्देश्यों के आधार पर ही आगे की प्रक्रिया निर्भर करती है, जैसे कि तथ्य संकलन की प्रविधि का चयन और उस प्रविधि द्वारा उद्देश्यों के ही अनुरूप तथ्यों के संकलन की रणनीति या प्रश्नों का निर्धारण। यह कहना उचित ही है कि, 'जब तक आपके पास शोध के उद्देश्यों का स्पष्ट अनुमान न होगा, शोध नहीं होगा और एकत्रित सामग्री में वांछित सुसंगति नहीं आएगी क्योंकि यह सम्भव है कि आपने विषय को देखा हो जिस स्थिति में हर परिप्रेक्ष्य भिन्न मुद्दों से जुड़ा होता है। उदाहरण के लिए, विकास पर समाजशास्त्रीय अध्ययन में अनेक शोध प्रश्न हो सकते हैं, जैसे विकास में महिलाओं की भूमिका, विकास में जाति एवं नातेदारी की भूमिका अथवा पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन पर विकास के सामाजिक परिणाम।' (इग्नू 2006: 33-34) है।

चतुर्थ चरण- शोध के उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् अध्ययन की उपकल्पनाओं या प्राक्कल्पनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की जरूरत है। यह उल्लेखनीय है कि सभी प्रकार के शोध कार्यों में उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं, विशेषकर ऐसे शोध कार्यों में जिनमें विषय से सम्बन्धित पूर्व जानकारियाँ सप्रमाण उपलब्ध नहीं होती हैं। अतः यदि हमारा शोध कार्य अन्वेषणात्मक है तो हमें वहाँ उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों को रखना चाहिए। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि उपकल्पनाओं का निर्माण हमेशा ही शोध प्रक्रिया का एक चरण नहीं होता हैउ, उसके स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण उस चरण के अन्तर्गत आता है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना से तात्पर्य क्या हैं? और इसकी शोध में क्या आवश्यकता है? इत्यादि प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना से तात्पर्य क्या हैं? और इसकी शोध में क्या आवश्यकता है? इत्यादि प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

लुण्डबर्ग (1951:9) के अनुसार, ''उपकल्पना एक सम्भावित सामान्यीकरण होता है, जिसकी वैधता की जाँच की जानी होती है। अपने प्रारम्भिक स्तरों पर उपकल्पना कोई भी अटकलपच्चू, अनुमान, काल्पनिक विचार या सहज ज्ञान या और कुछ हो सकता है जो क्रिया या अन्वेषण का आधार बनता है।''

गुड तथा स्केट्स (1954: 90) के अनुसार, ''एक उपकल्पना बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना या निष्कर्ष होती है जो अवलोकित तथ्यों या दशाओं को विश्लेषित करने के लिए निर्मित और अस्थायी रूप से अपनायी जाती है।''

गुडे तथा हॉट (1952:56) के शब्दों में कहा जाये तो, ''यह (उपकल्पना) एक मान्यता है जिसकी वैधता निर्धारित करने के लिए उसकी जाँच की जा सकती है।''

सरल एवं स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो, उपकल्पना शोध विषय के अन्तर्गत आने वाले विविध उद्देश्यों से सम्बन्धित एक काम चलाऊ अनुमान या निष्कर्ष है, जिसकी सत्यता की परीक्षा प्राप्त तथ्यों के आधार पर की जाती है। विषय से सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के पश्चात् जब उत्तरदाता अपने अध्ययन विषय को पूर्णतः जान जाता है तो उसके मन में कुछ सम्भावित निष्कर्ष आने लगते हैं और वह अनुमान लगाता है कि अध्ययन में विविध मुद्दों के सन्दर्भ में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त इस-इस प्रकार के निष्कर्ष आएंगे। ये सम्भावित निष्कर्ष ही उपकल्पनाएँ होती हैं। वास्तविक तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त कभी-कभी ये गलत साबित होती हैं और कभी-कभी सही। उपकल्पनाओं का सत्य या प्रामाणिक होना या असत्य सिद्ध हो जाना विशेष महत्व का नहीं होता है। इसलिए शोधकर्त्ता को अपनी उपकल्पनाओं के प्रति लगाव या मिथ्या झुकाव नहीं होना चाहिए अर्थात् उसे कभी भी ऐसा प्रयास नहीं करना चाहिए जिससे कि उसकी उपकल्पना सत्य प्रमाणित हो जाये। जो कुछ भी प्राथमिक तथ्यों से निष्कर्ष प्राप्त हो उसे ही हर हालात में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। वैज्ञानिकता के लिए वस्तुनिष्ठता प्रथम शर्त है। इसे ध्यान में रखते हुए ही शोधकर्ता को शोध कार्य सम्पादित करना चाहिए। उपकल्पना शोधकर्ता को विषय से भटकने से बचाती है। इस तरह एक उपकल्पना का इस्तेमाल दृष्टिहीन खोज से रक्षा करता है (यंग 1960: 99)।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना स्पष्ट एवं सटीक होनी चाहिए। वह ऐसी होनी चाहिए जिसका प्राप्त तथ्यों से निर्धारित अवधि में अनुभवजन्य परीक्षण सम्भव हो। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि एक उपकल्पना और एक सामान्य कथन में अन्तर होता है। इस रूप में यदि देखा जाय तो कहा जा सकता है कि उपकल्पना

में दो परिवर्त्यों में से किसी एक के निष्कर्षों को सम्भावित तथ्य में रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपकल्पना परिवर्त्यों के बीच सम्बन्धों के स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। सकारात्मक, नकारात्मक और शून्य, ये तीन सम्बन्ध परिवर्त्यों के मध्य माने जाते हैं। उपकल्पना परिवर्त्यों के सम्बन्धों को उद्घाटित करती है।

उपकल्पना जो कि फलदायी अन्वेषण का अस्थायी केन्द्रीय विचार होती है (यंग 1960: 96), के निर्माण के चार स्रोतों का गुडे तथा हाट (1952: 63-67) ने उल्लेख किया

है: (i) सामान्य संस्कृति (ii) वैज्ञानिक सिद्धान्त (iii) सादृश्य (Anology) तथा

(iv) व्यक्तिगत अनुभव। इन्हीं चार स्रोतों से उपकल्पनाओं का उद्गम होता है।

उपकल्पनाओं के बिना शोध अनिर्दिष्ट (unfocused), एक दैव आनुभविक भटकाव होता है।

उपकल्पना शोध में जितनी सहायक होती है, उतनी ही हानिकारक भी हो सकती है। इसलिए अपनी उपकल्पना पर जरूरत से ज्यादा विश्वास रखना या उसके प्रति पूर्वाग्रह रखना या उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना कदापि उचित नहीं है। यदि शोधकर्ता ऐसा करता है, तो उसके शोध में वैषयिकता समा जायेगी और वैज्ञानिकता का अन्त हो जायेगा।

पंचम चरण- समग्र एवं निदर्शन निर्धारण शोध कार्य का पाँचवाँ चरण होता है। समग्र का तात्पर्य उन सबसे है, जिन पर शोध आधारित है या जिन पर शोध किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी विश्वविद्यालय के छात्रों से सम्बन्धित किसी पक्ष पर शोध कार्य करने जा रहे हैं, तो उस विश्वविद्यालय के समस्त छात्र अध्ययन का समग्र होंगे। इसी तरह यदि हम ग्रामीण महिलाओं पर सामाजिक-आर्थिक विकासों के प्रभाव का अध्ययन कर रहे हैं, तो चयनित ग्राम या ग्रामों की समस्त महिलाएँ अध्ययन का समग्र होंगी। चूँकि किसी भी शोध कार्य में समय और साधनों की सीमा होती है और बहुत बड़े और लम्बी अवधि के शोध कार्य में सामाजिक तथ्यों के कभी-कभी नष्ट होने का भय भी रहता है, इसलिए सामान्यतः छोटे स्तर (माइक्रो) के शोध कार्य को वरीयता दी जाती है। इस तथाकथित छोटे या लघु अध्ययन में भी सभी इकाइयों का अध्ययन सम्भव नहीं हो पाता है, इसलिए कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चयन वैज्ञानिक आधार पर कर लिया जाता है। इन्हीं चुनी हुई इकाइयों को निदर्शन कहते हैं। सम्पूर्ण अध्ययन इन्हीं निदर्शित इकाइयों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित होता है, जो सम्पूर्ण समग्र पर लागू होता है। यंग (1960: 302) के शब्दों में, ''एक सांख्यकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अतिलघु चित्र या 'क्रास सेक्शन' है, जिससे निदर्शन लिया गया है।''

समग्र का निर्धारण ही यह तय कर देता है कि आनुभविक अध्ययन किन पर होगा। इसी स्तर पर न केवल अध्ययन इकाइयों का निर्धारण होता है, अपितु भौगोलिक क्षेत्र का भी निर्धारण होता है। और भी सरलतम

रूप में कहा जाये तो इस स्तर में यह तय हो जाता है कि अध्ययन कहां (क्षेत्र) और किन पर(समग्र) होगा, साथ ही कितनों (निदर्शन) पर होगा।

उल्लेखनीय है कि अक्सर निदर्शन की आवश्यकता पड़ ही जाती है। ऐसी स्थिति में नमूने के तौर पर कुछ इकाइयों का चयन कर उनका अध्ययन कर लिया जाता है। ऐसे 'नमूने' हम दैनिक जीवन में भी प्रायः प्रयोग में लाते हैं। उदाहरण के लिए, चावल खरीदने के लिए पूरे बोरे के चावलों को उलट-पलट कर नहीं देखा जाता है, अपितु कुछ ही चावल के दानों के आधार पर सम्पूर्ण बोरे के चावलों की गुणवत्ता को परख लिया जाता है। इसी तरह भगोने या कुकर में चावल पके हैं कि नहीं, या ज्ञात करने के लिए कुकर के कुछ ही चावलों को उंगलियों से मसलकर चावल के पकने या न पकने का निष्कर्ष निकाल लिया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि ये जो 'कुछ ही चावल' सम्पूर्ण चावलों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, यानि जिनके आधार पर हम उनकी गुणवत्ता या उनके पकने का निष्कर्ष निकाल रहे हैं, निदर्शन (सैम्पल) ही है। गुडे और हाट (1952:209) का कहना है कि, ''एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, किसी विशाल सम्पूर्ण का लघु प्रतिनिधि है।''

निदर्शन की मोटे तौर पर दो पद्धतियाँ मानी जाती हैं- एक को सम्भावनात्मक निदर्शन कहते हैं, और दूसरी को असम्भावनात्मक या सम्भावना-रहित निदर्शन। इन दोनों पद्धतियों के अन्तर्गत निदर्शन के अनेकों प्रकार प्रचलन में हैं। निदर्शन की जिस किसी भी पद्धति अथवा प्रकार का चयन किया जाये, उसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है, ताकि उचित निदर्शन प्राप्त हो सके।

कभी-कभी निदर्शन की जरूरत नहीं पड़ती है। इसका मुख्य कारण समग्र का छोटा होना हो सकता है, या अन्य कारण भी हो सकते हैं, जैसे सम्बन्धित समग्र या इकाई का आँकड़ा अनुपलब्ध हो, उसके बारे में कुछ पता न हो इत्यादि। ऐसी परिस्थिति में सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन किया जाता है। ऐसा ही जनगणना कार्य में भी किया जाता है, इसीलिए इस विधि को 'जनगणना' या 'संगणना' विधि कहा जाता है, और इसमें समस्त इकाइयों का अध्ययन किया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि, सामाजिक शोध में हमेशा निदर्शन लिया ही जायेगा यह जरूरी नहीं होता है, कभी-कभी बिना निदर्शन प्राप्त किये ही 'संगणना विधि' द्वारा भी अध्ययन इकाइयों से प्राथमिक तथ्य संकलित कर लिये जाते हैं।

छठवाँ चरण- प्राथमिक तथ्य संकलन का वास्तविक कार्य तब प्रारम्भ होता है, जब हम तथ्य संकलन की तकनीक/उपकरण, विधि इत्यादि निर्धारित कर लेते हैं। उपयुक्त और यथेष्ट तथ्य संकलन तभी संभव है जब हम अपने शोध की आवश्यकता, उत्तरदाताओं की विशेषता तथा उपयुक्त तकनीक एवं प्रविधियों, उपकरणों/मापकों इत्यादि का चयन करें। प्राथमिक तथ्य संकलन उत्तरदाताओं के सर्वेक्षण के आधार पर और प्रयोगात्मक पद्धति से हो सकता है।

प्राथमिक तथ्य संकलन की अनेकों तकनीकें/उपकरण प्रचलन में हैं, जिनके प्रयोग द्वारा उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एवं तथ्य प्राप्त किये जाते हैं। ये उपकरण या तकनीकें मौखिक अथवा लिखित हो सकती हैं, और इनके प्रयोग किये जाने के तरीके अलग-अलग होते हैं। शोध की गुणवत्ता इन्हीं तकनीकों तथा इन तकनीकों के उचित तरीके से प्रयोग किये जाने पर निर्भर करती है। उपकरणों या तकनीकों की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती हैं। शोधकर्त्ता शोध विषय की प्रकृति, उद्देश्यों, संसाधनों की उपलब्धता (धन और समय) तथा अन्य विचारणीय पक्षों पर व्यापक रूप से सोच-समझकर इनमें से किसी एक तकनीक (तथ्य एकत्र करने के तरीके) का सामान्यतः प्रयोग करता है। कुछ प्रमुख उपकरण या तकनीकें इस प्रकार हैं- प्रश्नावली, साक्षात्कार, साक्षात्कार-अनुसूची, साक्षात्कार-मार्गदर्शिका (इन्टरव्यू गाइड) इत्यादि। विधि से तात्पर्य सामग्री विश्लेषण के साधनों से है। प्रायः तकनीक/उपकरण और विधियों को परिभाषित करने में भ्रामक स्थिति बनी रहती है। स्पष्टता के लिए यहाँ उल्लेखनीय है कि विधि उपकरणों या तकनीकों से अलग किन्तु अन्तर्सम्बद्ध वह तरीका है जिसके द्वारा हम एकत्रित सामग्री की व्याख्या करने के लिए सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों का प्रयोग करते हैं। शोध कार्य में प्रक्रियात्मक नियमों के साथ विभिन्न तकनीकों के सम्मिलन से शोध की विधि बनती है। इसके अन्तर्गत अवलोकन, केस-स्टडी, जीवन-वृत्त इत्यादि शोध की विधियाँ उल्लेखनीय हैं।

सप्तम चरण- प्राथमिक तथ्य संकलन शोध का अगला चरण होता है। शोध के लिए प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु जब उपकरणों एवं प्रविधियों का निर्धारण हो जाता है, और उन उपकरणों एवं तकनीकों का अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप निर्माण हो जाता है, तो उसके पश्चात् क्षेत्र में जाकर वास्तविक तथ्य संकलन का अति महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ होता है। कभी-कभी उपकरणों या तकनीकों की उपयुक्तता जाँचने के लिए और उसके द्वारा तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ करने के पहले पूर्व-अध्ययन (पायलट स्टडी) द्वारा उनका पूर्व परीक्षण किया जाता है।

यदि कोई प्रश्न अनुपयुक्त पाया जाता है या कोई प्रश्न संलग्न करना होता है या और कुछ संशोधन की आवश्यकता पड़ती है तो उपकरण में आवश्यक संशोधन कर मुख्य तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है। सामान्यतः समाजशास्त्रीय शोध में प्राथमिक तथ्य संकलन को अति सरल एवं सामान्य कार्य मानने की भूल की जाती है। वास्तविकता यह है कि यह एक अत्यन्त दुरूह एवं महत्वपूर्ण कार्य होता है, तथा शोधकर्ता की पर्याप्त कुशलता ही वांछित तथ्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकती है। शोधकर्ता को यह प्रयास करना चाहिए कि उसका कार्य व्यवस्थित तरीके से निश्चित समयावधि में पूर्ण हो जाये। उल्लेखनीय है कि कभी-कभी उत्तरदाताओं से सम्पर्क करने की विकट समस्या उत्पन्न होती है और अक्सर उत्तरदाता सहयोग करने को तैयार भी नहीं होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पर्याप्त सूझ-बूझ तथा परिपक्वता की आवश्यकता पड़ती है। उत्तरदाताओं को विषय की गंभीरता को तथा उनके सहयोग के महत्व को समझाने की जरूरत पड़ती है। उत्तरदाताओं से झूठे वादे नहीं करने चाहिए और न उन्हें किसी प्रकार का प्रलोभन देना

चाहिए। उत्तरदाताओं की सहूलियत के अनुसार ही उनसे सम्पर्क करने की नीति को अपनाना उचित होता है। यथासम्भव घनिष्ठता बढ़ाने के लिए (संदेह दूर करने एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए) प्रयास करना चाहिए। तथ्य संकलन अनौपचारिक माहौल में बेहतर होता है। कोशिश यह करनी चाहिए कि उस स्थान विशेष के किसी ऐसे प्रभावशाली एवं लोकप्रिय समाजसेवी व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो जाये जिसकी सहायता से उत्तरदाताओं से न केवल सम्पर्क आसानी से हो जाता है अपितु उनसे वांछित सूचनाएँ भी सही-सही प्राप्त हो जाती हैं।

यदि तथ्य संकलन का कार्य अवलोकन द्वारा या साक्षात्कार-अनुसूची या साक्षात्कार इत्यादि द्वारा हो रहा हो, तब तो क्षेत्र विशेष में जाने तथा उत्तरदाताओं से आमने-सामने की स्थिति में प्राथमिक सूचनाओं को प्राप्त करने की जरूरत पड़ती है। अन्यथा यदि प्रश्नावली का प्रयोग होना है, तो शोधकर्ता को सामान्यतः क्षेत्र में जाने की जरूरत नहीं पड़ती है। प्रश्नावली को डाक द्वारा और आजकल तो ई-मेल के द्वारा इस अनुरोध के साथ उत्तरदाताओं को प्रेषित कर दिया जाता है कि वे यथाशीघ्र (या निर्धारित समयाविधि में) पूर्ण रूप से भरकर उसे वापस शोधकर्ता को भेज दें।

यदि शोध कार्य में कई क्षेत्र-अन्वेषक कार्यरत हों, तो वैसी स्थिति में उनको समुचित प्रशिक्षण तथा तथ्य संकलन के दौरान उनकी पर्याप्त निगरानी की आवश्यकता पड़ती है। प्रायः अन्वेषक प्राथमिक तथ्यों की महत्ता को समझ नहीं पाते हैं, इसलिए वे वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करने में विशेष प्रयास और रुचि नहीं लेते हैं। अक्सर तो वे मनगढ़न्त अनुसूची को भर भी देते हैं। इससे सम्पूर्ण शोधकार्य की गुणवत्ता प्रभावित न हो जाये, इसके लिए विशेष सावधानी तथा रणनीति आवश्यक है ताकि सभी अन्वेषक पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ प्राथमिक तथ्यों का संकलन करें। तथ्य संकलन के दौरान आवश्यक उपकरणों जैसे टेपरिकार्डर, वायस रिकार्डर, कैमरा, वीडियो कैमरा इत्यादि का भी प्रयोग किया जा सकता है। इनके प्रयोग के पूर्व उत्तरदाता की सहमति जरूरी है। प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के साथ ही एकत्रित सूचनाओं की जाँच एवं आवश्यक सम्पादन भी करते जाना चाहिए। भूलवश छूटे हुए प्रश्नों, अपूर्ण उत्तरों इत्यादि को यथासमय ठीक करवा लेना चाहिए। कोई नयी महत्वपूर्ण सूचना मिले तो उसे अवश्य नोट कर लेना चाहिए।

तथ्यों का दूसरा स्रोत है द्वितीयक स्रोत। द्वितीयक स्रोत तथ्य संकलन के वे स्रोत होते हैं, जिनका विश्लेषण एवं निर्वचन दूसरे के द्वारा हो चुका होता है। अध्ययन की समस्या के निर्धारण के समय से ही द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है और रिपोर्ट लेखन के समय तक स्थान-स्थान पर इनका प्रयोग होता रहता है।

अष्ठम चरण: आठवाँ चरण वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण अथवा रिपोर्ट लेखन का होता है। विविध उपकरणों या तकनीकों एवं प्रविधियों के माध्यम से एकत्रित समस्त गुणात्मक सामग्री को गणनात्मक रूप

देने के लिए विविध वर्गों में रखा जाता है, आवश्यकतानुसार सम्पादित किया जाता है, तत्पश्चात् सारिणी में गणनात्मक स्वरूप (प्रतिशत सहित) देकर विश्लेषित किया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व तक सम्पूर्ण एकत्रित सामग्री को अपने हाथों से बड़ी-बड़ी कागज की शीटों पर कोडिंग करके उतारा जाता था तथा स्वयं शोधकर्ता एक-एक केस/अनुसूची से सम्बन्धित तथ्य की गणना करते हुए सारणी बनाता था। आजकल कम्प्यूटर का शोध कार्यों में व्यापक रूप से प्रचलन हो गया है। समाजवैज्ञानिक शोधों में कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से सभी प्रकार की सारणियाँ (सरल एवं जटिल) शीघ्रातिशीघ्र बनायी जाती हैं। एसण्पी.एस.एस. (स्टैटिस्टिकल पैकेज फार सोशल साइंसेज) एक ऐसा ही प्रोग्राम है, जिसका प्रचलन तेजी से बढ़ा है। समाजवैज्ञानिक शोधों में एसण्पीण्एसण्एसण् द्वारा सारणियाँ बनायी जा रही हैं। विविध परिवर्त्यों में सह-सम्बन्ध तथा सांख्यकीय परीक्षण इसके द्वारा अत्यन्त सरल हो गया है।

सारणियों के निर्मित हो जाने के पश्चात् उनका तार्किक विश्लेषण किया जाता है। तथ्यों में कार्य-कारण सम्बन्ध तथा सह-सम्बन्ध देखे जाते हैं। इसी चरण में उपकल्पनाओं की सत्यता की परीक्षा भी की जाती है। सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए समस्त शोध सामग्री को व्यवस्थित एवं तार्किक तरीके से विविध अध्यायों में रखकर विश्लेषित करते हुए शोध रिपोर्ट तैयार की जाती है।

अध्ययन के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची तथा प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रयुक्त की गयी तकनीक (अनुसूची या प्रश्नावली या स्केल इत्यादि) को संलग्न किया जाता है। सम्पूर्ण रिपोर्ट/प्रतिवेदन में स्थान-स्थान पर विषय भी आवश्यकता के अनुसार फोटोग्राफ, डाईग्राम, ग्राफ, नक्शे, स्केल इत्यादि रखे जाते हैं।

उपरोक्त रिपोर्ट लेखन के सन्दर्भ में ही उल्लेखनीय है कि, शोध रिपोर्ट या प्रतिवेदन का जो कुछ भी उद्देश्य हो, उसे यथासम्भव स्पष्ट होना चाहिए (मेटा स्पेन्सर, 1979: 47)। सेल्टिज तथा अन्य (1959:443) का कहना है कि, रिपोर्ट में शोधकर्ता को निम्नांकित बातें स्पष्ट करनी चाहिए:

1. समस्या की व्याख्या करें जिसे अध्ययनकर्ता सुलझाने की कोशिश कर रहा है।
2. शोध प्रक्रिया की विवेचना करें, जैसे निदर्शन कैसे लिया गया और तथ्यों के कौन से स्रोत प्रयोग किए गये हैं।
3. परिणामों की व्याख्या करें।
4. निष्कर्षों को सुझायें जो कि परिणामों पर आधारित हों। साथ ही ऐसे किसी भी प्रश्न का उल्लेख करें जो अनुत्तरित रह गया हो और जो उसी क्षेत्र में और अधिक शोध की मांग कर रहा हो।

गेराल्ड आर. लेस्ली तथा अन्य (1994:35) का कहना है कि, ''समाजशास्त्रीय शोधों में विश्लेषण और व्याख्या अक्सर सांख्यिकीय नहीं होती। इसमें साहित्य और तार्किकता की आवश्यकता होती है। यद्यपि

आजकल बहुत से विद्वान अतिक्लिष्ट सांख्यिकीय पद्धति का भी प्रयोग करने लगे हैं। प्रत्येक समाजशास्त्री समस्या के सर्वाधिक उपयुक्त तरीके जो सर्वाधिक ज्ञान एवं समझ पैदा करने वाला होता है, के अनुरूप शोध और तथ्य संकलन तथा विश्लेषण को अपनाता है। उपागमों का प्रकार केवल अन्य समाजशास्त्रियों के शोध को स्वीकार करने तथा यह विश्वास करने के लिए कि यह क्षेत्र में योगदान देगा, की इच्छा के कारण सीमित होता हैं।''

अन्त में यह कहा जा सकता है कि, यद्यपि सभी शोधकर्त्ता समाजशास्त्रीय पद्धति के इन्हीं चरणों से गुजरते हैं तथापि कई चरणों को दूसरी तरीके से प्रयोग करते हैं। गेराल्ड आर. लेस्ली (1994:38) तथा अन्य का कहना है कि, ''यह विविधता समाजशास्त्र को मजबूती प्रदान करती है और अपने द्वारा अध्ययन की जाने वाली समस्याओं के विस्तार को बढ़ाती है।'

स्वप्रगति परीक्षण

1. सामाजिक शोध की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. शोध प्रक्रिया के प्रथम चरण पर प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

3. शोध समस्या का वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रस्तुतीकरण किस पर निर्भर करता है?

   .....

   .....

   .....

   .....

4. लुण्डबर्ग के अनुसार उपकल्पना क्या है।

   .....

   .....

   .....

2.3 सार-संक्षेप

सामाजिक अनुसंधान का बीजारोपण वहीं से होता है जहाँ वह अपनी व्याख्या के संबंध में संदेह प्रकट करना प्रारंभ करता है। सामाजिक शोध के सफल एवं उचित क्रियान्वयन के लिए सामाजिक शोध के सटीक चरणों का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य यह है कि इसमें समस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। शोध विषय का चयन सरल कार्य नहीं होता है, इसलिए ऐसे विषय को चुना जाना चाहिए जो आपके समय और साधन की सीमा के अन्तर्गत हो तथा विषय न केवल आपकी रुचि का हो अपितु समसामयिक हो। यह तय हो जाने के पश्चात् कि किस विषय पर शोध कार्य किया जायेगा, विषय से सम्बन्धित साहित्य (अन्य शोध कार्यों) का सर्वेक्षण (अध्ययन) किया जाता है। सम्बन्धित समस्त सामग्रियों के अध्ययनों के उपरान्त शोधकर्त्ता अपने शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट अभिव्यक्त करता है कि उसके शोध के वास्तविक उद्देश्य क्या-क्या हैं। उपकल्पना बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना या निष्कर्ष होती है जो अवलोकित तथ्यों या दशाओं को विश्लेषित करने के लिए निर्मित और अस्थायी रूप से अपनायी जाती है। उपकल्पना या प्राक्कल्पना स्पष्ट एवं सटीक होनी चाहिए। वह ऐसी होनी चाहिए जिसका प्राप्त तथ्यों से निर्धारित अवधि में अनुभवजन्य परीक्षण सम्भव हो। एक सांख्यकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अतिलघु चित्र या 'क्रास सेक्शन' है, जिससे निदर्शन लिया गया है। निदर्शन की मोटे तौर पर दो पद्धतियाँ मानी जाती हैं- एक को सम्भावनात्मक निदर्शन कहते हैं, और दूसरी को असम्भावनात्मक या सम्भावना-रहित निदर्शन। प्राथमिक तथ्य संकलन की अनेकों तकनीकें/उपकरण प्रचलन में हैं, जिनके प्रयोग द्वारा उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एवं तथ्य प्राप्त किये जाते हैं। यदि शोध कार्य में कई क्षेत्र-अन्वेषक कार्यरत हों, तो वैसी स्थिति में उनको समुचित प्रशिक्षण तथा तथ्य संकलन के दौरान उनकी पर्याप्त निगरानी की आवश्यकता पड़ती है। आजकल कम्प्यूटर का शोध कार्यों में व्यापक रूप से प्रचलन हो गया है। समाजवैज्ञानिक शोधों में कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से सभी प्रकार की सारणियाँ (सरल एवं जटिल) शीघ्रातिशीघ्र बनायी जाती हैं। अन्त में यह कहा जा सकता है कि, यद्यपि सभी शोधकर्त्ता समाजशास्त्रीय पद्धति के इन्हीं चरणों से गुजरते हैं तथापि कई चरणों को दूसरी तरीके से प्रयोग करते हैं।

2.4 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य यह है कि इसमें समस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। अध्ययन के निष्कर्ष पर इस प्रकार पहुँचा जाता है कि उसकी वैषयिकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता होती है।

2. शोध प्रक्रिया में सबसे पहला चरण समस्या का चुनाव या शोध विषय का निर्धारण होता है। यदि आपको किसी विषय पर शोध करना है तो स्वाभाविक है कि सर्वप्रथम आप यह तय करेंगे कि किस विषय पर कार्य किया जाये। विषय का निर्धारण करना तथा उसके सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पक्ष को स्पष्ट करना शोध का प्रथम चरण होता है।

3. चयनित विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक साहित्य तथा आनुभविक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इस पर ही शोध की समस्या का वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रस्तुतीकरण निर्भर करता है।

4. लुण्डबर्ग (1951:9) के अनुसार, ''उपकल्पना एक सम्भावित सामान्यीकरण होता है, जिसकी वैधता की जाँच की जानी होती है। अपने प्रारम्भिक स्तरों पर उपकल्पना कोई भी अटकलपच्चू, अनुमान, काल्पनिक विचार या सहज ज्ञान या और कुछ हो सकता है जो क्रिया या अन्वेषण का आधार बनता है।''

2.5 अभ्यास-प्रश्न

1. सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

2. सामाजिक शोध के प्रथम चरण का वर्णन कीजिए।

3. सामाजिक शोध के तृतीय चरण की कार्य विधि स्पष्ट कीजिए।

4. सामाजिक शोध के पंचम चरण का वर्णन कीजिए।

5. सामाजिक शोध के सप्तम चरण की प्रक्रिया समझाइए।

2.6 शब्दावली

सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- यंग, पी. वी. 'साइण्टिफिक सोशल सर्वेज एण्ड रिसर्च, इण्डियन रिप्रिन्ट्स, फोर्थ प्रिन्टिंग, प्रेन्ट्सि हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977
- मोज़र, सी. ए, 'सर्वे मेथड्स इन सोशल इन्वेस्टिगेशन, न्यूयार्कः दी मैकमिलन कम्पनी, 1961.
- गुडे एण्ड हाट, 'मेथड्स ऑफ सोशल रिसर्च, मैकग्रा-हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1952.
- सारन्ताकोस, एस 'सोशल रिसर्च', मैकमिलन: लन्दन, 1998.
- http://hi.wikipedia.org/wiki/सामाजिक अनुसंधान

इकाई-03 अनुसन्धान के प्रकार: विशुद्ध व्यावहारिक तथा क्रियात्मक

Types of Research: Basic, Applied & Action

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 अध्ययन के उद्देश्य

3.2 अनुसंधान का अर्थ एवं प्रकार

3.3 विशुद्ध अनुसन्धान

3.3.1 विशुद्ध अनुसन्धान का अर्थ व परिभाषा

3.3.2 विशुद्ध अनुसन्धान के उद्देश्य एवं महत्व

3.4 व्यावहारिक अनुसन्धान

3.4.1 व्यावहारिक अनुसन्धान का अर्थ व परिभाषा

3.4.2 व्यावहारिक अनुसन्धान के उद्देश्य एवं महत्व

3.5 क्रियात्मक अनुसन्धान

3.5.1 क्रियात्मक अनुसन्धान का अर्थ व परिभाषा

3.5.2 क्रियात्मक अनुसन्धान के प्रकार

(i) निदानात्मक क्रियात्मक अनुसन्धान

(ii) सहकारी क्रियात्मक अनुसन्धान

(iii) प्रयोगात्मक क्रियात्मक अनुसन्धान

3.6 सार-संक्षेप

3.7 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

3.8 अभ्यास-प्रश्न

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

अनुसन्धान आधुनिक युग की एक अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। यह न केवल ज्ञान के विस्तार का माध्यम है, बल्कि समाज की जटिल समस्याओं के समाधान हेतु भी एक सशक्त उपकरण के रूप में कार्य करता है। इस इकाई में हम अनुसन्धान के प्रमुख प्रकारों अध्ययन करेंगे।

3.1 अध्ययन के उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन में आपको अनुसंधान के अर्थ तथा प्रकारों की विस्तृत जानकारी दी जायेगी। यहाँ विशुद्ध अनुसंधान, व्यावहारिक अनुसंधान और के अर्थ क्रियात्मक अनुसंधान के अर्थ व उद्देश्य महत्व की व्यापक रूप में व्याख्या की जायेगी।

3.2 अनुसंधान अर्थ एवं प्रकार

अनुसन्धान का तात्पर्य बार-बार खोजने से हैं। इसमें दो तत्वों की प्रधानता पाई जाती है- प्रथम अवलोकन द्वारा घटनाओं को उद्देश्यपूर्ण ढंग से देखना तथा उपलब्ध तथ्यों के आधार पर घटना को समझना, तथा द्वितीय उन तथ्यों के अर्थ को जानकर घटना के पीछे छिपे कारणों को समझना। इन दोनों तथ्यों को ध्यान में रखकर ही ज्ञान संचित किया जाता है। इस प्रकार से ज्ञान संचित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को अनुसंधान कहते हैं।

वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार ''तथ्यों तथा सिद्धान्तों या किसी भी घटना को ज्ञात करने हेतु सावधानीपूर्वक एवं विवेचनात्मक खोज या निष्ठापूर्वक किये गये अन्वेषण को अनुसंधान कहते हैं।''

अनुसंधान एक ऐसा प्रयत्न है जिसमें नवीन ज्ञान की खोज तथा उपलब्ध ज्ञान में परिवर्तन को भी मालूम करना होता है। जब कोई भी अनुसंधान सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं या सामाजिक जटिलताओं से सम्बन्धित होता है तब उसे सामाजिक अनुसंधान कहते हैं।

समाज तथा उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन सामाजिक अनुसंधान के द्वारा किया जाता है। सभी सामाजिक अनुसन्धान समान प्रकृति के नहीं होते। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति अलग-अलग होने के कारण विभिन्न शोध के विषयों तथा अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। सामाजिक अनुसंधान के भी कई लक्ष्य, आधार, परिप्रेक्ष्य, दृष्टिकोण, सन्दर्भ परिधि आदि होते हैं। अध्ययन तथा शोध के अनेक चरण होते हैं। सामाजिक अनुसंधान तथा अध्ययन की

समस्याओं तथा उद्देश्य की भिन्नताओं के आधार पर विभिन्न वैज्ञानिकों ने सामाजिक अनुसंधान के प्रकारों का उल्लेख किया है। इन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर सामाजिक अनुसंधान के प्रमुख प्रकार हैं- (1) विशुद्ध अनुसंधान, (2) व्यावहारिक अनुसंधान और (3) क्रियात्मक अनुसंधान।

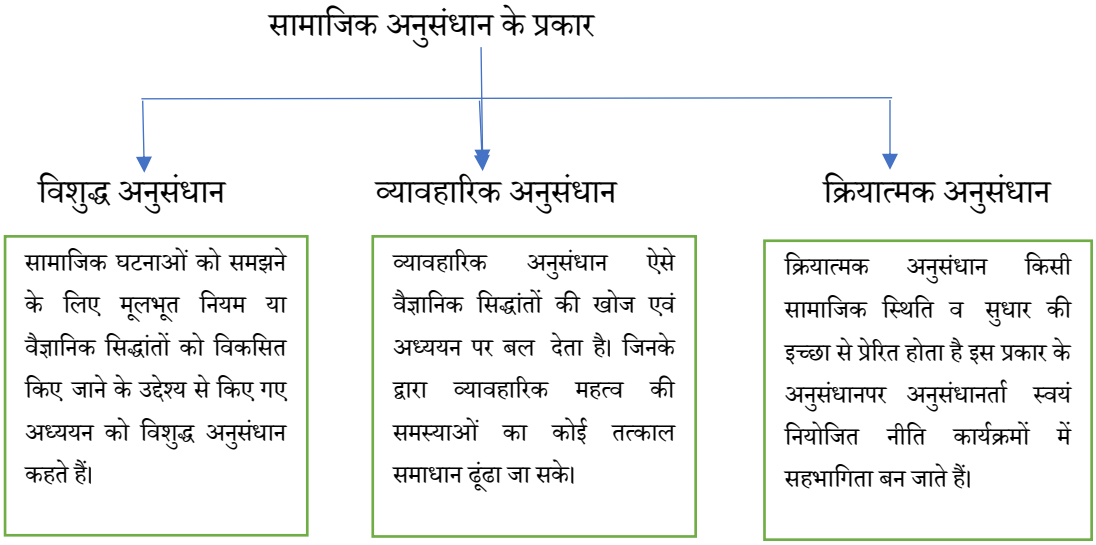

उपर्युक्त सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य नियमों का सत्यापन करके नये सिद्धान्तों की रचना करनी होता है, तो कभी अनुसंधान के द्वारा उन परिस्थितियों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है जिनकी सहायता से किसी विशेष समस्या का समाधान करने के व्यावहारिक तरीकों को समझा जा सके। अनुसंधान के प्रकार ज्ञान प्राप्ति, जिज्ञासा को शान्त करने, प्राक्कल्पना का निर्माण, समाज कल्याण, समाज विकास, समस्याओं के निराकरण, घटना का वर्णन तथा व्याख्या आदि के आधार पर किये गये हैं।

3.3 विशुद्ध अनुसंधान

सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत जब सामाजिक घटनाओं के बीच पाये जाने वाले कार्य-कारण के सम्बन्धों को समझकर विषय से सम्बन्धित वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करनी होती है, तब इसे हम विशुद्ध अनुसंधान कहते हैं। विशुद्ध अनुसंधान ज्ञान के विस्तार तथा सिद्धान्तों के निर्माण के लिये किया जाता है। इस अनुसंधान के द्वारा अवधारणाओं का स्पष्टीकरण, स्थापना तथा परिष्करण किया जाता है। विशुद्ध अनुसंधान सिद्धान्त, ज्ञान, तथ्य संकलन, अनुसंधान की दिशा आदि के लिये किया जाता है।

3.3.1 विशुद्ध अनुसंधान का अर्थ व परिभाषा

पी.वी. यंग (1960) के अनुसार- ''विशुद्ध अथवा मौलिक अनुसंधान उसे कहा जाता है जिसमें ज्ञान का संचय केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये किया जाता है।'' इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विशुद्ध अनुसंधान की प्रकृति सैद्धान्तिक होती है। यह अनुसंधान सैद्धान्तिक मान्यताओं से आरम्भ होता है तथा अनुसंधान से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों से भी सिद्धान्त ही विकसित किये जाते हैं।

अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान के अनुसार- ''विशुद्ध या आधारभूत शोध में ज्ञान के विकास के लिये किये गये ऐसे मौलिक अन्वेषणों को शामिल किया जाता है जिनका विशिष्ट उद्देश्य अन्वेषण करवाने वाले प्रतिष्ठानों या संगठन की किन्हीं समस्याओं का उत्तर देना नहीं होता।'' इस परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि विशुद्ध अनुसंधान का सम्बन्ध किसी समस्या के समाधान या हल ढूँढ़ने से नहीं होता। यह केवल ज्ञान और विकास के लिये किया गया अनुसंधान है।

विशुद्ध अनुसंधान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ज्ञान के विद्यमान भण्डार में वृद्धि करना है। इसके साथ ही इसका कार्य हमारे मस्तिष्क में विद्यमान शंकाओं और अव्यावहारिक सिद्धान्तों का निराकरण तथा परिष्करण करना है।

विशुद्ध शोध में वैज्ञानिक तटस्थता तथा वस्तुपरकता का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसलिये इसको 'विशुद्ध अनुसंधान', 'मौलिक अनुसंधान' अथवा 'आधारभूत अनुसंधान' के नाम से पुकारा जाता है। इस अनुसंधान का परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है, मानविकी दृष्टिकोण नहीं होता है। इसी कारण विशुद्ध अनुसंधान का सीधा सम्बन्ध, किसी भी प्रकार की समाज की समस्याओं, कल्याणकारी योजनाओं, नीति-निर्माण तथा व्यावहारिक उपयोगिता से नहीं होता है।

विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं का अध्ययन ज्ञान-प्राप्ति के लिये कारण प्रभाव सम्बन्धों का अध्ययन वस्तुनिष्ठता के साथ आनुभाविक तथ्यों का संकलन करके करता है तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का निर्माण करके विज्ञान के ज्ञान की वृद्धि करता है। इस अनुसंधान का उद्देश्य रहस्यों का पता लगाना, सत्य को ज्ञात करना, प्रकार्यात्मक सम्बन्धों को खोजना, नियमों को खोजना, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना तथा पुराने सिद्धान्तों का परिमार्जन, परिष्करण, परिवर्द्धन आदि करना है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. विशुद्ध अनुसंधान किसे कहा जाता है?

.....

.....

.....

3.3.2 विशुद्ध अनुसंधान के उद्देश्य एवं महत्व

गुडे एवं हॉट (1952) ने विशुद्ध अनुसंधान के अनेक उद्देश्य बताये हैं:

(1) अध्ययन का दिशा-निर्धारण- गुडे एवं हॉट (1952) के अनुसार सामाजिक विशुद्ध अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य समाजशास्त्र विषय के अध्ययन के क्षेत्र, परिप्रेक्ष्य विषय से सम्बन्धित आवश्यक तथ्य आदि को निश्चित करना है। विशुद्ध अनुसंधान यह निर्धारित करता है कि अध्ययन से सम्बन्धित किस प्रकार के तथ्य महत्वपूर्ण कारक के रूप में हैं और कौन से तथ्य अध्ययन से सम्बन्धित नहीं हैं।

(2) तथ्यों का वर्गीकरण- विशुद्ध अनुसंधान के अन्तर्गत अध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान, तथ्यों, सामग्री आदि का वर्गीकरण, विश्लेषण तथा सारणीयन करने में मार्ग-निर्देशन का कार्य करता है। विशुद्ध अनुसंधान के द्वारा ही एकत्रित तथ्यों की शुद्धता व उपयोगिता की जाँच की जाती है। साथ ही तथ्यों का कारण-प्रभाव (cause and effect) सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। विशुद्ध अनुसंधान तथ्यों के वर्गीकरण के चरों का आधार भी निश्चित करता है।

(3) अध्ययन का संक्षिप्तीकरण- विशुद्ध अनुसंधान का अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि अनेक प्रविधियों व पद्धतियों से संकलित किये गये तथ्य पूर्णतया उपयुक्त एवं महत्वपूर्ण होते हुए भी अव्यवस्थित एवं बड़े पैमाने पर होते हैं। इस उपलब्ध महत्वपूर्ण ज्ञान को सुव्यवस्थित करके उसका संक्षिप्तीकरण किया जाता है। संक्षिप्तीकरण के द्वारा अध्ययन सामग्री को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है-;पद्ध आनुभाविक सामान्यीकरण और ;पपद्ध विभिन्न प्रस्तावनाओं के सम्बन्धों में व्याख्या। विशुद्ध अनुसंधान अध्ययन के परिप्रेक्ष्य को निर्धारित करने के साथ-साथ तथ्यों का संक्षिप्तीकरण भी करता है।

(4) ज्ञान की कमी बताना- गुडे एवं हॉट (1952) ने लिखा है कि विशुद्ध अनुसंधान उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करने के साथ-साथ यह भी स्पष्ट करता है कि अध्ययन में किन तथ्यों को एकत्र करना है तथा किन-किन तथ्यों को एकत्र किया जा चुका है।

(5) ज्ञान की जिज्ञासा की सन्तुष्टि करना- विशुद्ध अनुसंधान का उद्देश्य मानव की आधारभूत इच्छा ज्ञान की जिज्ञासा की सन्तुष्टि करना है। विशुद्ध अनुसंधान के द्वारा मौलिक तथा आधारभूत नियमों की खोज की जाती है, जिससे अध्ययन को नई दिशा प्राप्त होती है तथा निष्कर्षों को सामान्य सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करके घटनाओं की प्रकृति को समझा जा सकता है। समाज परिवर्तनशील है इसलिये इससे सम्बन्धित सिद्धान्त भी समय-सापेक्ष नहीं रह पाते हैं। परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने से पुराने सिद्धान्त तथा व्यवहार के नियमों सम्बन्धी अध्ययन को दिशा-निर्देश विशुद्ध अनुसंधान प्रदान करता है। साथ ही यह ज्ञान के विकास में सहायता करते हैं।

(6) तथ्यों की भविष्यवाणी- विशुद्ध अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि इसमें भावी परिस्थितियों का पूर्वानुमान करने अथवा भविष्यवाणी करने की क्षमता होती है। विशुद्ध अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वप्रथम घटनाओं के बीच पाये जाने वाले कार्य-कारण सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है। विशुद्ध अनुसंधान तथ्यों का क्रमबद्ध और व्यवस्थित रूप से अध्ययन करने के आधार पर यह भविष्यवाणी करता है कि अमुक तथ्यों की उपस्थिति में अमुक परिणाम निकलेंगे (शर्मा, 1999)।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विशुद्ध अनुसंधान के उपरोक्त उद्देश्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्यक्ष रूप से विशुद्ध अनुसंधान का उद्देश्य समाज की समस्याओं तथा समाज के कल्याण से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। विशुद्ध अनुसंधान जिसे आधारभूत अनुसंधान भी कहा जाता है, ज्ञान की खोज और व्यावहारिक उपयोग की चिन्ता के बिना घटना से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार के अनुसंधान का प्रयोग सामाजिक घटनाओं के विषय में मौजूदा सिद्धान्तों का समर्थन करने या अस्वीकार करने में भी किया जाता है।

3.4 व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)

एक अनुसंधानकरर्ता जब वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर किसी समस्या का इस दृष्टिकोण से अध्ययन करता है कि वह एक व्यावहारिक समाधान खोज सके, तब ऐसे अनुसंधान को हम व्यावहारिक अनुसंधान कहते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान का प्रयोग व्यावहारिक समस्याओं के निदान के लिये वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग के तरीकों की खोज से सम्बन्धित है। यह सामाजिक तथा वास्तविक जीवन की समस्याओं के विश्लेषण तथा निदान पर जोर देता है। इस अनुसंधान का सम्बन्ध विशुद्ध अनुसंधान के सिद्धान्तों पर आधारित कार्यक्रमों और नीतियों के निर्माण के आधार पर बना रहता है। सामाजिक विज्ञानों के विकास के लिये व्यावहारिक अनुसंधान आवश्यक है। यह अनुसंधान समाज की संरचना और उसके कार्यों की व्याख्या तथा वर्णन करता है। व्यावहारिक अनुसंधान के अंतर्गत अनुसंधानकर्ता स्वयं ही किसी समस्या का समाधान नहीं करता, लेकिन वह कुछ व्यावहारिक विषयों से सम्बन्धित एक ऐसा यथार्थ ज्ञान अवश्य प्रदान करता है जिसे आधार मानकर समाज-सुधारक, प्रशासक और प्रयोजनकर्ता समुचित रूप से कार्य कर सकें।

3.4.1 व्यावहारिक अनुसंधान का अर्थ व परिभाषा

व्यावहारिक अनुसंधान की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी गयी है:

होर्टन एवं हंट (1984) के अनुसार- ''जब वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग ऐसे ज्ञान की खोज के लिये किया जाता है जो व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में उपयोगी हो, तो इसे व्यावहारिक अनुसंधान कहते हैं।''

फेस्टिंगर तथा काज (1953) के अनुसार- ''जब तथ्यों का संकलन उद्योग या प्रशासन के संदर्भ में किसी उपयोगितवादी दृष्टिकोण से किया जाता है तथा जिसकी नीति-निर्माताओं को आवश्यकता होती है तब इसे व्यावहारिक अनुसंधान कहा जाता है।''

पी.वी. यंग (1960) के अनुसार- ''ज्ञान की खोज का लोगों की आवश्यकताओं और कल्याण के साथ एक निश्चित सम्बन्ध पाया जाता है। वैज्ञानिक यह मानकर चलता है कि समस्त ज्ञान मूलतः उपयोगी है, चाहे उसका उपयोग निष्कर्ष निकालने में या किसी क्रिया अथवा व्यवहार को कार्यान्वित करने में, एक सिद्धान्त के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में किया जाए। सिद्धान्त तथा व्यवहार अक्सर आगे चलकर एक-दूसरे में मिल जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से व्यावहारिक अनुसंधान की अनेक विशेषताएँ, उद्देश्य आदि स्पष्ट होते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान का परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण मानविकी होता है। व्यावहारिक अनुसंधान उपयोगितावादी होता है। अनुसंधानकर्ता प्राप्त तथ्यों की सहायता से किसी समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करता है तो ऐसे अनुसंधान का उद्देश्य व्यावहारिक होता है। यह अनुसंधान समस्या के कारणों, लक्षणों, नियमों आदि को समझने में सहायता करता है। इसके द्वारा सामाजिक नियोजन, नीति-निर्माण, सामाजिक समस्याओं आदि को समझने में सहायता प्रदान की जाती है।

स्वप्रगति परीक्षण

2. व्यावहारिक अनुसंधान किसे कहते हैं?

.....

.....

.....

3.4.2 व्यावहारिक अनुसंधान के उद्देश्य एवं महत्व

व्यावहारिक अनुसंधान एक ऐसा शोध है जिसका उद्देश्य तात्कालिक अथवा दूरगामी महत्व की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान खोजना होता है। इस प्रकार के अनुसंधान में तथ्यों का संकलन नीति-निर्माताओं की आवश्यकता तथा उपयोगिता के दृष्टिकोण से किया जाता है। व्यावहारिक शोध ऐसे वैज्ञानिक

सिद्धान्तों की खोज पर बल देता है जिनके द्वारा व्यावहारिक महत्व की समस्याओं का कोई तत्काल समाधान ढूंढ़ा जा सके।

पी.वी. यंग (1960) ने लिखा है कि ''विशुद्ध और व्यावहारिक अनुसंधान के बीच विभाजन की कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती। अनुसंधान के यह दोनों स्वरूप सिद्धान्तों के विकास और सिद्धान्तों के सत्यापन के लिये एक-दूसरे पर निर्भर हैं।'' व्यावहारिक अनुसंधान परिवर्तनशील मानव समाज का अध्ययन करता है।

गुडे एवं हॉट (1952) ने व्यावहारिक अनुसंधान के निम्नलिखित महत्वपूर्ण उद्देश्य बताये हैं:

1. ज्ञान का विकास- व्यावहारिक अनुसंधान शोध से सम्बन्धित नवीन तथ्यों को प्रस्तुत करता है। व्यावहारिक अनुसंधान का उद्देश्य सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक व्यवस्थाओं आदि के सम्बन्ध में ज्ञान का विकास करना है। अनुसंधान के अन्तर्गत जब तथ्यों का संकलन किया जाता है तो अनेक ऐसे तथ्य भी प्रकाश में आते हैं जो समस्याओं को हल करने में सहायक सिद्ध होते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान विशुद्ध शोध द्वारा बनाये गये नियमों तथा सिद्धान्तों का आनुभाविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करता है तथा उनकी प्रामाणिकता, सत्यता एवं विश्वसनीयता की जाँच करता है। यह अनुसंधान नवीन तथ्यों की खोज करने के साथ ज्ञान का विकास भी करता है।

2. तथ्यों का प्रकार्यात्मक अध्ययन- सामाजिक घटनाओं के सन्दर्भ में अनेकों समस्याएँ तथा अवधारणायें ऐसी होती हैं जिन्हें केवल विशुद्ध अनुसंधान के द्वारा नहीं समझा जा सकता। उनकी वैधता तथा उपयोगिता की परीक्षा करने के लिये व्यावहारिक अनुसंधान तथ्यों का परस्पर एक-दूसरे के साथ कारण-प्रभाव सम्बन्ध का पता लगाता है। प्राप्त तथ्य का अन्य अनेकों तथ्यों के साथ परस्पर क्या गुण सम्बन्ध है? इसका अध्ययन ही प्रकार्यात्मक शोध कहलाता है। व्यावहारिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं, संरचनाओं, व्यवस्थाओं, सम्बन्धों, संगठनों आदि के विभिन्न तत्वों, लक्षणों, कारकों का अध्ययन करके उनके गुण-दोषों की व्याख्या करता है।

3. सिद्धान्तों की खोज- व्यावहारिक अनुसंधान का उद्देश्य नये-नये सिद्धान्तों की खोज करना है। विशुद्ध अनुसंधान केवल सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है, यह नहीं देखता कि वे सिद्धान्त वास्तव में उपयोगी हैं अथवा नहीं। इसके विपरीत, व्यावहारिक अनुसंधान में आनुभाविक तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि किन विशेष दशाओं में सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया, और वे किस सीमा तक व्यावहारिक हैं। इस अनुसंधान के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त वैज्ञानिक होते हैं। नये-नये तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों की खोज की जाती है।

4. अवधारणाओं का विकास- व्यावहारिक अनुसंधान की प्रक्रिया में एक चरण अवधारणाओं की व्याख्या, स्पष्टीकरण, संशोधन, संक्षिप्तीकरण आदि का होता है। वर्तमान की परिवर्तनशील दशाओं में अनेक अवधारणायें ऐसी होती हैं जो स्पष्ट और यथार्थ प्रतीत नहीं होतीं। व्यावहारिक अनुसंधान नये-नये तथ्य एकत्र करता है तो उनका प्रभाव अवधारणाओं पर पड़ता है, क्योंकि अवधारणायें तथ्यों की व्याख्या करती हैं। नये-नये तथ्यों की खोज का प्रभाव उनकी व्याख्या करने वाली अवधारणाओं पर पड़ने के कारण शोध उनकी भी पुनः परीक्षा करता है तथा उनकी नवीन व्याख्या के साथ नई अवधारणा का निर्माण करता है। इस प्रकार व्यावहारिक अनुसंधान का उद्देश्य पुरानी अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करना, स्पष्टीकरण करना, परिष्कृत करना तथा नवीन अवधारणाओं का निर्माण करना है।

व्यावहारिक अनुसंधान का महत्व

सामाजिक विज्ञानों में व्यावहारिक अनुसंधान को प्रभावशाली बनाकर समाज विज्ञानों के महत्व को बढ़ाया जा सकता है। व्यावहारिक अनुसंधान की उपयोगिता निम्नलिखित हैं:

1. व्यावहारिक अनुसंधान जो एक या अनेकों चरों को नियंत्रित करके और नियंत्रित तथा प्रयोग किये जाने वाले समूह की तुलना करके महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालते हैं।

2. व्यावहारिक अनुसंधान द्वारा ऐसे तथ्य और प्रविधियों का विकास किया जाता है जो विशुद्ध शोध और समाज के लिये उपयोगी होती है।

3. बहुत-सी समस्यायें ऐसी होती हैं जिन्हें केवल विशुद्ध अनुसंधान के द्वारा नहीं समझा जा सकता। उनकी वैधता तथा उपयोगिता का परीक्षण व्यावहारिक अनुसंधान के द्वारा ही संभव होता है।

4. व्यावहारिक अनुसंधान समाज की समस्याओं का अध्ययन करने के साथ ही उन सामाजिक समस्याओं को दूर करने के सुझाव भी देता है।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यावहारिक अनुसंधान नवीन तथ्यों का संकलन तथा खोज करता है। अनुसंधान के आधार पर पुराने सिद्धान्तों का परीक्षण तथा नवीन सिद्धान्तों का निर्माण करता है। समाज की विभिन्न समस्याओं के संदर्भ में नवीन अवधारणाओं का निर्माण उनकी व्याख्या तथा स्पष्टीकरण करता है। व्यावहारिक अनुसंधान द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के कारण सामाजिक अनुसंधान में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. व्यावहारिक अनुसंधान की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए

.....

.....

.....

.....

3.5 क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research)

क्रियात्मक अनुंसधान व्यावहारिक अनुसंधान का ही एक प्रकार है। व्यावहारिक शोध के ऐसे विशिष्ट रूप को क्रियात्मक या क्रियान्मुखी अनुसंधान कहते हैं जिसका प्रमुख उद्देश्य वांछित सामाजिक परिवर्तन के लिये प्रभावकारी साधनों का विश्लेषण करना है। अधिकांश क्रियात्मक शोध किसी सामाजिक स्थिति अथवा दशा में संशोधन अथवा सुधार की इच्छा से प्रेरित होती है। बहुधा क्रियात्मक शोध सामाजिक परिवर्तन, व्यक्तियों अथवा लघु सामाजिक समूहों की व्याधिकीय स्थिति में सुधार या किसी संगठन की क्षमता में बढ़ोत्तरी करने अथवा किसी समूह में वैमनस्य को कम करने के प्रयोजनों को लेकर की जाती है। क्रियात्मक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता अनेकों बार स्वयं नियोजित नीति-कार्यक्रमों में सहभागिक बन जाते हैं और अपने ज्ञान और शोध अनुभव का प्रयोग उन संगठनों और समुदायों में करते हैं जिनमें उनकी सेवायें ली जाती हैं।

3.5.1 क्रियात्मक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा

गुडे एवं हाट (1952) के अनुसार- ''क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का एक भाग है जिसका लक्ष्य मौजूदा दशाओं को परिवर्तित करना होता है, चाहे वह गन्दी बस्ती की दशाएँ हों या प्रजातीय तनाव या पूर्वाग्रह हो या किसी संगठन की प्रभावशीलता हो।''

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क्रियात्मक अनुसंधान सामाजिक घटना की तात्कालिक समस्याओं से सम्बन्धित होता है। यह अनुसंधान की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यावहारिक कार्यकर्त्ता अपनी समस्या का इस दृष्टि से वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करते हैं ताकि आवश्यकतानुसार अपने निर्णय एवं क्रियाओं को दिशा दे सकें, तथा उनमें परिवर्तन एवं सुधार कर सकें एवं इनका मूल्यांकन कर सकें। क्रियात्मक अनुसंधान सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के लिये वैज्ञानिक

विधियों का प्रयोग करके कारकों का पता लगाता है तथा उनको दूर करने के लिये सुधारात्मक उपाय बताता है।

स्वप्रगति परीक्षण

4. क्रियात्मक शोध का आशय स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

5. क्रियात्मक अनुसंधान की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

3.5.2 क्रियात्मक अनुसंधान के प्रकार

क्रियात्मक अनुसंधान मुख्यतः तीन प्रकार का होता है:

1. निदानात्मक क्रियात्मक अनुसंधान- निदानात्मक क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा सामाजिक समस्याओं के कारणों को वैज्ञानिक विधि के द्वारा ज्ञात किया जाता है और उनके समाधान प्रस्तुत किये जाते हैं। समस्या के कारणों को समझने और उसका समाधान करने हेतु अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा समस्या से सम्बन्धित तथ्यों को तटस्थ रूप से अध्ययन कर एकत्रित करता है। तत्पश्चात् प्राप्त तथ्यों के संदर्भ में समस्या के समाधान हेतु सुझाव दिये जाते हैं। अनुसंधानकर्ता द्वारा समस्या का समाधान स्वयं नहीं किया जाता, बल्कि उसके द्वारा दिये गये सुझावों के आधार पर यह कार्य प्रशासकों, नीति-निर्धारकों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिये, अनुसंधान यदि ग्रामीण समाज में युवकों की बेरोजगारी के कारणों को ज्ञात करने तथा उन कारणों पर आधारित समस्या का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करने हेतु किया जाता है, तब इसे निदानात्मक अनुसंधान कहा जायेगा। निदानात्मक अनुसंधान के लिये अनुसंधानकर्ता सामाजिक समस्या से सम्बन्धित व्यक्तियों से उसके कारणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर महत्वपूर्ण तथ्य एकत्रित करता है। तत्पश्चात् विभिन्न दशाओं के तुलनात्मक प्रभाव का विश्लेषण करके ऐसे सुझाव दिये जाते हैं, जिनसे समस्या का व्यावहारिक समाधान किया जा सके।

2. सहकारी क्रियात्मक अनुसंधान- सहकारी क्रियात्मक अनुसंधान सामाजिक समस्या के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करके एक विशेष समिति की स्थापना कर विकास कार्यक्रमों को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के

उद्देश्य से किया जाता है। जिस प्रकार भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् ग्राम पंचायतों द्वारा ग्रामीण जीवन को विकासशील बनाने के लिये अत्यधिक प्रयत्न किये गये। लेकिन इस कार्य में अधिक सफलता नहीं मिल सकी। ग्राम पंचायतों की समस्याओं के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करके उनका समाधान ढूंढ़ने के लिये एक विशेष समिति का निर्माण कर पंचायती राज व्यवस्था का अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सका है। वर्तमान में अन्तर्जातीय तनावों को दूर करने, नीतियों की उपयोगिता को समझने और सरकार द्वारा चलाये गये विकास कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये सहकारी क्रियात्मक अनुसंधान महत्वपूर्ण भूमिका रखता है।

3. प्रयोगात्मक क्रियात्मक अनुसंधान- प्रयोगात्मक क्रियात्मक अनुसंधान में अध्ययन किये जाने वाले चरों के सम्बन्धों पर अधिकाधिक नियंत्रण लगाने पर बल दिया जाता है। अनुसंधान की इस विधि में अनुसंधानकर्ता एक या अधिक स्वतंत्र चरों को परिचालित तथा नियंत्रित कर आश्रित चर में उत्पन्न हुए परिवर्तन को ज्ञात करता है। इस प्रकार अनुसंधान के तत्वों को दो प्रकार के समूहों-प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूहों में विभाजित किया जाता है। तत्पश्चात् प्रायोगिक समूह में कारणात्मक कारक को लागू किया जाता है, जबकि नियंत्रित समूह में ऐसा नहीं किया जाता। एक निश्चित समय के बाद दोनों समूहों का पुनः विश्लेषण किया जाता है कि कारणात्मक कारक के लागू किये जाने के उपरान्त प्रायोगिक समूह में नियंत्रित समूह की तुलना में क्या परिवर्तन हुआ है। इस अनुसंधान में तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा एक निश्चित अवधि में विभिन्न कारकों के प्रभावों का क्रियान्वयन किया जाता है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि क्रियात्मक अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके वैज्ञानिक चेतना का विकास करता है। क्रियात्मक अनुसंधान एक संगठित एवं खोजपूर्ण क्रिया है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों या समूहों से सम्बन्धित परिवर्तन तथा सुधार के उद्देश्य से उनका अध्ययन किया जाता है। क्रियात्मक अनुसंधान मुख्य रूप से सामाजिक नियोजन के कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करता है साथ ही सामाजिक कल्याण तथा सुधार योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहयोग करता है।

3.6 सार-संक्षेप

समस्त अनुसंधानों का एकमात्र आधारभूत उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति होता है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति भिन्न-भिन्न होने के कारण विभिन्न अनुसंधानों के विषयों तथा अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार अनुसंधान की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। इन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर सामाजिक घटनाओं का अध्ययन विशुद्ध, व्यावहारिक और क्रियात्मक अनुसंधान के द्वारा किया जाता है। विशुद्ध अनुसंधान सिद्धान्तों के निर्माण तथा ज्ञान के विस्तार के लिये किया जाता है। व्यावहारिक अनुसंधान के अन्तर्गत

वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग ऐसे ज्ञान की खोज के लिये किया जाता है जो व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में उपयोगी होती है। क्रियात्मक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ता अनेकों बार स्वयं नियोजित नीति कार्यक्रमों में सहभागिक बन जाते हैं और अपने ज्ञान तथा शोध अनुभव का प्रयोग उन संगठनों और समुदायों में करते हैं।

3.7 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत जब सामाजिक घटनाओं के बीच पाये जाने वाले कार्य-कारण के सम्बन्धों को समझकर विषय से सम्बन्धित वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करनी होती है, तब इसे हम विशुद्ध अनुसंधान कहते हैं। विशुद्ध अनुसंधान ज्ञान के विस्तार तथा सिद्धान्तों के निर्माण के लिये किया जाता है। इस अनुसंधान के द्वारा अवधारणाओं का स्पष्टीकरण, स्थापना तथा परिष्करण किया जाता है। विशुद्ध अनुसंधान सिद्धान्त, ज्ञान, तथ्य संकलन, अनुसंधान की दिशा आदि के लिये किया जाता है।

2. एक अनुसंधानकर्ता जब वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर किसी समस्या का इस दृष्टिकोण से अध्ययन करता है कि वह एक व्यावहारिक समाधान खोज सके, तब ऐसे अनुसंधान को हम व्यावहारिक अनुसंधान कहते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान का प्रयोग व्यावहारिक समस्याओं के निदान के लिये वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग के तरीकों की खोज से सम्बन्धित है। यह सामाजिक तथा वास्तविक जीवन की समस्याओं के विश्लेषण तथा निदान पर जोर देता है। इस अनुसंधान का सम्बन्ध विशुद्ध अनुसंधान के सिद्धान्तों पर आधारित कार्यक्रमों और नीतियों के निर्माण के आधार पर बना रहता है।

3. व्यावहारिक अनुसंधान का परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण मानविकी होता है। व्यावहारिक अनुसंधान उपयोगितावादी होता है। अनुसंधानकर्ता प्राप्त तथ्यों की सहायता से किसी समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करता है तो ऐसे अनुसंधान का उद्देश्य व्यावहारिक होता है। यह अनुसंधान समस्या के कारणों, लक्षणों, नियमों आदि को समझने में सहायता करता है। इसके द्वारा सामाजिक नियोजन, नीति-निर्माण, सामाजिक समस्याओं आदि को समझने में सहायता प्रदान की जाती है।

4. क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का एक भाग है जिसका लक्ष्य मौजूदा दशाओं को परिवर्तित करना होता है, चाहे वह गन्दी बस्ती की दशाएँ हों या प्रजातीय तनाव या पूर्वाग्रह हो या किसी संगठन की प्रभावशीलता हो।

5. क्रियात्मक अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके वैज्ञानिक चेतना का विकास करता है। क्रियात्मक अनुसंधान एक संगठित एवं खोजपूर्ण क्रिया है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों या समूहों से सम्बन्धित परिवर्तन

तथा सुधार के उद्देश्य से उनका अध्ययन किया जाता है। क्रियात्मक अनुसंधान मुख्य रूप से सामाजिक नियोजन के कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करता है साथ ही सामाजिक कल्याण तथा सुधार योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहयोग करता है।

3.8 अभ्यास-प्रश्न

1. सामाजिक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं? अनुसंधान के प्रकारों की विवेचना कीजिये।

2. विशुद्ध अनुसंधान से आप क्या समझते हैं? सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में विशुद्ध अनुसंधान की उपयोगिता की विवेचना कीजिये।

3. विशुद्ध एवं व्यावहारिक अनुसंधान को परिभाषित करते हुए दोनों के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

4. क्रियात्मक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं ? इसके प्रकारों की व्याख्या कीजिये।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

अनुसंधान- नवीन ज्ञान की प्राप्ति अथवा विद्यमान ज्ञान में संशोधन, परिवर्द्धन अथवा परिमार्जन की दृष्टि से किये व्यवस्थित प्रयासों को शोध या अनुसंधान कहते हैं।

तथ्य- घटनाओं के संबंध में ऐसे कथन ही तथ्य की श्रेणी में आते हैं जिनका आनुभाविक आधार पर परीक्षण किया जा सकता है।

अवधारणा- अवधारणा तथ्यों के एक वर्ग या समूह की संक्षिप्त परिभाषा को कहते हैं।

वस्तुपरकता- वस्तुपरकता घटनाओं के अध्ययन का एक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार एक व्यक्ति घटना से संबंधित तथ्यों को पूर्वाग्रह अथवा भावनाओं की अपेक्षा साक्ष्य एवं तर्क के आधार पर निष्पक्ष, तटस्थ तथा किसी भी प्रकार की अभिनति एवं पूर्वधारणाओं से मुक्त होकर देखता-परखता है।

सामाजिक घटना- कोई भी घटना जिसकी उत्पत्ति एक या अधिक व्यक्तियों के प्रभाव पड़ने के फलस्वरूप होती है, सामाजिक घटना कहलाती है।

विशुद्ध अनुसंधान- जिसके अन्तर्गत तथ्यों का एकत्रीकरण केवल ज्ञान को बढ़ाने के लिये किया जाता है।

व्यावहारिक अनुसंधान- इस अनुसंधान में तथ्यों का संकलन व्यावहारिक समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है।

क्रियात्मक अनुसंधान- इस अनुसंधान में तथ्यों का संकलन वांछित सामाजिक परिवर्तन के लिये प्रभावकारी साधनों के रूप में किया जाता है।

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

- Festinger, Leon and Katz Dainel (1953) **Research Methods in the Behavioural Sciences**, New York, The Dryden Press.
- Horton, P.B. and C.L. Hunt (1984) **Sociology**, Anchland, Mc Graw Hill Book Co.
- Young, P.V. (1960) **Scientific Social Surveys and Research**, Bombay, Asia Publising House.
- Goode, W.J. and P.K. Hatt (1952) **Methods in Social Research**, Anchland, Mc Graw Hill Book Co.
- शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश (1999) रिसर्च मेथडॉलॉजी, जयपुर, पंचशील प्रकाशन।

इकाई- 04 **शोध प्रारूप**

Research Design

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 अध्ययन के उद्देश्य

4.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ

4.3 शोध प्रारूप का उद्देश्य

4.4 शोध प्रारूप के घटक अंग

4.5 शोध प्रारूप का महत्व

4.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति

4.7 शोध प्रारूप के प्रकार

4.8 सार-संक्षेप

4.9 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

4.10 अभ्यास-प्रश्न

4.11 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 प्रस्तावना

सामाजिक शोध के सफल एवं उचित क्रियान्वयन के लिए सटीक एवं स्पष्ट शोध प्रारूप का होना आवश्यक है। शोध प्रारूप से तात्पर्य सम्पूर्ण शोध योजना के निर्धारण से है। शोध के वास्तविक क्रियान्वयन के पूर्व ही यह तय कर लिया जाता है कि विविध विषयों पर किस तरह से चरणबद्ध ढंग से कार्य करते हुए अन्तिम स्तर (निष्कर्ष) तक पहुँचा जायेगा। शोध की स्पष्ट रूपरेखा पर ही यह निर्भर करता है कि शोधकर्त्ता इधर-उधर अनावश्यक समय एवं संसाधन बरबाद नहीं करता है। उसे शोध की सीमा और कार्यक्षेत्र का ज्ञान रहता है और वह समस्याओं का पूर्वानुमान लगाते हुए अपने शोध कार्य को निरन्तर आगे बढ़ाता जाता है। प्रस्तुत

इकाई में शोध प्रारूप के अर्थ, परिभाषाओं, उद्देश्यों, महत्व घटक-अंगों को बताते हुए संक्षेप में इसके विविध प्रकारों को विश्लेषित किया गया है।

4.1 अध्ययन के उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए सम्भव होगा:

- सामाजिक अनुसंधान में शोध प्रारूप के अर्थ एवं महत्व को बताना।
- शोध प्रारूप के उद्देश्यों एवं घटक अंगों को स्पष्ट करना, तथा शोध प्रारूप के विविध प्रकारों का वर्णन करना।

4.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ

प्रस्तावित सामाजिक शोध की विस्तृत कार्य योजना अथवा शोधकार्य प्रारम्भ करने के पूर्व सम्पूर्ण शोध प्रक्रियाओं की एक स्पष्ट संरचना 'शोध प्रारूप' या 'शोध अभिकल्प' के रूप में जानी जाती है। शोध प्रारूप के सम्बन्ध में यह स्पष्ट होना चाहिए कि यह शोध का कोई चरण नहीं है क्योंकि शोध के जो निर्धारित या मान्य चरण हैं, उन सभी पर वास्तविक कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व ही विस्तृत विचार होता है और तत्पश्चात् प्रत्येक चरण से सम्बन्धित विषय पर रणनीति तैयार की जाती है। जब सम्पूर्ण कार्य योजना विस्तृत रूप से संरचित हो जाती है तब वास्तविक शोध कार्य प्रारम्भ होता है।

एफ.एन. करलिंगर (1964:275) के अनुसार, ''शोध प्रारूप अनुसंधान के लिए कल्पित एक योजना, एक संरचना तथा एक प्रणाली है, जिसका एकमात्र प्रयोजन शोध सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना तथा प्रसरणों का नियंत्रण करना होता है।''

पी.वी. यंग (1977:12.13) के अनुसार, ''क्या, कहाँ, कब, कितना, किस तरीके से इत्यादि के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए किया गया विचार अध्ययन की योजना या अध्ययन प्रारूप का निर्माण करता है।''

आर.एल. एकॉफ (1953:5) के अनुसार, ''निर्णय लिये जाने वाली परिस्थिति उत्पन्न होने के पूर्व ही निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रारूप कहते हैं।''

विविध वेबसाइटों पर भी शोध प्रारूप की परिभाषाएँ दी गयी हैं। उनमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं- ''शोध प्रारूप को शोध की संरचना के रूप में विचार किया जा सकता है- यह 'गोंद' होता है जो किसी यह शोध उद्देश्यों के उत्तर देने के लिए शोध की योजना है; विशिष्ट समस्या के समाधान की संरचना या खाका है।'' (www.decisionanalyst.com/glossary)

‘‘यह ऐसी योजना है जो शोध प्रश्नों को परिभाषित करे, परीक्षण की जाने वाली उपकल्पनाओं और अध्ययन किये जाने वाले परिवर्त्यों की संख्या और प्रकार स्पष्ट करे। यह वैज्ञानिक जाँच के सुविकसित सिद्धान्तों का प्रयोग करके परिवर्त्यों में सम्बन्धों का आकलन करती है।’’ (www.globalhivmeinfo.org/Digital Library)

‘‘क्या तथ्य इकट्ठा करना है, किनसे, कैसे और कब तक इकठ्ठा करना है और प्राप्त तथ्यों को कैसे विश्लेषित करना है, की योजना शोध प्रारूप है।’’ (www.ojp.usdoj.gov/BJA/evaluation/glossary)
स्पष्ट है कि शोध प्रारूप प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोध कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच-समझ के पश्चात् तैय्यार किया जाता है। शोध की प्रस्तावित रूपरेखा का निर्धारण अनेकों बिन्दुओं पर विचारोपरान्त किया जाता है। इसे सरलतम रूप में पी.वी. यंग (1977) ने शोध सम्बन्धित विविध प्रश्नों के द्वारा इस तरह स्पष्ट किया है:

- अध्ययन किससे सम्बन्धित है और आँकड़ों का प्रकार जिनकी आवश्यकता है?
- अध्ययन क्यों किया जा रहा है?
- वांछित आँकड़े कहाँ से मिलेंगे?
- कहाँ या किस क्षेत्र में अध्ययन किया जायेगा?
- कब या कितना समय अध्ययन में सम्मिलित होगा?
- कितनी सामग्री या कितने केसों की आवश्यकता होगी?
- चुनावों के किन आधारों का प्रयोग होगा?
- आँकड़ा संकलन की कौन सी प्रविधि का चुनाव किया जायेगा?

इस तरह, निर्णय लेने में जिन विविध प्रश्नों पर विचार किया जाता है, जैसे- क्या, कहाँ, कब, कितना, किस साधन से अध्ययन की योजना निर्धारित करते हैं। (पी. वी. यंग 1977: 12.13)

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (वॉट इज सोशल रिसर्च, चैप्टर 1: 9-10) में शोध प्रारूप और शोध प्रारूप बनाम पद्धति विषय पर विधिवत् विचार व्यक्त किया गया है। उसे हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। उसके अनुसार शोध प्रारूप को भवन निर्माण से सम्बन्धित एक उदाहरण के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। भवन निर्माण करते समय सामग्री का आर्डर देने या प्रोजेक्ट पूर्ण होने की तिथि निर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है, जब तक कि हमें यह न मालूम हो कि किस प्रकार का भवन निर्मित होना है। पहला निर्णय यह करना है कि क्या हमें अति ऊँचे कार्यालयी भवन की, या मशीनों के निर्माण के लिए एक फैक्टरी की, एक स्कूल, एक आवासीय भवन या एक बहुखण्डीय भवन की आवश्यकता है। जब तक यह

तय नहीं हो जाता हम एक योजना का खाका तैयार नहीं कर सकते, कार्य योजना तैयार नहीं कर सकते या सामग्री का आर्डर नहीं दे सकते हैं। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान को प्रारूप या अभिकल्प की आवश्यकता होती है या तथ्य संकलन के पूर्व या विश्लेषण शुरू करने के पूर्व एक संरचना की आवश्यकता होती है। एक शोध प्रारूप मात्र एक कार्य योजना (वर्क प्लान) नहीं है। यह प्रोजेक्ट को पूर्ण करने के लिए क्या करना है, की कार्य योजना का विस्तृत विवरण है। शोध प्रारूप का प्रकार्य यह सुनिश्चित करना है कि प्राप्त साक्ष्य हमें प्रारम्भिक प्रश्नों के यथासम्भव सुस्पष्ट उत्तर देने में सक्षम बनायें।

कार्य योजना बनाने के पूर्व या सामग्री आर्डर करने के पूर्व भवन निर्माता या वास्तुविद् को प्रथमतः यह निर्धारित करना जरूरी है कि किस प्रकार के भवन की जरूरत है, इसका उपयोग क्या होगा और उसमें रहने वाले लोगों की क्या आवश्यकताएं हैं। कार्य योजना इससे निकलती है। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन, तथ्य संकलन की पद्धति (उदाहरण के लिए प्रश्नावली, अवलोकन, दस्तावेज विश्लेषण) प्रश्नों के प्रारूप के मुद्दे सभी इस विषय के कि 'मुझे कौन से साक्ष्य इकट्ठे करने हैं', के सहायक/पूरक होते हैं।

गेराल्ड आर. लेस्ली (1994: 25-26) का कहना है कि ''शोध प्रारूप ब्लू प्रिन्ट है, जो परिवत्र्यों को पहचानता है और तथ्यों को एकत्र करने तथा उनका विवरण देने के लिए की जाने वाली कार्य प्रणालियों को अभिव्यक्त करता है।'' शोध प्रारूप को अत्यन्त विस्तार से समझाते हुए सौमेन्द्र पटनायक (2006: 31) ने लिखा है कि ''शोध प्रारूप एक प्रकार की रूपरेखा है, जिसे आपको शोध के वास्तविक क्रियान्वयन से पहले तैयार करना है। यह योजनाबद्ध रूप से तैयार एक खाका होता है जो उस रीति को बतलाता है जिसमें आपने अपने शोध की कार्य योजना तैयार की है। आपके पास अपने शोध कार्य पर दो पहलुओं से विचार करने का विकल्प है, नामतः अनुभवजन्य पहलू और विश्लेषणपरक पहलू। ये दोनों ही पहलू एक साथ आपके मस्तिष्क में रहते हैं, जबकि व्यवहार में आपको अपना शोध कार्य दो चरणों में नियोजित करना है: एक सामग्री संग्रहण का चरण और दूसरा उस सामग्री के विश्लेषण का चरण। आपकी मनोगत सैद्धान्तिक उन्मुखता और अवधारणात्मक प्रतिदर्शताएँ आपको इस शोध सामग्री के स्वरूप को निर्धारित करने में मदद करती हैं जो आपको एकत्र करनी है और कुछ हद तक यह समझने में भी कि आपको उन्हें कैसे एकत्र करना है। तदुपरान्त, अपनी सामग्री का विश्लेषण करते समय फिर से आमतौर पर सामाजिक यथार्थ सम्बन्धी सैद्धान्तिक और अवधारणात्मक समझ के सहारे आपको अपने शोध परिणामों को स्पष्ट करने और प्रस्तुत करने के वास्ते शोध सामग्री को वर्गीकृत करने में और विन्यास विशेष को पहचानने में दिशानिर्देश मिलता है।''

यंग (1977 :131) का कहना है कि, ''जब एक सामान्य वैज्ञानिक मॉडल को विविध कार्यविधियों में परिणत किया जाता है तो शोध प्रारूप की उत्पत्ति होती है। शोध प्रारूप उपलब्ध समय, कर्म शक्ति एवं धन,

तथ्यों की उपलब्धता उस सीमा तक जहाँ तक यह वांछित या सम्भव हो, उन लोगों एवं सामाजिक संगठनों पर थोपना जो तथ्य उपलब्ध करायेंगे, के अनुरूप होना चाहिए।''

ई.ए. सचमैन (1954:254) का कहना है कि, ''एकल या 'सही' प्रारूप जैसा कुछ नहीं है.... शोध प्रारूप सामाजिक शोध में आने वाले बहुत से व्यावहारिक विचारों के कारण आदेशित समझौते का प्रतिनिधित्व करता है। ;साथ हीद्ध अलग-अलग कार्यकत्र्ता अलग-अलग प्रारूप अपनी पद्धतिशास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक प्रतिस्थापनाओं के पक्ष में लेकर आते हैं। एक शोध प्रारूप विचलन का अनुसरण किए बिना कोई उच्च विशिष्ट योजना नहीं है, अपितु सही दिशा में रखने के लिए मार्गदर्शक स्तम्भों की श्रेणी है।'' दूसरे शब्दों में, एक शोध प्रारूप काम चलाऊ होता है। अध्ययन जैसे-जैसे प्रगति करता है, नये पक्ष, नई दशाएं और तथ्यों में नयी सम्बन्धित कड़ियाँ प्रकाश में आती हैं, और परिस्थितियों की माँग के अनुसार यह आवश्यक होता है कि योजना परिवर्तित कर दी जाये। योजना का लचीला होना जरूरी होता है। लचीलेपन का अभाव सम्पूर्ण अध्ययन की उपयोगिता को समाप्त कर सकता है (पी.वी. यंग 1977:131)।

स्वप्रगति परीक्षण

1. शोध प्रारूप की कोई एक परिभाषा लिखिए।

.....

.....

.....

2. शोध प्रारूप के बारे में यंग का क्या कथन है?

.....

.....

.....

4.3 शोध प्रारूप के उद्देश्य

मैनहाइम (1977:142) के अनुसार शोध प्रारूप के निम्नांकित पाँच उद्देश्य होते हैं:

(i) अपनी उपकल्पना का समर्थन करने और वैकल्पिक उपकल्पनाओं का खण्डन करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य इकठ्ठा करना।

(ii) एक ऐसा शोध करना जिसे शोध की विषयवस्तु और शोध कार्यविधि की दृष्टि से दोहराया जा सके।

(iii) परिवत्र्यों के मध्य सहसम्बन्धों को इस तरह से जाँचने में सक्षम होना जिससे सहसम्बन्ध ज्ञात हो सकें।

(iv) एक पूर्ण विकसित शोध परियोजना की भावी योजनाओं को चलाने के लिए एक मार्गदर्शी अध्ययन की आवश्यकता को दिखाना।

(v) शोध सामग्रियों के चयन की उचित तकनीकों के चुनाव द्वारा समय और साधनों के अपव्यय को रोकने में सक्षम होना।

एक अन्य विद्वान ने शोध प्रारूप के निम्नांकित उद्देश्यों का उल्लेख किया है:

(1) शोध विषय को परिभाषित, स्पष्ट एवं व्याख्या करना।

(2) दूसरों को शोध क्षेत्र स्पष्ट करना।

(3) शोध की सीमा एवं परिधि प्रदान करना।

(4) शोध के सम्पूर्ण परिदृश्य को प्रदान करना।

(5) तरीकों (modes) और परिणामों को बतलाना

(6) समय और संसाधनों की सुनिश्चितता।

4.4 शोध प्रारूप के घटक अंग:

शोध प्रारूप के उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि, यह शोध की वह युक्तिपूर्ण योजना होती है, जिसके अन्तर्गत विविध परस्पर सम्बन्धित अंग होते हैं, जिनके द्वारा शोध सफलतापूर्वक सम्पादित होता है। पी.वी.यंग (1977:13) ने शोध प्रारूप के अन्तर्गत निम्नांकित घटक अंगों का उल्लेख किया है जो अर्न्तसम्बन्धित होते हैं तथा परस्पर बहिष्कृत नहीं होते हैं:

(i) प्राप्त किये जाने वाली सूचनाओं के स्रोत,

(ii) अध्ययन की प्रकृति,

(iii) अध्ययन के उद्देश्य,

(iv) अध्ययन का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्श,

(v) अध्ययन द्वारा समाहित भौगोलिक क्षेत्र,

(vi) लगने वाले समय का निर्धारण,

(vii) अध्ययन के आयाम,

(viii) आँकड़ा संकलन का आधार,

(ix) आँकड़ा संकलन हेतु प्रयोग की जाने वाली प्रविधियाँ।

उपरोक्त शोध प्रारूप के अन्तर्सम्बन्धित और परस्पर समावेषित अंगों की संक्षिप्त विवेचना यहाँ आवश्यक प्रतीत होती है।

(i) सूचना के स्रोत: कोई भी शोध कार्य सूचना के अनेकों स्रोतों पर निर्भर करता है। मोटे तौर पर सूचना के इन स्रोतों को हम दो भागों में रख सकते हैं:

(अ) प्राथमिक स्रोत और **(ब)** द्वितीयक स्रोत। प्राथमिक स्रोत वे हैं जिनका शोधकर्ता पहली बार स्वयं प्रयोग कर रहा है, यानि शोधकर्ता ने अपने अध्ययन क्षेत्र में जा कर जिस तकनीक या उपकरण अथवा विधि का प्रयोग कर मौलिक तथ्य प्राप्त किया है, वह प्राथमिक तथ्य कहलाता है। वहीं दूसरों के द्वारा जो सूचना प्रकाशित या अप्रकाशित अथवा अन्य तरीकों से उपलब्ध हो, और जिसका उपयोग शोधकर्ता कर रहा हो वह द्वितियक सूचना का स्रोत होता है। उल्लेखनीय है कि बहुधा द्वैतियक सूचना का स्रोत एक समय में किसी शोधकर्ता का प्राथमिक सूचना स्रोत होता है।

अर्थपूर्ण तथ्यों की खोज में लगे समाजशास्त्री उस प्रत्येक सूचना के स्रोत का उपयोग करने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करते हैं जिनसे शोध कार्य में जरा भी प्रमाण या सहायता मिलने की संभावना होती है। सूचना के इन स्रोतों को विविध विद्वानों ने अलग-अलग प्रकारों में रखकर विश्लेषित किया है।

बैगले (1938: 202) ने सूचना के दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया है:

(अ) प्राथमिक स्रोत और **(ब)** द्वितीयक स्रोत।

(पी. वी. यंग 1977: 136) का कहना है कि सामान्यतः सूचना के स्रोत दो होते हैं- **(i)** प्रलेखीय और **(ii)** क्षेत्रीय स्रोत। सूचना के प्रलेखीय (डॉ. क्यूमेन्टरी) स्रोत वे होते हैं, जो कि प्रकाशित और अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्टों, सांख्यिकी, पाण्डुलिपियों, पत्रों, डायरियों इत्यादि में निहित होते हैं। दूसरी तरफ, क्षेत्रीय स्रोत के अन्तर्गत वे जीवित लोग सम्मिलित होते हैं, जिन्हें उस विषय का पर्याप्त ज्ञान होता है या जिनका सामाजिक

दशाओं और परिवर्तनों से लम्बे समय तक का घनिष्ठ सम्पर्क होता है। ये लोग न केवल वर्तमान घटनाओं को विश्लेषित करने की स्थिति में होते हैं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं की अवलोकनीय प्रवृत्तियों और सार्थक मील के पत्थर को बताने की स्थिति में भी होते हैं ;वी.एम. पाल्मरए (1928 : 57)। लुण्डबर्ग (1951:122) ने सूचनाओं के दो स्रोतों का उल्लेख किया है:

(1) ऐतिहासिक स्रोत, और

(2) क्षेत्रीय स्रोत।

ऐतिहासिक स्रोत के अन्तर्गत प्रलेख, विविध कागजातों एवं शिलालेखों, भूतत्त्वीय स्तरों, उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं को सम्मिलित करते हुए लुण्डबर्ग (1951:122) का कहना है कि, ''ऐतिहासिक स्रोत उन अभिलेखों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भूतकाल की घटनाएं अपने पीछे छोड़ गई हैं, जिनको उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो मनुष्य से परे हैं।'' उदाहरण के लिए, हम उल्लेख कर सकते हैं उन विविध स्थानों का जहाँ पुरातत्त्वीय उत्खनन के पश्चात तत्कालीन समाज की विविध सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, या विविध पुरातात्त्विक संग्रहालयों में सुरक्षित रखे दस्तावेजों (सरकारी एवं गैर सरकारी) का जिनका आज भी शोधकर्ता अपने शोध कार्यों में व्यापक रूप से प्रयोग करते हैं। क्षेत्रीय स्रोत के अन्तर्गत लुण्डबर्ग ने जीवित मनुष्यों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाओं तथा क्रियाशील व्यवहारों के प्रत्यक्ष अवलोकन को सम्मिलित किया है। उपरोक्त समस्त विवरण स्पष्ट करता है कि सूचनाओं के कई स्रोत होते हैं, इन समस्त स्रोतों को विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से विश्लेषित किया है। कुछ भी हो, सूचनाओं के स्रोत जिन्हें प्रयोग में लाया जाता है, शोध प्रारूप के अंग होते हैं।

(ii) अध्ययन की प्रकृति: पी. वी. यंग (1977: 14) का कहना है कि ''अध्ययन की विशिष्ट प्रकृति का निर्धारण शुरू में और ठीक ठीक कर लेना चाहिए, विशेषकर जब सीमित समय और कर्मशक्ति गलत शुरूआत को रोक रहे हों। शोध केस की प्रकृति पर ही अपने को केन्द्रित करते हुए उन्होंने मटिल्डा वाइट रिले (1963: 3-31) की पुस्तक में विविध विद्वानों के अध्ययनों के उल्लेख का उदाहरण देते हुए इस विषय को स्पष्ट किया है। क्या यह अध्ययन एक व्यक्ति से सम्बन्धित है ; जैसा शॉ की 'दी जैक रोलर' में है कई लोगों से सम्बन्धित है ;विलियम वाइट की पुस्तक 'स्ट्रीट कार्नर सोसायटी' के विश्लेषण में डॉक, माइक और डैनी या क्या अध्ययन किसी छोटे समूह पर संकेन्द्रित है ;जैसा कि पॉल हैरे एवं अन्य के अध्ययन 'स्माल ग्रुप' या बहुत अधिक केसों पर संकेन्द्रित है, जैसे कि यौन व्यवहार सम्बन्धित किन्से का अध्ययन। इस अनुभव के साथ कि प्रत्येक शोध अध्ययन जटिल होता है, उसकी विशिष्ट प्रकृति का यथाशीघ्र निर्धारण कर लेना चाहिए।

(iii) शोध अध्ययन का उद्देश्य: अध्ययन के उद्देश्यों का निर्धारण शोध प्रारूप का महत्वपूर्ण अंग है। अध्ययन की प्रकृति और प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों के अनुसार उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ शोध अध्ययनों का उद्देश्य विवरणात्मक तथ्य, या व्याख्यात्मक तथ्य या तथ्य जिनसे सैद्धान्तिक रचना की व्युत्पत्ति हो, या तथ्य जो प्रशासकीय परिवर्तन या तुलना को बढ़ावा दें, को इकट्ठा करना होता है पी. वी. यंग, (1977: 14)।

अध्ययन का जो भी उद्देश्य हो अपने शोध की प्रकृति के अनुरूप शोध कार्य की तैयारी आवश्यक है। शोध उद्देश्य के अनुरूप उपकल्पना का निर्माण और उसके परीक्षण की तैयारी या शोध प्रश्नों का निर्माण किया जाता है।

(iv) सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति: क्षेत्रीय अध्ययनों में उत्तरदाताओं की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थिति को जानना आवश्यक होता है। हम सभी जानते हैं कि स्थानीय आदर्श भिन्न-भिन्न होते हैं। इनमें इतनी ज्यादा भिन्नता सम्भव है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। व्यवहार प्रतिरूपों को समझने के लिए स्थानीय आदर्शों को जानना जरूरी है। पी.वी. यंग ;1977: 15द्ध ने इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि ''एक व्यक्ति का निवासस्थान ;प्राकृतिक निवासद्ध उसके जीवन के एक भाग से इतना घनिष्ठ होता है कि उसकी उपेक्षा करने का मतलब शून्य में अध्ययन करना है।'' उनका यह भी सुझाव महत्त्वपूर्ण है कि ''प्रत्येक सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र का अध्ययन उसके प्राकृतिक और भौगोलिक पक्ष के सन्दर्भ में भी किया जाना चाहिए।'' (पी.वी. यंग, ;1977: 16)।

(v) सामाजिक-कालिक सन्दर्भ: यह निर्विवाद सत्य है कि किसी व्यक्ति पर, समुदाय पर तथा समाज पर ऐतिहासिक काल विशेष का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ता है। किसी देश के कुछ निश्चित ऐतिहासिक काल को ही यहां सामाजिक-कालिक सन्दर्भ शब्द से सम्बोधित किया जा रहा है। कई बार भारतीय अध्ययनों में औपनिवेशिक काल के प्रभावों का उल्लेख इसी का उदाहरण माना जा सकता है। अण्डमान-निकोबार द्वीप समूहों में बन्दी उपनिवेश काल या भारतवर्ष में वैदिक काल, मुगल काल इत्यादि कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक कालों के समाज पर प्रभाव से हम सभी परिचित हैं। इसलिए व्यक्ति को उसके सामाजिक-कालिक सन्दर्भ यानि समय और स्थान के ऐतिहासिक विन्यास में देखा जाना चाहिए (पी.वी.यंग, 1977: 16)।

(vi) **अध्ययन के आयाम और निदर्शन कार्यविधि:** सामाजिक शोध में अक्सर यह सम्भव नहीं होता है कि सम्पूर्ण समग्र से प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किया जाये। ऐसी परिस्थिति में समग्र की कुछ इकाइयों का वैज्ञानिक आधार पर चयन कर लिया जाता है और तथ्य संकलन की उपयुक्त विधि के द्वारा उनसे प्राथमिक तथ्य इकट्ठे कर लिये जाते हैं। ये चुनी हुई इकाइयां ही निदर्शन कहलाती हैं। अच्छे निदर्शन को सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए ताकि प्राप्त सूचनायें विश्वसनीय हों तथा सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व कर सकें (यद्यपि निदर्शन के कुछ प्रकारों में इसकी कुछ कम संभावना होती है)।

इकाइयों का चयन निष्पक्ष रूप से पूर्वाग्रह रहित होकर करना चाहिए। सम्पूर्ण समूह जिसमें से निदर्शन लिया जाता है 'पापुलेशन', 'यूनिवर्स' 'समग्र' या 'सप्लाई' के नाम से जाना जाता है (पी.वी. यंग 1977: 325)।

निदर्शन के कई प्रकार होते हैं, किन्तु मोटे तौर पर निदर्शन को दो प्रकारों- संभावनात्मक और असंभावनात्मक में रखा जाता है। जब समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की समान सम्भावना हो तो उसे संभावनात्मक निदर्शन कहते हैं और यदि ऐसी समान संभावना न हो तो उसे असंभावनात्मक निदर्शन कहते हैं।

संभावनात्मक और असंभावनात्मक निदर्शन के अन्तर्गत आने वाले विविध प्रकारों को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है:

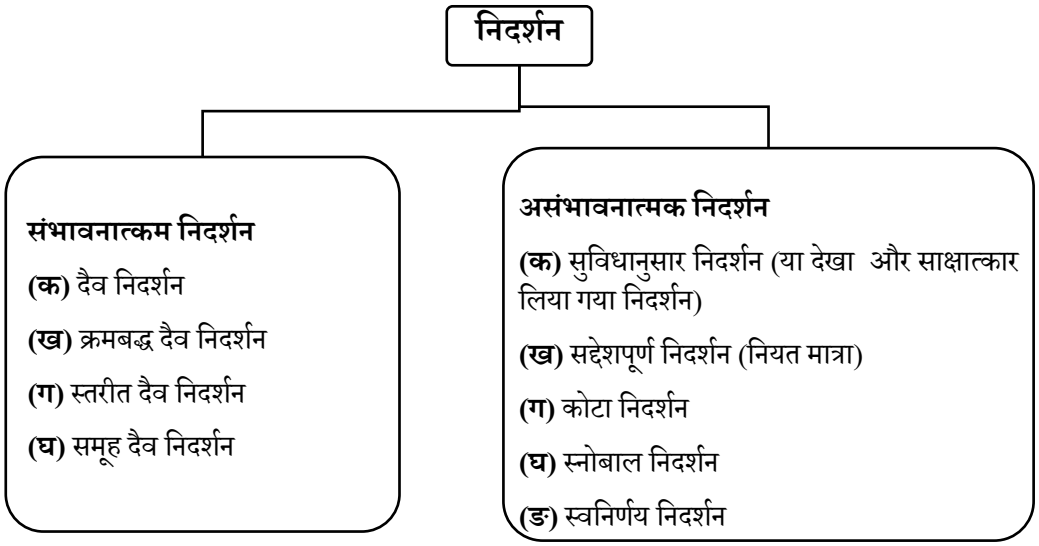

निदर्शन, इसके प्रकार, निदर्शन का आकार, गुण एवं सीमाओं पर विस्तृत चर्चा अन्यत्र अध्याय में की गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप को बनाते समय निदर्शन तथा उसके आकार पर उपलब्ध समय और साधनों की सीमाओं के अन्तर्गत व्यापक सोच-विचार किया जाता है। अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार तथा समग्र की संख्या तथा विशेषताओं के अनुसार निदर्शन का प्रकार तथा आकार अलग-अलग होता है। उत्तम एवं विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए यथेष्ट एवं उत्तम निदर्शन का होना जरूरी होता है।

सामाजिक शोध कार्यों में सबसे जटिल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि निदर्शन का आकार क्या होगा? कितने लोगों को उत्तरदाताओं के रूप में चयनित किया जायेगा? सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन अक्सर समय और

साधनों की सीमाओं के चलते सम्भव नहीं होता है। समुचित निदर्शन के निर्धारण की समस्या एक जटिल समस्या है। यद्यपि कई विद्वानों ने इस सन्दर्भ में अपने-अपने सुझावों को दिया है तथा सांख्यिकीविदों ने तो इसका सूत्र भी बना रखा है, परन्तु इसके बावजूद भी समस्या किसी न किसी रूप में बनी ही रहती है। पी.वी. यंग (1977: 17) यह मानते हैं कि, ''एक परिपक्व शोधकर्ता द्वारा भी इस प्रश्न के उत्तर को देना कठिन है कि कितने केसों की जरूरत है।''

पी.वी. यंग (1977:17) ने अपनी पुस्तक में सांख्यिकीविद् मारग्रेट हगुड़ ;1953द्ध द्वारा सुझाये निदर्शन के आधारों का उल्लेख किया है। हगुड़ (1953: 272) ने निदर्शन चयन के निम्नांकित सुझाव दिए हैं': ''(1) निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए ;अर्थात् उसे पूर्वाग्रह रहित होना चाहिएद्ध। (2) विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए निदर्शन पर्याप्त आकार का होना चाहिए ;अर्थात् दोष की विशिष्ट सीमा तक जैसे मापा जायद्ध। (3) निदर्शन इस तरह से संरचित किया जाये कि कुशल हो ;अर्थात वैकल्पिक प्रारूप की तुलना मेंद्ध।''

(vii) तथ्य संकलन के लिए प्रयुक्त तकनीक: शोध प्रारूप का एक महत्वपूर्ण अंग तथ्य संकलन की तकनीक है। शोध कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही इस महत्वपूर्ण विषय पर शोध की प्रकृति और उत्तरदाताओं की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में व्यापक सोच-विचार के पश्चात् यह निर्णय लिया जाता है कि प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किस प्रविधि के द्वारा किया जायेगा। उल्लेखनीय है कि तथ्य संकलन की विविध प्रविधियां हैं- जैसे अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची, वैयक्तिक अध्ययन, केस स्टडी इत्यादि। इन सभी प्रविधियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ तथा सीमाएँ हैं। तथ्य संकलन की सही तकनीक का प्रयोग शोध की गुणवत्ता, विश्वसनीयता तथा वैज्ञानिकता निर्धारित करता है। उल्लेखनीय है कि इन प्रविधियों का प्रयोग प्रत्येक समाज एवं उत्तरदाताओं पर नहीं किया जा सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. सूचनाओं के ऐतिहासिक स्त्रोत का आशय स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

4. निदर्शन के कितने प्रकार होते है?

.....

.....

.....

4.5 शोध प्रारूप का महत्व

उपरोक्त विस्तृत व्याख्या से शोध प्रारूप के महत्व का स्पष्ट अनुमान हो जाता है। **ब्लैक और चैम्पियन** (1976:76.77) के शब्दों में कहा जाये तो:

(i) शोध प्रारूप से शोध कार्य को चलाने के लिए एक रूपरेखा तैयार हो जाती है।

(ii) शोध प्रारूप से शोध की सीमा और कार्य क्षेत्र परिभाषित होता है।

(iii) शोध प्रारूप से शोधकर्ता को शोध को आगे बढ़ाने वाली प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं का पूर्वानुमान लगाने का अवसर प्राप्त होता है।

4.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति:

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप आँकड़े या तथ्य इकट्ठे किये जाने वाली पद्धति से अलग होता है। ''यह देखना असामान्य नहीं है कि शोध प्रारूप को तथ्य संकलन के तरीके के रूप में देखा जाता है बजाय इसके कि जाँच की तार्किक संरचना के।'' (एन.वाई.यू. 2010: 1: 9)।

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धति में समानता का भ्रम होने का कारण कुछ विशेष प्रारूपों को किसी विशेष तथ्य संकलन की पद्धति से जोड़कर देखना है। उदाहरण के लिए, वैयक्तिक अध्ययनों को सहभागी अवलोकन और क्रास सेक्शनल सर्वे को प्रश्नावलियों से समीकृत किया जाता है। वास्तविकता यह है कि किसी भी प्रारूप के लिए तथ्य किसी भी तथ्य संकलन की पद्धति से इकट्ठा किया जा सकता है। विश्वसनीय तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं न कि उन्हें इकट्ठा करने का तरीका। तथ्य कैसे इकट्ठा किया गया, यह प्रारूप की तार्किकता के लिए अप्रासंगिक/असम्बद्ध है।

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ. 10) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्याय के अन्तर्गत शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों में सम्बन्ध को इस तरह दर्शाया गयाः

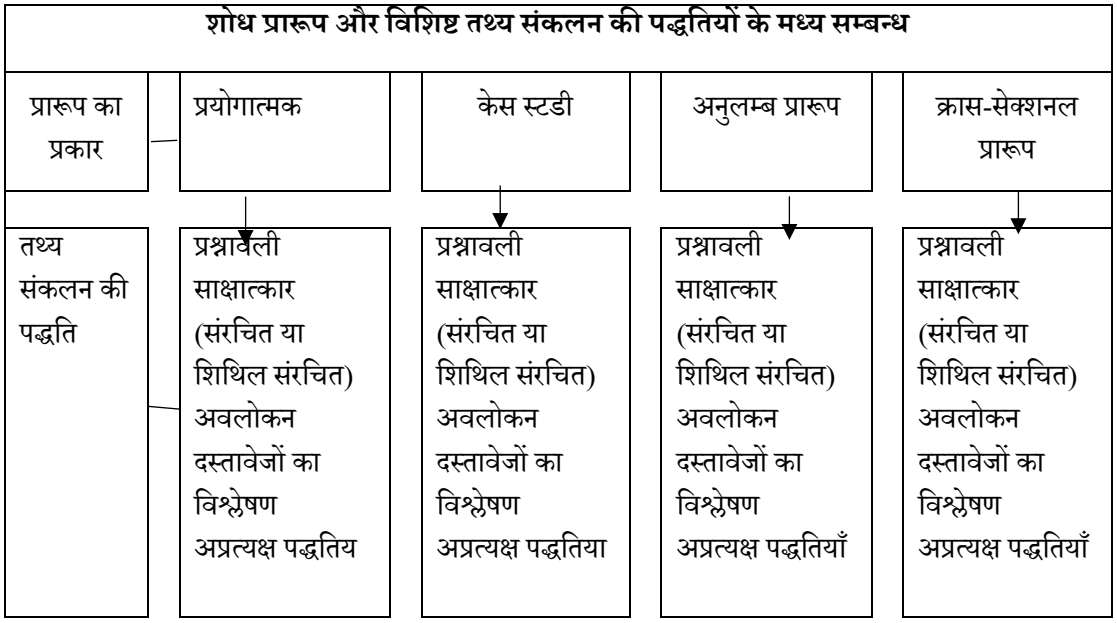

इसी तरह से प्रारूपों को अक्सर गुणात्मक और गणनात्मक शोध पद्धतियों से जोड़ा जाता है। सामाजिक सर्वेक्षण और प्रयोगों को अक्सर गुणात्मक शोध के मुख्य उदाहरणों के रूप में देखा जाता है और उनका मूल्यांकन सांख्यिकीय, गुणात्मक शोध पद्धतियों और विश्लेषण की क्षमता और कमजोरियों के विरुद्ध किया जाता है। दूसरी तरफ वैयक्तिक अध्ययन को अक्सर गुणात्मक शोध के मुख्य उदाहरण के रूप में देखा जाता है- जोकि तथ्यों के विवेचनात्मक उपागम का प्रयोग करता है, 'चीजों' का अध्ययन उनके सन्दर्भ के अन्तर्गत करता है और लोग अपनी परिस्थितियों का जो वस्तुगत अर्थ लगाते हैं, का विचार करता है। किसी विशिष्ट शोध प्रारूप को गुणात्मक या गणनात्मक पद्वति से जोड़ना भ्रान्तिपूर्ण या गलत है। वैयक्तिक अध्ययन प्रारूप की एक सम्मानित हस्ती यिन (1993) ने वैयक्तिक अध्ययन के लिए गुणात्मक/गणनात्मक विभेद की अप्रासंगिकता पर जोर दिया है। उनका कहना है कि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति तथ्य संकलन के किसी विशिष्ट स्वरूप को अन्तर्निहित नहीं करती है। वह गुणात्मक या गणनात्मक कोई भी हो सकती है (1993: 32) न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ. 11.12) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्याय के अन्तर्गत व्याख्या में संशयवादी उपागम को अपनाने की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि ''शोध प्रारूप की आवश्यकता शोध के संशयवादी उपागम के तने और इस दृष्टिकोण से कि वैज्ञानिक ज्ञान हमेशा अस्थायी होता है, से निकलती है। शोध प्रारूप का उद्देश्य शोध के बहु साक्ष्यों की अस्पष्टता को कम करना होता है।''

हम हमेशा कुछ साक्ष्यों को लगभग सभी सिद्धान्तों के साथ निरन्तर पा सकते हैं। जबकि हमें साक्ष्यों के प्रति संशयपूर्ण होना चाहिए और बजाय उन साक्ष्यों को प्राप्त करना जो हमारे सिद्धान्त के साथ निरन्तर उपलब्ध हों, हमें ऐसे साक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए जो सिद्धान्त के अकाट्य परीक्षण को प्रदान करते हों।

शोध प्रारूप निर्मित करते समय यह आवश्यक है कि हमें आवश्यक साक्ष्यों के प्रकारों को चिन्हित कर लेना चाहिए जिससे कि शोध प्रश्नों का उत्तर विश्वासोत्पादक हो। इसका तात्पर्य यह है कि हमें मात्र उन साक्ष्यों को इकट्ठा नहीं करना चाहिए जो किसी विशिष्ट सिद्धान्त या व्याख्या के साथ लगातार बने हुए हों। शोध इस प्रकार से संरचित किया जाना चाहिए कि उससे साक्ष्य वैकल्पिक प्रतिद्वन्दी व्याख्या दें और हमें यह चिन्हित करने में सक्षम बनायें कि कौन सी प्रतिस्पर्द्धी व्याख्या आनुभविक रूप से ज्यादा अकाट्य है। इसका यह भी तात्पर्य है कि हमें मात्र अपने प्रिय सिद्धान्त के समर्थन वाले साक्ष्यों को ही नहीं देखना चाहिए। हमें उन साक्ष्यों को भी देखना चाहिए जिनमें यह क्षमता हो कि वे हमारी वरीयतापूर्ण व्याख्या को नकार सकें। (एन.वाई.यू., 2010:16)

4.7 शोध प्रारूप के प्रकार:

शोध प्रारूपों के कई प्रकार होते हैं। विविध विद्वानों ने शोध प्रारूपों के कुछ तो एक समान और कुछ अलग प्रकार के प्रकारों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, सुसन कैरोल (2010:1) ने शोध प्रारूप के आठ प्रकारों का उल्लेख किया है। ये हैं:

(1) ऐतिहासिक शोध प्रारूप (Historical Research Design)

(2) वैयक्तिक और क्षेत्र शोध प्रारूप (Case and Field Research Design)

(3) विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध प्रारूप (Descriptive or Survey Research Design)

(4) सह सम्बन्धात्मक या प्रत्याशित शोध प्रारूप (Correlational or Prospective Research Design)

(5) कारणात्मक, तुलनात्मक या एक्स पोस्ट फैक्टो शोध प्रारूप (Causal Comparative or Ex-Post Facto Research Design)

(6) विकासात्मक या समय श्रेणी शोध प्रारूप (Developmental or Time Series Research Design)

(7) प्रयोगात्मक शोध प्रारूप (Experimental Research Design)

(8) अर्द्ध प्रयोगात्मक शोध प्रारूप (Quasi Experimental Research Design)

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (2010 रू 10) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्याय के अन्तर्गत चार प्रकार के शोध प्रारूपों का उल्लेख किया गया है:

(1) प्रयोगात्मक (Experimental)

(2) वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)

(3) अनुलम्ब प्रारूप (Longitudinal)

(4) अनुप्रस्थ काट प्रारूप (Cross-Sectional Design)

कुछ विद्वानों ने अनेकों प्रकारों का उल्लेख किया है। जो कुछ भी हो मोटे तौर पर शोध प्रारूपों को चार महत्वपूर्ण प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है:

(1) विवरणात्मक प्रारूप या वर्णनात्मक शोध प्रारूप।

(2) व्याख्यात्मक प्रारूप

(3) अन्वेषणात्मक प्रारूप, और

(4) प्रयोगात्मक प्रारूप

किसी विशिष्ट प्रारूप का चयन शोध की प्रकृति पर मुख्यतः निर्भर करता है। कौन सी सूचना चाहिए, कितनी विश्वसनीय सूचना चाहिए, प्रारूप की उपयुक्तता क्या है, लागत कितनी आयेगी, इत्यादि कारकों पर भी प्रारूप चयन निर्भर करता है।

4.7.1 विवरणात्मक या वर्णनात्मक शोध प्रारूप

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस प्रारूप में अध्ययन विषय के सम्बन्ध में प्राप्त सभी प्राथमिक तथ्यों का यथावत् विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रारूप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन की जा रही इकाई, संस्था, घटना, समुदाय या समाज इत्यादि से सम्बन्धित पक्षों का हूबहू वर्णन किया जाता है। यह प्रारूप वैसे तो अत्यन्त सरल लगता है किन्तु यह दृढ़ एवं अलचीला होता है। इसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि निदर्शन पर्याप्त एवं प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रविधि सटीक हो तथा प्राथमिक तथ्य संकलन में किसी भी प्रकार से पूर्वाग्रह या मिथ्या झुकाव न आने पाये। अध्ययन समस्या के विषय में व्यापक तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है, इसलिए ऐसी सतर्कता बरतनी चाहिए कि अनुपयोगी एवं अनावश्यक तथ्यों का संकलन न होने पाये। अध्ययन पूर्ण एवं यथार्थ हो

और अध्ययन समस्या का वास्तविक चित्रण हो इसके लिए विश्वसनीय तथ्यों का होना नितान्त आवश्यक है।

वर्णनात्मक शोध का उद्देश्य मात्र अध्ययन समस्या का विवरण प्रस्तुत करना होता है। इसमें नवीन तथ्यों की खोज या कार्य-कारण व्याख्या पर जोर नहीं दिया जाता है। इस प्रारूप में किसी प्रकार के प्रयोग भी नहीं किए जाते हैं। इसमें अधिकांशतः सम्भावित निदर्शन का ही प्रयोग किया जाता है। इसमें तथ्यों के विश्लेषण में क्लिष्ट सांख्यिकीय विधियों का भी प्रयोग सामान्यतः नहीं किया जाता है।

इसमें शोध विषय के बारे में शोधकर्ता को अपेक्षाकृत यथेष्ट जानकारी रहती है, इसलिए वह शोध संचालन सम्बन्धी निर्णयों को पहले ही निर्धारित कर लेता है। वर्णनात्मक शोध प्रारूप के अलग से कोई चरण नहीं होते हैं। सामान्यतः सामाजिक अनुसंधान के जो चरण हैं, उन्हीं का इसमें पालन किया जाता है। सम्पूर्ण एकत्रित प्राथमिक सामग्री के आधार पर ही अध्ययन से सम्बन्धित निष्कर्ष निकाले जाते हैं एवं आवश्यकतानुसार सामान्यीकरण प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया जाता है।

4.7.2 व्याख्यात्मक शोध प्रारूप

शोध समस्या की कारण सहित व्याख्या करने वाला प्रारूप व्याख्यात्मक शोध प्रारूप कहलाता है। व्याख्यात्मक शोध प्रारूप की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों की प्रकृति के समान ही होती है, जिसमें किसी भी वस्तु, घटना या परिस्थिति का विश्लेषण ठोस कारणों के आधार पर किया जाता है। सामाजिक तथ्यों की कार्य-कारण व्याख्या- यह प्रारूप करता है। इस प्रारूप में विविध उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है तथा परिवर्त्यों में सम्बन्ध और सहसम्बन्ध ढूढ़ने का प्रयास किया जाता है।

4.7.3 अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप

जब सामाजिक अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य अध्ययन समस्या के सम्बन्ध में नवीन तथ्यों को उद्घाटित करना हो तो इस प्रारूप का प्रयोग किया जाता है। इसमें अध्ययन समस्या के वास्तविक कारकों एवं तथ्यों का पता नहीं होता है। अध्ययन के द्वारा उनका पता लगाया जाता है। चूँकि इसमें कुछ 'नया' खोजा जाता है इसलिए इसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप कहा जाता है। इस प्रारूप द्वारा सिद्धान्त का निर्माण होता है।

कभी-कभी अन्वेषणात्मक और व्याख्यात्मक शोध प्रारूप को एक ही मान लिया जाता है। कई विद्वानों ने तो व्याख्यात्मक शोध प्रारूप का उल्लेख तक नहीं किया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह कहा जा

सकता है कि जिस सामाजिक शोध में कार्य- कारण सम्बन्धों पर बल देने की कोशिश की जाती है, वह व्याख्यात्मक शोध प्रारूप के अन्तर्गत आता है, और जिसमें नवीन तथ्यों या कारणों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जाता है, उसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के अन्तर्गत रखते हैं। इसमें शोधकर्ता को अध्ययन विषय के बारे में सूचना नहीं रहती है। द्वितियक स्रोतों के द्वारा भी वह उसके विषय में सीमित ज्ञान ही प्राप्त कर पाता है। अज्ञात तथ्यों की खोज करने के कारण या विषय के सम्बन्ध में अपूर्ण ज्ञान रखने के कारण इस प्रकार के शोध प्रारूप में सामान्यतः उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं। उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण किया जाता है और उन्हीं शोध प्रश्नों के उत्तरों की खोज द्वारा शोध कार्य सम्पन्न किया जाता है।

विलियम जिकमण्ड (1988: 73) ने अन्वेषणात्मक शोध के तीन उद्देश्यों का वर्णन किया है- (1) परिस्थिति का निदान करना (2) विकल्पों को छाँटना तथा, (3) नये विचारों की खोज करना।

सरन्ताकोस (1988) के अनुसार सम्भाव्यता, सुपरिचितीकरण, नवीन विचार, समस्या के निरूपण तथा परिचालनीकरण के कारण अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप को अपनाया जाता है। वास्तव में जहोदा तथा अन्य (1959: 33) ने ठीक ही कहा है कि, ''अन्वेषणात्मक अनुसन्धान अनुभव को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित खोज के लिए उपयुक्त उपकल्पना के निर्माण में सहायक हो।''

सामाजिक समस्या के अन्तर्निहित कारणों को खोजने के कारण कारण इस प्रारूप में लचीलापन होना जरूरी है। इसमें तथ्यों की प्रकृति अधिकांशतः गुणात्मक होती है, इसलिए अधिक से अधिक तथ्यों एवं सूचनाओं को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। तथ्य संकलन की प्रविधि इसकी प्रकृति के अनुरूप ही होनी चाहिए। समय और साधन का भी ध्यान रखना चाहिए।

4.7.4 प्रयोगात्मक शोध प्रारूप

ऐसा शोध प्रारूप जिसमें अध्ययन समस्या के विश्लेषण हेतु किसी न किसी प्रकार का 'प्रयोग' समाहित हो, प्रयोगात्मक शोध प्रारूप कहलाता है। यह प्रारूप नियंत्रित स्थिति में जैसे कि प्रयोगशालाओं में ज्यादा उपयुक्त होता है। सामाजिक अध्ययनों में सामान्यतः प्रयोगशालाओं का प्रयोग नहीं होता है। उनमें नियंत्रित समूह और अनियंत्रित समूहों के आधार पर प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार के प्रारूप का प्रयोग ग्रामीण समाजशास्त्र और विशेषकर कृषि सम्बन्धी अध्ययनों में ज्यादा होता है। वैसे औद्योगिक समाजशास्त्र में वेस्टन इलेक्ट्रिक कम्पनी के हाथोर्न वर्क्स में हुए प्रयोग काफी चर्चित रहे हैं। ग्रामीण प्रयोगात्मक अध्ययनों में प्रयोगों के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि संचार माध्यमों का क्या प्रभाव पड़ रहा है, योजनाओं का लाभ लेने वालों और न लेने वालों की सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति में क्या अन्तर आया है, इत्यादि-

इत्यादि। इसी प्रकार के बहुत से विषयों/प्रभावों को इस प्रारूप के द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश की जाती है। परिवर्त्यों के बीच कारणात्मक सम्बन्धों का परीक्षण इसके द्वारा प्रामाणिक तरीके से हो पाता है।

4.8 सार-संक्षेप

शोध प्रारूप सामाजिक अनुसन्धान की एक वृहत् योजना, एक संरचना तथा प्रणाली है जो शोध सम्बन्धी प्रश्नों का न केवल उत्तर देती है अपितु प्रसरणों का नियन्त्रण भी करती है। यह शोध के एक महत्वपूर्ण अंश की तार्किक एवं सुव्यवस्थित योजना तथा निर्देशन है। यह किसी जाँच की संरचना होती है तथा यह ताक्रिक विषय होता है। सम्पूर्ण शोध प्रक्रिया में प्रश्नों के गठन से लेकर, निदर्शन प्रक्रिया, तथ्य संकलन की प्रविधियों के चयन तथा प्राथमिक तथ्यों के संकलन और तत्पश्चात् विश्लेषण में शोध प्रारूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

शोध प्रारूप का उद्देश्य शोध को स्पष्ट एवं निश्चित दिशा में निर्देशित करते हुए क्रियान्वित करना होता है। यह न केवल शोध प्रश्नों के सटीक उत्तर देता है अपितु अध्ययन समस्या से सम्बन्धित आनुभविक प्रमाणों को वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा उपलब्ध भी कराता है।

शोध प्रारूप के अनेकों प्रकारों का विद्वानों ने उल्लेख किया है। चार प्रमुख प्रकारों यथा- विवरणात्मक या वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, अन्वेषणात्मक और प्रयोगात्मक का संक्षिप्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि विवरणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन विषय का पूर्ण एवं यथार्थ विवरण प्रस्तुत करना होता है। व्याख्यात्मक प्रारूप में कार्य-कारण सम्बन्ध पर बल दिया जाता है, वहीं अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य किसी सामाजिक घटना/परिस्थिति के अन्तर्निहित कारणों को ढूढ़ना होता है। इसमें अध्ययन समस्या के अन्जान पक्षों को उद्घाटित किया जाता है। सिद्धान्त निर्माण में यह प्रारूप सहायक होता है। सामान्यतः इस प्रकार के प्रारूप में उपकल्पना का निर्माण न करके शोध प्रश्नों को रखा जाता है। प्रयोगात्मक शोध प्रारूप में नियन्त्रित परिस्थिति में अवलोकन करते हुए मानवीय सम्बन्धों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इसमें विषय की आवश्यकतानुसार स्वतन्त्र और आश्रित चरों का परीक्षण भी किया जाता है। इसके लिए मानवीय हस्तक्षेप द्वारा प्रभावी स्थितियों को निर्मित किया जाता है। तत्पश्चात् आश्रित चरों पर इसके प्रभाव का अवलोकन किया जाता है।

शोध प्रारूप की केन्द्रीय भूमिका तथ्यों से गलत कारणात्मक निष्कर्षों को निकालने की सम्भावना को न्यूनतम करना होता है। इसके द्वारा यह सुनिश्चित होता है कि जो साक्ष्य इकट्ठे किये गये हैं, वे प्रश्नों के उत्तर देने में या सिद्धान्तों के परीक्षण में यथासम्भव स्पष्ट होंगे।

4.9 स्वप्रगति परीक्षण-प्रश्नों के उत्तर

1. शोध प्रारूप अनुसंधान के लिए कल्पित एक योजना, एक संरचना तथा एक प्रणाली है, जिसका एकमात्र प्रयोजन शोध सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना तथा प्रसरणों का नियंत्रण करना होता है।

2. यंग (1977 रू131) का कहना है कि, ''जब एक सामान्य वैज्ञानिक मॉडल को विविध कार्यविधियों में परिणत किया जाता है तो शोध प्रारूप की उत्पत्ति होती है। शोध प्रारूप उपलब्ध समय, कर्म शक्ति एवं धन, तथ्यों की उपलब्धता उस सीमा तक जहाँ तक यह वांछित या सम्भव हो, उन लोगों एवं सामाजिक संगठनों पर थोपना जो तथ्य उपलब्ध करायेंगे, के अनुरूप होना चाहिए।''

3. ऐतिहासिक स्रोत के अन्तर्गत प्रलेख, विविध कागजातों एवं शिलालेखों, भूतत्त्वीय स्तरों, उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं को सम्मिलित करते हुए लुण्डबर्ग (1951:122) का कहना है कि, ''ऐतिहासिक स्रोत उन अभिलेखों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भूतकाल की घटनाएं अपने पीछे छोड़ गई हैं, जिनको उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो मनुष्य से परे हैं।''

4. निदर्शन के कई प्रकार होते हैं, किन्तु मोटे तौर पर निदर्शन को दो प्रकारों- संभावनात्मक और असंभावनात्मक में रखा जाता है। जब समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की समान सम्भावना हो तो उसे संभावनात्मक निदर्शन कहते हैं और यदि ऐसी समान संभावना न हो तो उसे असंभावनात्मक निदर्शन कहते हैं।

4.10 अभ्यास प्रश्न

1. शोध प्रारूप किसे कहते हैं?

2. शोध प्रारूप के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

3. शोध प्रारूप का महत्व बताइये।

4. वर्णनात्मक शोध प्रारूप की विशेषता समझाइए।

5. अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप पर टिप्पणी लिखिए।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

शोध प्रारूप- शोध प्रारूप प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोध कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच-समझ के पश्चात् तैय्यार किया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- मुकर्जी, पी.एन. (2000) मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च: डिलेमाज् एण्ड पर्सपैक्टिव्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
- सारन्ताकोस, एस. (1988) सोशल रिसर्च, मैकमिलन, लन्दन
- यंग, पी.वी. (1977) साइन्टिफिक सोशल सर्वेज एण्ड रिसर्च, प्रेन्टिस हाल, नई दिल्ली
- डाबी, जॉन टी. (1954) एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च (सम्पादित), द स्टेकवेल कम्पनी, लन्दन
- करलिंगर, एफ.एन. (1964) फाउण्डेशन ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हाल्ट रिनेहार्ट एण्ड विन्सटन, न्यूयार्क
- ब्लैक जेम्स ए. एण्ड डी.जे. चैम्पियन (1976) मैथेड्स एण्ड इश्यूज इन सोशल रिसर्च, जॉन विले, न्यूयार्क
- यिन, आर.के. (1991) केस स्टडी रिसर्च: डिजाइन एण्ड मैथड, सेज पब्लिकेशन्स, न्यूवरी पार्क, सी.ए.
- वेबसाइट: न्यूयार्क यूनिवर्सिटी फैकल्टी क्लास वेबसाइट्स www.nyu.edu/classes/ bkg/methods/005847/chapter1 (what is social research?)/pdf.

इकाई-05 सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर
Social Research of Social Survey-Differences

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 अध्ययन के उद्देश्य

5.2 सामाजिक अनुसंधान का अर्थ व परिभाषा

5.2.1 सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य

5.3 सामाजिक सर्वेक्षण

5.3.1 सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा

5.3.2 सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य

5.4 सामाजिक अनुसंधान और सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर

5.5 सार-संक्षेप

5.6 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.7 अभ्यास-प्रश्न

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान मानव के सामाजिक जीवन के संबंध में खोज करने का एक वैज्ञानिक प्रयास है। सामाजिक अनुसंधान शोध की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सर्वप्रथम सामाजिक घटना, सामाजिक व्यवहार तथा सामाजिक समस्या से सम्बन्धित आधारभूत तथ्यों का अवलोकन करके घटना से सम्बन्धित कार्य-

कारण सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है। सामाजिक अनुसंधान एक ऐसा प्रयत्न है जिसमें नवीन ज्ञान की खोज तथा उपलब्ध ज्ञान में परिवर्तन को भी मालूम किया जाता है।

आधुनिक समाजशास्त्र का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व सामाजिक सर्वेक्षण है। इसके भी दो स्रोत हैंः एक तो यह बढ़ता हुआ यकीन कि प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति मानव समाज के अध्ययन में लागू की जा सकती है और उसे लागू करना चाहिये; साथ ही मानवीय परिघटनाओं को वर्गीकृत किया जा सकता है और नापा जा सकता है। दूसरा गरीबी (सामाजिक समस्या) की चिंता। यह माना गया कि औद्योगिक समाजों में गरीबी कोई प्राकृतिक परिघटना, कोई प्राकृतिक अथवा दैवी विपदा नहीं बल्कि मानवीय अज्ञान अथवा शोषण का नतीजा है। प्राकृतिक विज्ञानों की प्रतिष्ठा और सामाजिक सुधार के आंदोलनों के संयुक्त प्रभाव से समाज के इस नये विज्ञान में सामाजिक सर्वेक्षण के लिये महत्वपूर्ण जगह बन गई है (बॉटमोर, 2004:13)। सामाजिक सर्वेक्षण समाजशास्त्रीय गवेषणा की एक प्रमुख पद्धति रही है।

5.1 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक सर्वेक्षण के अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य से परिचित होंगे तथा सामाजिक सर्वेक्षण एवं सामाजिक अनुसंधान के बीच अन्तर को स्पष्ट रूप से समझ जायेंगे।

5.2 सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा

अनुसंधान जब सामाजिक जीवन, सामाजिक व्यवस्थाओं, सामाजिक घटनाओं, सामाजिक समस्याओं या जटिलताओं से सम्बन्धित होता है तब ऐसे अनुसंधान को सामाजिक अनुसंधान कहा जाता है। सामाजिक अनुसंधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें नवीन ज्ञान जुटाना अथवा विद्यमान ज्ञान का परिष्करण किया जाता है। इसमें व्यवस्थित एवं तार्किक विधियों की सहायता से सामाजिक व्यवहार का वर्णन एवं विश्लेषण कर सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में सत्य, आनुभाविक तथ्यों को अनुसंधान की वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके एकत्र करता है। तत्पश्चात् उनका वर्गीकरण व विश्लेषण करके निष्कर्ष निकालता है तथा नियमों का निर्माण करता है।

सामाजिक अनुसंधान को समझने के लिये विद्वानों ने निम्नलिखित परिभाषायें दी हैं:

पी.वी. यंग (1960) के अनुसार- ''सामाजिक अनुसंधान को एक ऐसे वैज्ञानिक प्रयत्न के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों की खोज

तथा पुराने तथ्यों की परीक्षा और सत्यापन, उनके क्रमों, पारस्परिक सम्बन्धों, कार्य-कारण की व्याख्या तथा उन्हें संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।''

सी.ए. मोजर एवं काल्टन (1971) के अनुसार- ''सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यवस्थित अध्ययन को ही हम सामाजिक अनुसंधान कहते हैं।''

सामाजिक अनुसंधान के विषय में उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक योजना है। सामाजिक अनुसंधान तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों पर निर्भर होता है। अध्ययन के आरम्भ में जो प्राक्कल्पनायें बनाई जाती हैं, सामाजिक अनुसंधान के द्वारा उनकी विधिवत् जाँच की जाती है। सामाजिक अनुसंधान के द्वारा केवल नये सिद्धान्तों का निर्माण करना ही नहीं होता बल्कि पुराने सामाजिक तथ्यों की प्रामाणिकता की भी जाँच की जाती है।

सामाजिक अनुसंधान खोज की ऐसी विधि है जिसमें सामाजिक परिस्थिति के सन्दर्भ में किसी घटना, व्यवहार, सामाजिक जीवन तथा समस्या के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करते हुए सामाजिक यथार्थ को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें निरीक्षण-परीक्षण, तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण द्वारा सामाजिक घटनाओं के कारणों का पता लगाया जाता है तथा वस्तु-स्थिति की तार्किक ढंग से विवेचना की जाती है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. सामाजिक अनुसंधान का आशय स्पष्ट किजिए।

.....

.....

.....

2. सामाजिक अनुसंधान को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

5.2.1 सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य

अब तक आप सामाजिक अनुसंधान के अर्थ व परिभाषाओं से परिचित हो गये होंगे। अब आपको सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों से परिचित करवाया जायेगा।

गुडे एवं हॉट (1952) ने सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को दो भागों में वर्गीकृत किया है- (1) सैद्धान्तिक उद्देश्य, (2) व्यावहारिक उद्देश्य।

1. सैद्धान्तिक उद्देश्य- सामाजिक अनुसंधानों के सैद्धान्तिक उद्देश्यों का समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। नवीन तथ्यों एवं ज्ञान की खोज करना, तथ्यों के बीच कार्य-कारण सम्बन्धों को ज्ञात करना, समस्याओं के कारणों की खोज करना, नियमों की खोज तथा सैद्धान्तिक विकास के तथ्यों की भविष्यवाणी करना आदि सामाजिक अनुसंधानों के सैद्धान्तिक उद्देश्य हैं।

(i) नवीन तथ्यों एवं ज्ञान की खोज- सामाजिक अनुसंधान के द्वारा नये तथ्यों के विषय में अनुसंधान कर ज्ञान प्राप्त किया जाता है, साथ ही पूर्व घटनाओं से सम्बन्धित तथ्यों की पुनः परीक्षा भी की जाती है। समाज सदैव परिवर्तन के बहाव में रहता है। इसी परिवर्तन के कारण सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने पर सामाजिक तथ्यों में भी परिवर्तन हो जाता है। अनुसंधान द्वारा इन परिवर्तित नवीन तथ्यों का अध्ययन कर नये ज्ञान की खोज की जाती है तथा हमारे ज्ञान को गतिशील व प्रगतिशील बनाया जाता है।

(ii) कारण सम्बन्धों की व्याख्या- सामाजिक अनुसंधान के सैद्धान्तिक उद्देश्यों में सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों के कार्य-कारण सम्बन्धों का पता लगाना प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक सामाजिक घटना या तथ्यों का समाज पर प्रकार्यात्मक या अकार्यात्मक प्रभाव अवश्य ही होता है तथा प्रत्येक घटना केवल स्वयं में घटित न होकर दूसरी सामाजिक घटनाओं से आवश्यक रूप से सम्बन्धित होती है। अतः सामाजिक अनुसंधान के द्वारा घटनाओं एवं तथ्यों के कार्य-कारण सम्बन्धों की व्याख्या कर उनकी वास्तविक प्रकृति को समझा जा सकता है। जैसे-समाज में अपराध की घटना को वास्तविक रूप से समझने के लिये उससे सम्बन्धित सामाजिक घटनाओं, गरीबी, गन्दी बस्ती आदि में पाये जाने वाले कार्य-कारण सम्बन्धों के आधार पर समझा जा सकता है।

(iii) तथ्यों का वर्गीकरण एवं भविष्यवाणी- सामाजिक घटनाओं की तार्किक तरीके से व्याख्या करने के लिये हमें उपलब्ध तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीयन करना चाहिये। तथ्यों का गहन रूप से विश्लेषण करने के बाद अनुसंधानकर्ता तथ्यों के बीच कार्य-कारण सम्बन्धों की व्याख्या करता है और उसके आधार पर ही एक समाज वैज्ञानिक तथ्यों की भविष्यवाणी अथवा पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है। इस प्रकार विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् अनुसंधानकर्ता यह भविष्यवाणी अथवा पूर्वानुमान लगा सकता

है कि विभिन्न सामाजिक घटनाओं के घटित होने पर कौन-कौन से तथ्य घटित होंगे तथा समाज का स्वरूप कैसा होगा।

(iv) प्रकार्यात्मक सम्बन्धों को ज्ञात करना- सैद्धान्तिक उद्देश्य से तात्पर्य अनुसंधानकर्ता द्वारा विभिन्न सामाजिक घटनाओं और तथ्यों के बीच पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक सम्बन्धों को खोजना है तथा उन स्वाभाविक नियमों को ज्ञात करना है, जिनके द्वारा सामाजिक घटनायें निर्देशित, नियंत्रित एवं कार्यान्वित होती हैं। उदाहरण के लिये, वर्तमान ग्रामीण समाज के सन्दर्भ में जजमानी व्यवस्था एवं प्रभु जातियों के अध्ययन द्वारा ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं इन अवधारणाओं के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्धों को ज्ञात किया जा सकता है।

2. व्यावहारिक उद्देश्य- सामाजिक अनुसंधान के दूसरे उद्देश्य की प्रकृति व्यावहारिक होती है। इस उद्देश्य का तात्पर्य यह है कि सामाजिक अनुसंधान सामाजिक जीवन तथा विभिन्न सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में हमें जो ज्ञान प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी कर सकते हैं। कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं होता जिसका की व्यावहारिक उपयोग न किया जा सके। यह ज्ञान हमें सामाजिक समस्याओं को हल करने व सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने में निम्न प्रकार सहायक होता है:

(i) सामाजिक समस्याओं का निराकरण- प्राचीन समाज और सामाजिक जीवन सरल व साधारण था तथा मनुष्यों की आवश्यकतायें भी सीमित थीं। उस समय सामाजिक समस्याओं की प्रकृति भी सरल थी। परन्तु वर्तमान आधुनिक समाज में बढ़ते हुए विज्ञान व प्रोद्योगिकी में प्रगति के कारण आज सामाजिक जीवन जटिल हो गया है तथा मानव की आवश्यकतायें, साथ ही उससे सम्बन्धित समस्याऐं भी जटिल हो गई हैं। इन जटिल सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु सामाजिक अनुसंधान द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ज्ञान के द्वारा समस्या की विस्तृत व्याख्या की जाती है तथा उसके समाधान हेतु उपयोगी सुझाव भी प्रस्तुत किये जाते हैं। इसी सन्दर्भ में पी.वी. यंग (1960) ने लिखा है कि ''एक सामाजिक अनुसंधानकर्ता का प्राथमिक उद्देश्य, चाहे वह दूरवर्ती हो अथवा तात्कालिक, सामाजिक व्यवहारों तथा सामाजिक जीवन को समझकर उन पर अधिक से अधिक नियंत्रण स्थापित करना है।''

(ii) सामाजिक योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करना- सामाजिक परिवर्तन एवं नियंत्रण की दिशा के प्रति एक स्थाई एवं सुसंगत दृष्टिकोण जो इनके लक्ष्य अथवा साधनों से सम्बन्धित हो, सामाजिक योजना कहलाता है। सामाजिक योजनायें समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिकायें निभाती हैं। सामाजिक योजनाओं को कितने व्यावहारिक व प्रभावपूर्ण ढंग से बनाया जाये कि योजना को क्रियान्वित करने में जनसहयोग की अपेक्षित भागेदारी हो, इस विषय में सामाजिक अनुसंधान द्वारा महत्वपूर्ण तथ्यों की प्राप्ति होती है।

(iii) सामाजिक नियंत्रण में सहायक- सामाजिक अनुसंधान के द्वारा सामाजिक समस्याओं के कारणों एवं सामाजिक घटनाओं के विषय में अव्यवस्थाओं के कारणों का पता लगाया जा सकता है। अनुसंधान के द्वारा घटना के सम्बन्ध में जितना हमारा ज्ञान बढ़ता रहेगा उतना ही हम उस घटना पर नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, युवा वर्ग पर हमारा सामाजिक अनुसंधान जितना अधिक बढ़ता रहेगा, उतना ही हम युवा वर्ग में पाये जाने वाले असंतोष के कारणों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और उनके व्यवहारों को नियंत्रित कर सामाजिक नियंत्रण स्थापित कर सकेंगे।

सामाजिक अनुसंधान के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उद्देश्य एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। सामाजिक अनुसंधान के इन दोनों उद्देश्यों के द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। सामाजिक अनुसंधान के द्वारा उन आधारभूत नियमों एवं प्रक्रियों को समझा जा सकता है जिनके द्वारा सामाजिक जीवन का समुचित विकास हो सके। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य चाहे सैद्धान्तिक हो या व्यावहारिक उसका महत्वपूर्ण योगदान समाज का कल्याण करना होता है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. पी. वी. यंग के अनुसार सामाजिक अनुसंधानकर्ता का प्राथमिक उददे्श्य क्या है?

.....

.....

.....

5.3 सामाजिक सर्वेक्षण

सामाजिक सर्वेक्षण एक ऐसी वैज्ञानिक पद्धति है जो किसी सामाजिक समूह अथवा सामाजिक जीवन के किसी पक्ष या घटना के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अध्ययन करने में प्रयुक्त होती है। किसी विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक अथवा प्रशासनिक क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित तथ्यों के व्यवस्थित संकलन की विधि को सामाजिक सर्वेक्षण कहते हैं। आधुनिक सामाजिक सर्वेक्षणों का इतिहास ब्रिटेन में अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में किये गये सामाजिक अध्ययनों से जुड़ा हुआ है। ये अध्ययन किसी समुदाय विशेष की तात्कालिक एवं व्याधिकीय समस्याओं के निदान एवं समाधान के उद्देश्य को लेकर किये गये थे। आधुनिक समाज वैज्ञानिक सामाजिक सर्वेक्षण को तथ्य-संकलन की एक ऐसी विधि मानते हैं जिसमें साक्षात्कार अथवा प्रश्नावली के माध्यम से सूचनादाताओं के एक वृहत वर्ग से विधिवत् एवं क्रमबद्ध रूप में प्रश्नोत्तर द्वारा तथ्यात्मक अथवा विचारात्मक सूचनायें संकलित की जाती हैं।

5.3.1 सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ एवं परिभाषायें

सामाजिक सर्वेक्षण का तात्पर्य एक ऐसी अनुसंधान प्रणाली से है जिसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता अनुसंधान से सम्बन्धित स्थान पर स्वयं जाकर सामाजिक घटना या स्थिति का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करता है तथा घटना से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करके निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्यों एवं महत्व को दृष्टिगत रखते हुए विद्वानों ने सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषायें निम्नलिखित तीन दृष्टिकोणों के आधार पर दी हैं:

1. वैज्ञानिक पद्धति के रूप में- इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर विवेचना की जाती है।

मोजर एवं काल्टन (1971) के अनुसार- ''समाजशास्त्री को अध्ययन विषय से परोक्ष रूप से सम्बन्धित तथ्य एकत्रित करना ऐसे उपयोगी रूप में देखना चाहिये, जिससे समस्या को केन्द्रीभूत किया जाता है तथा अनुशीलन योग्य विषयों को सुझाया जाता है।''

2. सामाजिक प्रगति एवं सुधार के अध्ययन के रूप में- सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषाओं के इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामाजिक समस्याओं के समाधान की खोज करके सामाजिक कल्याण सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।

पी.वी. यंग (1960) के अनुसार- ''किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के एक समुदाय के जीवन से सम्बन्धित किसी महत्वपूर्ण तात्कालिक विघटनकारी सामाजिक समस्या का वैज्ञानिक विधियों द्वारा अध्ययन व इसके सुधार की क्रियात्मक योजना का निरूपण ही सामाजिक सर्वेक्षण है।''

ई. डब्ल्यू. बरगेस (1961) के अनुसार- ''एक समुदाय का सर्वेक्षण सामाजिक विकास की एक रचनात्मक योजना प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया गया, उसकी दशाओं तथा आवश्यकताओं का एक वैज्ञानिक अध्ययन है।''

सामाजिक सर्वेक्षण की उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सामाजिक सर्वेक्षण में वैज्ञानिक पद्धतियों एवं प्रविधियों के आधार पर अध्ययन किया जाता है। सर्वेक्षण एक समय में एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रहता है। सामाजिक सर्वेक्षण का कार्यक्षेत्र केवल तथ्यों का संकलन और विश्लेषण तक ही सीमित नहीं है, अपितु अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों एवं सुझावों का प्रयोग तात्कालिक सामाजिक समस्याओं के सुधार हेतु क्रियात्मक योजना के रूप में किया जाता है।

सामाजिक सर्वेक्षण के अर्थ एवं परिभाषाओं से परिचित होने के बाद अब आपको सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्यों से परिचित करवाया जायेगा।

स्वप्रगति परीक्षण

4. सामाजिक सर्वेक्षण का आशय स्पष्ट किजिए।

.....

.....

.....

5.3.2 सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य

सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य तथ्यों के संकलन द्वारा सामाजिक घटनाओं की वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त करना है। साथ ही सामाजिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत कर सामाजिक कल्याण की योजनायें बनाने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करना है। मोजर (1971) के अनुसार, ''सामाजिक सर्वेक्षण जन-जीवन के किसी पक्ष पर प्रशासन सम्बन्धी तथ्यों की आवश्यकता की पूर्ति अथवा किसी कारण-परिणाम के सम्बन्ध में खोज अथवा किसी समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के किसी पक्ष पर नये सिरे से प्रकाश डालने के लिये किया जा सकता है।'' सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:

1. सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन- सामान्यतः सामाजिक सर्वेक्षण समाज की किसी घटना अथवा विशेष पक्ष के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी एकत्र करने के लिये किये जाते हैं। सामूहिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं तथा व्यवहारों के सम्बन्ध में गणनात्मक ;फनंदजपजंजपअमद्ध तथ्यों का संकलन सामाजिक सर्वेक्षण का प्रमुख उद्देश्य है। जैसे-जनसंख्या की प्रकृति, लिंगानुपात, वैवाहिक स्थिति, परिवारों के प्रकार, आय-व्यय आदि विषयों के सम्बन्ध में तथ्य एकत्रित करने का कार्य सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा ही किया जाता है।

2. सामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन- वर्तमान समाज में सामाजिक परिवर्तन की गति तेज होने के कारण समाज में नयी-नयी समस्याऐं उत्पन्न हो रही हैं। सर्वेक्षण का उद्देश्य समाज की परिवर्तित दशाओं, सामाजिक सम्बन्धों की जटिलता एवं व्यवहार आदि का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण स्वरूप- निर्धनता, अपराध, विवाह-विच्छेद, बेरोजगारी, अशिक्षा आदि अनेकों ऐसी सामाजिक समस्याऐं हैं। सर्वेक्षण द्वारा विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है जो उन समस्याओं के समाधान करने में सहायता प्रदान करते हैं।

3. प्राक्कल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण- सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य अनुसंधानकर्ता द्वारा पूर्व सर्वेक्षण, धारणा अथवा अनुभवों के आधार पर कार्यकारी प्राक्कल्पना का निर्माण कर सामाजिक समस्याओं के विषय में एक पूर्व अनुमान लगाया जाता है। तत्पश्चात् प्राक्कल्पनाओं का सत्यापन करके उनकी सार्थकता के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है।

4. कार्य-कारण सम्बन्धों को ज्ञात करना- सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करते हुए उन घटनाओं के कारणों को ज्ञात करता है। सामान्यतः समाज में होने वाली प्रत्येक घटना का कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है। प्रत्येक सामाजिक समस्या चाहे वह अपराध को या अन्धविश्वास, उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य छिपा रहता है। इसी कार्य-कारण सम्बन्ध को खोजना सामाजिक सर्वेक्षण का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

5. सामाजिक सिद्धान्तों का सत्यापन- समाज में सदैव परिवर्तन होने के कारण सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहता है। अतः सामाजिक घटनायें भी परिवर्तित होती रहती हैं। पूर्व की सामाजिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में बनाये गये सिद्धान्त वर्तमान की सामाजिक व्यवस्था पर लागू नहीं हो पाते हैं। सामाजिक सर्वेक्षण विद्यमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में जो पूर्व में बनाये गये सिद्धान्त हैं उनका सत्यापन अथवा पुनर्परीक्षा कर यह स्पष्ट करता है कि परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में सिद्धान्त कितना उचित है।

6. व्यावहारिक-सुधारात्मक परिप्रेक्ष्य- सामाजिक जीवन की समस्याओं के सन्दर्भ में सामाजिक सर्वेक्षण के व्यावहारिक एवं कल्याणकारी उद्देश्य भी होते हैं। सर्वेक्षण द्वारा समस्या से सम्बन्धित तथ्यों के आधार पर उसके कारणों को इस उद्देश्य से भी ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाता है जिससे उस समस्या का समाधान किया जा सके। सामाजिक अन्धविश्वास, सामाजिक तनाव आदि से जुड़ी समस्याओं के हल के लिये सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से सामाजिक सर्वेक्षण समाज में सुधार लाने की एक वैज्ञानिक विधि है।

5.4 सामाजिक अनुसंधान और सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर

अब तक आप सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक सर्वेक्षण के अर्थ, परिभाषा और उद्देश्यों से परिचित हो गये होंगे। अब आपको सामाजिक अनुसंधान और सामाजिक सर्वेक्षण के बीच अन्तर से परिचित करवाया जायेगा।

1. सामाजिक सर्वेक्षण के अन्तर्गत सामाजिक घटनाओं व तथ्यों के अध्ययन में प्राक्कल्पनाओं की आवश्यकता नहीं होती, जबकि सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत प्राक्कल्पनाओं का निर्माण आवश्यक है। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक सर्वेक्षण में समस्या से सम्बन्धित सभी तथ्यों से आवश्यक सूचनायें एकत्र की जाती हैं जिससे उस समस्या के पीछे छिपे कारणों का पता चल सके।

सामाजिक अनुसंधान में तथ्य संकलन से पूर्व प्राक्कल्पनायें बनायी जाती हैं और उस प्राक्कल्पना के सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित किया जाता है। प्राक्कल्पना की वैधता की जाँच सामाजिक अनुसंधान द्वारा ही की जाती है।

2. सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा किसी सामाजिक समस्या के सम्बन्ध में जानकारी एवं ज्ञान एकत्रित किया जाता है जिससे उस समस्या का समाधान ढूंढ़कर आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने के कारण उपयोगितावादी और व्यावहारिक होती है। जबकि सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत अध्ययन विषय के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत एवं गहन ज्ञान प्राप्त किया जाता है जिससे तथ्यों की खोज एवं सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति सैद्धान्तिक होती है सर्वेक्षण की तरह व्यावहारिक नहीं।
3. सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के विषय में तथ्यों का संकलन समाज कल्याण या समाज सुधार के दृष्टिकोण से करता है। अतः सामाजिक सर्वेक्षण की अध्ययन वस्तु मुख्यतः सामाजिक विघटन उत्पन्न करने वाली समस्याओं से सम्बन्धित होती हैं। जबकि सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति एवं विस्तार से सम्बन्धित होता है। इसी कारण सामाजिक अनुसंधान का सम्बन्ध सभी प्रकार की सामाजिक घटनाओं से होता है।
4. सामाजिक सर्वेक्षण किसी व्यक्ति के अतिरिक्त विभिन्न संगठनों तथा सरकारी विभागों द्वारा भी कराये जाते हैं। इसका अध्ययन क्षेत्र विस्तृत होता है और सभी तथ्यों का संकलन एक व्यक्ति के द्वारा नहीं हो सकता। अतः सामाजिक सर्वेक्षण एक सामूहिक प्रक्रिया है। इसमें निदेशक, अध्ययन-स्थल निरीक्षक, सर्वेक्षण-प्रशिक्षक आदि सम्मिलित होते हैं। जबकि सामाजिक अनुसंधान व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। अनुसंधानकर्ता द्वारा अपनी जिज्ञासा की सन्तुष्टि करने के लिये व्यक्तिगत स्तर पर अनुसंधान किया जाता है। अतः सामाजिक अनुसंधान सामाजिक सर्वेक्षण की तरह सामूहिक प्रक्रिया न होकर व्यक्तिगत रूप से किया जाता है।
5. सामाजिक सर्वेक्षण का सम्बन्ध तात्कालिक समस्याओं के सम्बन्ध में समाधान प्रस्तुत करने हेतु एक छोटी अवधि में ज्ञान का उपयोग करने से होता है। सामान्यतः किसी विशेष सामाजिक समस्या अथवा विकास कार्यक्रम के प्रभाव से सम्बन्धित सर्वेक्षण के लिये एक विशेष अवधि निर्धारित कर दी जाती है और निश्चित अवधि के अन्तर्गत ही उसे रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। जबकि सामाजिक अनुसंधान में अध्ययन सामान्यतः दीर्घकालीन होता है क्योंकि अनुसंधानकर्ता कम समय में सामाजिक तथ्यों के सम्बन्ध में विस्तृत और गहन जानकारी नहीं प्राप्त कर सकता। चूंकि सामाजिक अनुसंधान के पश्चात् उसे सिद्धान्तों का निर्माण करना होता है, अतः अनुसंधान दीर्घकालीन अवधि में गहन रूप से किया जाता है।

6. सामाजिक सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्षों की सार्थकता उसी अध्ययन क्षेत्र तथा तात्कालीन दशाओं तक ही सीमित रहती है। सामाजिक सर्वेक्षण के निष्कर्षों के आधार पर भविष्य के लिये प्राक्कल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है परन्तु सिद्धान्तों का निर्माण नहीं किया जा सकता, जबकि सामाजिक अनुसंधानों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर नये सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है। सामाजिक अनुसंधान के द्वारा जब पूर्व में बनायी गयी प्राक्कल्पना की वैधता की जाँच में वह सत्य पाई जाती है तो उसे सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। ऐसे सिद्धान्त तब तक स्वीकार किये जाते हैं जब तक कोई अन्य सिद्धान्त इसके विरोध या अपवाद को सिद्ध न कर दे।
7. फेयरचाइल्ड ने सामाजिक अनुसंधान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''सामाजिक अनुसंधान, सामाजिक सर्वेक्षण की अपेक्षा अधिक गहन तथा सूक्ष्म होता है और सामान्य सिद्धान्तों की खोज से अधिक सम्बन्धित रहता है।'' सामाजिक अनुसंधान का आधारभूत उद्देश्य सैद्धान्तिक रूप से ज्ञान की प्राप्ति है जबकि सामाजिक सर्वेक्षण व्यावहारिक तौर पर सामाजिक सुधार से सम्बन्धित है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति एक-दूसरे से काफी भिन्न है। समाज विज्ञान से सम्बन्धित अध्ययनों में सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक अनुसंधान की महत्वपूर्ण भूमिका है। सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा सामाजिक तथ्यों का संकलन कर समस्याओं के कारणों का पता लगाकर उनका समाधान प्रस्तुत किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान में सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों की विस्तृत व्याख्या की जाती है तथा सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है।

5.5 सार-संक्षेप

सामाजिक अनुसंधान व सामाजिक सर्वेक्षण, दोनों ही सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करते हैं। दोनों का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना है तथा दोनों में वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अध्ययन किया जाता है। वास्तविकता यह है कि सामाजिक अनुसंधान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में अन्तर मुख्यतः इस तथ्य पर आधारित होता है कि अनुसंधान के दो रूप होते हैं- विशुद्ध अनुसंधान एवं व्यावहारिक अनुसंधान। विशुद्ध अनुसंधान का मुख्य संबंध नवीन ज्ञान के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करना होता है, जबकि व्यावहारिक अनुसंधान उपयोगितावादी होता है। सामाजिक सर्वेक्षण की प्रकृति विशुद्ध अनुसंधान से सम्बन्धित ना होकर व्यावहारिक अनुसंधान से अधिक सम्बन्धित होती है।

5.7 अभ्यास-प्रश्न

1. सामाजिक अनुसंधान का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी परिभाषा लिखिए।

2. सामाजिक अनुसंधान के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

3. सामाजिक सर्वेक्षण को परिभाषित कीजिये तथा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में सर्वेक्षण के महत्व का वर्णन कीजिए।

4. सामाजिक अनुसंधान और सामाजिक सर्वेक्षण के पारस्परिक सम्बन्ध और अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

सर्वेक्षण- किसी विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक अथवा प्रशासनिक क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित तथ्यों के व्यवस्थित संकलन की विधि को सामाजिक सर्वेक्षण कहते हैं।

सामाजिक समस्या- सामाजिक समस्यायें सामाजिक-व्यवहारों के टूटने, भंग होने अथवा विचलन की स्थिति की परिचायक हैं। किसी समस्या के सामाजिक होने के लिये यह आवश्यक है कि यह स्थिति सम्पूर्ण प्रणाली को प्रभावित करे और व्यक्तियों की उसमें सहभागिता हो।

प्राक्कल्पना- घटनाओं के संबंध में निर्मित एक अनुमान अथवा प्रस्थापना को प्राक्कल्पना कहते हैं। शोध के विशिष्ट अर्थ में दो या दो से अधिक चरों के अन्तर्सम्बन्धों को व्यक्त करने वाला एक ऐसा अस्थाई कथन या सामान्यीकरण प्राक्कल्पना कहलाता है जिसे साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध अथवा असिद्ध किया जाना बाकी है।

वैज्ञानिक पद्धति- वैज्ञानिक पद्धति में ज्ञान प्राप्त करने हेतु वैज्ञानिक विधि द्वारा आनुभविक परीक्षण, तथ्यों का व्यवस्थित अवलोकन, परीक्षण तथा सामान्यीकरण एवं सिद्धान्त रचना की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- Burges, E.W. (1961) **American Journal of Sociology**, Vol. XXI, pp:492
- Goode, W.J. and P.K. Hatt (1952) **Methods in Social Research**, Anchland, Mc Graw Hill Book Co.
- Moser, C. A. and G. Kalton (1971) **Survey Method in Social Investigation**, London, Heinemann Educational Books.
- Young, P.V. (1960) **Scientific Social Surveys and Research**, Bombay, Asia Publising House.
- आहूजा, राम (2003) सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स।

इकाई-06 उपकल्पना: अर्थ, आवश्यकता एवं स्रोत

Hypothesis: Meaning, Needs & Sources

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 अध्ययन के उद्देश्य

6.3 उपकल्पना की विशेषताएँ

6.4 उपकल्पना की आवश्यकता

6.5 उपकल्पना के स्रोत

6.6 उपकल्पना की सीमाएँ

6.7 सार-संक्षेप

6.8 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

6.9 अभ्यास-प्रश्न

6.10 पारिभाषिक शब्दावली

6.11 संदर्भ-ग्रन्थ

6.0 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान या शोध कार्य में उपकल्पना या प्राक्कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी शोध या अनुसंधान कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्ण शोध का विषय या समस्या का चयन किया जाता है। समस्या या शोध विषय का चयन कर लेने एवं सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के साथ साथ शोधकर्ता के मन में विषय से सम्बन्धित कई प्रकार के विचार और कल्पनायें आती हैं। ये पूर्व विचार और कल्पनायें जो शोध विषय से सम्बन्धित होती हैं, सामान्यतः उपकल्पना या शोध प्राक्कल्पना कहलाती है।

एक वैज्ञानिक शोध में उपकल्पना का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि यह सत्य तक पहुंचने या कार्य-कारण सम्बन्धों को ज्ञात करने में मार्गदर्शन का कार्य करती है।

6.1 अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना की भूमिका, अर्थ, प्रकार और महत्व से परिचित हो सकेंगे। साथ ही आप:

- उपकल्पना के अर्थ को समझ सकेंगे;
- सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- उपकल्पना की प्रकृति को समझेंगे।

6.2 उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषा

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ चिन्तनशील और जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है। चिन्तनशील तथा जिज्ञासु होने के कारण ही उसके अन्दर तर्क क्षमता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

वर्तमान समय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक विधियों के आधार पर ही सामाजिक घटनाओं, समस्याओं व विशेषताओं को समझने का तथा उनके पीछे छिपे हुए कार्य-कारण सम्बन्धों को जानने का प्रयास किया जाता है।

सामाजिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में जब हम आगे बढ़ते हैं तो सर्वप्रथम विषय का चयन करते हैं। सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन, विषय-विशेषज्ञ तथा घटना से प्रत्यक्ष सम्बन्धित लोगों से अनौपचारिक रूप से विषय के संदर्भ में बातें करते हैं। इस प्रकार साहित्य अध्ययन विषय-विशेषज्ञों और अध्ययन से सम्बन्धित इकाइयों से वार्ता के परिणाम स्वरूप हमारे मन-मस्तिष्क में विषय, समस्या या घटना के संदर्भ में कुछ विचार तथा कल्पनायें जन्म लेती हैं जो अध्ययन विषय से सम्बन्धित होती हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी शोध, अनुसंधान और सर्वेक्षण की समस्या के चुनाव पश्चात् शोधकर्ता विषय या घटना के बारे में कार्य-कारण सम्बन्धों का पूर्वानुमान लगाता है या चिन्तन करता है। इसी पूर्व चिन्तन या अनुमान को सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना या प्राक्कल्पना के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिये हम 'बाल अपराध' विषय पर अध्ययन करना चाहते हैं तो अध्ययन से पूर्व ही हम यह उपकल्पना बना सकते हैं कि 'विघटित परिवार एवं दोषपूर्ण समाजीकरण बाल अपराध का प्रमुख कारण है।'

आगे हम अपने अध्ययन में देखने का प्रयास करेंगे कि विघटित परिवार एवं दोषपूर्ण समाजीकरण एवं बाल अपराध के बीच क्या सम्बन्ध है? हमारा पूर्वानुमान सही है या नहीं? यह कामचलाऊ पूर्वानुमान हमारे शोध या अनुसंधान कार्य को आधार एवं दिशा प्रदान करेगा एवं अध्ययन पूर्ण होने पर यह उपकल्पना सही ही सिद्ध होगी, यह जरूरी नहीं होता। यह सही या गलत हो सकती है। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य उपकल्पना को सही सिद्ध करने के बजाय वास्तविक तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक सत्य की खोज करना होता है।

विभिन्न विद्वानों ने उपकल्पना की प्रकृति को भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है। लुण्डबर्ग (G.A. Lundberg) के अनुसार, 'एक प्राक्कल्पना एक कामचलाऊ सामान्यीकरण है, जिसकी सत्यता की परीक्षा अभी बाकी है।'

गुडे एवं हाट (Goode and Hatt) के अनुसार, 'प्राक्कल्पना एक ऐसी मान्यता होती है जिसकी सत्यता सिद्ध करने के लिए उसका परीक्षण किया जा सकता है।'

पी0बी0 यंग के अनुसार, 'एक कार्यवाहक विचार जो उपयोगी खोज का आधार बनता है, कार्यवाहक प्राक्कल्पना माना जाता है।'

पीटर एच0 मन0 के शब्दों में, 'प्राक्कल्पना एक कामचलाऊ अनुमान है।'

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि उपकल्पना किसी शोध समस्या से सम्बन्धित एक सामान्य पूर्वानुमान अथवा विचार है जिसके संदर्भ में ही सम्पूर्ण शोध कार्य किया जाता है। प्रारम्भ में उपकल्पना शोधार्थी का दिशा-निर्देश करती है एवं अध्ययनकर्ता को इधर-उधर भटकने से रोकती है तथा अन्त में यह उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत करने तथा पूर्व-निष्कर्षों का सत्यापन करने में सहायता करती है। अध्ययन के द्वारा संकलित तथ्यों के आधार पर यदि कोई उपकल्पना सत्य प्रमाणित होती है तो उसे एक सिद्धान्त के रूप में स्वीकृत कर लिया जाता है और यदि वह सत्य प्रमाणित नहीं होती तो उसे अस्वीकृत कर दिया जाता है। इसीलिये उपकल्पना को सामान्यतौर पर 'कार्यकारी उपकल्पना' के नाम से भी जाना जाता है, उपकल्पना के संदर्भ में निम्न निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं:

1. प्रारम्भिक स्तर पर उपकल्पना या प्राक्कल्पना शोध कार्य में मार्गदर्शन का कार्य करती है।
2. उपकल्पना अध्ययन के दौरान इधर-उधर भटकने से रोकती है।
3. उपकल्पना सामाजिक अनुसंधान और खोज को आधार प्रदान करती है।
4. उपकल्पना नवीन ज्ञान प्राप्ति की प्रेरणा प्रदान करती है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. उपकल्पना किसी शोधकर्ता की क्या सहायता करती है?

.....

.....

.....

2. विभिन्न विद्वानों के अनुसार उपकल्पना की परिभाषाएं क्या है?

.....

.....

.....

6.3 उपकल्पना की विशेषतायें

गुडे तथा हाट ने उपयोगी उपकल्पना की निम्नांकित पांच विशेषताओं का उल्लेख किया है:

(1) स्पष्टता (Clarity)- एक अध्ययनकर्ता अपने अध्ययन के लिए जिस उपकल्पना का निर्माण करता है, उसकी भाषा और अर्थ इतना स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए जिससे उसकी मनमाने अर्थों में विवेचना न की जा सके। गुडे तथा हाट का विचार है कि उपकल्पना को स्पष्ट बनाने के लिए इसमें दो विशेषताओं का समावेश होना आवश्यक है- प्रथम यह कि उपकल्पना में प्रयुक्त किये गये शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए तथा दूसरी विशेषता यह कि किसी अवधारणा को परिभाषित करते समय ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे सभी लोग उसे समान अर्थ में समझ सकें।

(2) अनुभवसिद्धता (Empiricism)- उपकल्पना का निर्माण करते समय अनुसंधानकर्ता को यह ध्यान रखना चाहिए कि उपकल्पना किसी आदर्श को प्रस्तुत करने वाली न हो बल्कि उसके द्वारा किसी विचार अथवा अवधारणा की सत्यता की परीक्षा की जा सके। गुडे और हाट ने लिखा है कि ऐसी उपकल्पनायें आदर्शात्मक होती हैं कि सभी 'पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं' अथवा 'सभी अधिकारी भ्रष्ट होते हैं' ऐसी उपकल्नायें प्रयोग सिद्ध अथवा अनुभवसिद्ध नहीं होतीं और इसलिए इन्हें वैज्ञानिक उपकल्पनायें नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिकोण से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वैज्ञानिक अवधारणायें केवल वे होती हैं जिनमें अन्तिम रूप से अनुभवसिद्धता का समावेश होता है।

(3) विशिष्टता (Specificity)- उपकल्पना सामान्य न होकर विशिष्ट होनी चाहिए। यदि अध्ययन विषय के सभी पक्षों को लेकर एक सामान्य उपकल्पना का निर्माण कर लिया जाता है तो अध्ययनकर्ता एक समय

में ही विषय के सभी पक्षों का यथार्थ अध्ययन नहीं कर सकता। इस दृष्टिकोण से उपकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उपकल्पना अध्ययन विषय के किसी विशेष पक्ष से ही सम्बन्धित हो। केवल इसी प्रकार अध्ययनकर्ता अपना ध्यान विषय के एक विशेष पक्ष पर केन्द्रित करके वास्तविक सूचनायें प्राप्त कर सकता है।

(4) उपलब्ध प्रविधियों से सम्बद्ध (Related with Available Techniques)-उपकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि उपकल्पना ऐसी होनी चाहिए जिसका उपलब्ध प्रविधियों द्वारा परीक्षण किया जा सके। इस संदर्भ में गुडे और हाट ने लिखा है कि 'एक सिद्धान्त बनाने वाला जो यह नहीं जानता कि उसकी उपकल्पना की जांच करने के लिए कौन सी प्रविधियां उपलब्ध हैं, उपयोगी प्रश्नों के निर्माण में असफल ही रह जाता है।' वास्तविकता यह है कि यह कथन प्रत्येक स्थिति में उपयुक्त नहीं है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति इतनी जटिल और परिवर्तनशील है कि कभी-कभी उपलब्ध प्रविधियों के अनुरूप उपकल्पनाओं का निर्माण करना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में यदि अनुसंधानकर्ता अपनी उपकल्पना की सत्यता की जांच करने के लिए नई प्रविधियों को भी विकसित कर सके तो इसमें कोई हानि नहीं होती। सच तो यह है कि अक्सर अनेक उपकल्पनायें नयी अध्ययन प्रविधियों के विकास में भी सहायक होती हैं।

(5) सिद्धान्तों से सम्बन्धित (Related with Existing Theories)- उपकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह पहले प्रस्तुत किये गये किसी सिद्धान्त से सम्बन्धित हो। यदि कोई उपकल्पना किसी भी सिद्धान्त से सम्बन्धित नहीं होती तो उसकी सत्यता की परीक्षा करना अक्सर बहुत कठिन हो जाता है। यही कारण है कि किसी उपकल्पना का निर्माण करने से पहले अध्ययन विषय से सम्बन्धित साहित्य और ज्ञान को समझना आवश्यक होता है। पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों के संदर्भ में बनायी गयी उपकल्पना अधिक क्रमबद्ध होती है। यदि सभी अध्ययनकर्ता स्वतन्त्र रूप से उपकल्पनाओं का निर्माण करने लगें तो इनके आधार पर विकसित ज्ञान की प्रकृति कठिनता से ही वैज्ञानिक हो सकती है। इस सम्बन्ध में गुडे और हाट का विचार है कि 'जब अनुसंधान व्यवस्थित रूप से पूर्व स्थापित सिद्धान्तों पर आधारित होता है तो प्रश्न में यथार्थ योगदान की संभावना अधिक हो जाती है।

6.4 उपकल्पना की आवश्यकता (Need of Hypothesis)

किसी भी सामाजिक अनुसंधान या शोधकार्य को वैज्ञानिक बनाने में उपकल्पना की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उपकल्पना के महत्व को स्पष्ट करते हुए जहोदा और कुक (श्रंीवकं - ब्ववा) ने लिखा है कि 'उपकल्पनाओं का निर्माण तथा सत्यापन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य होता है।' इसी

प्रकार गुडे और हाट का कथन है कि 'अच्छे अनुसंधान में उपकल्पना का निर्माण करना सर्वप्रमुख चरण है'। वास्तव में कोई भी शोध कार्य या सामाजिक अनुसंधान उपकल्पना के अभाव में सुव्यवस्थित तरीके से नहीं किया जा सकता है। अनुसंधान कार्य की लम्बी यात्रा में उपकल्पना प्रकाश स्तम्भ का कार्य करते हुए मार्गदर्शन का कार्य करती है।

उपकल्पना के महत्व, कार्य या आवश्यकता को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है:

1. अनुसंधान के उद्देश्य का निर्धारण (Determination of the goal of the Research)- उपकल्पना हमारे शोध या अनुसंधान कार्य के उद्देश्य को इस प्रकार निर्धारित करती है कि हमें किसकी खोज करनी है, कौन-से तथ्य संकलित करने हैं, कौन-से नहीं? कौन-से तथ्य अनुसंधान के लिये उपयोगी और सार्थक हैं, कौन-से निरर्थक ?

2. अनुसंधान की दिशा का निर्धारण (Providing Right Direction to the Research)- उपकल्पना शोधार्थी के लिये पथ प्रदर्शन का कार्य करती है तथा इधर-उधर भटकाव से रोकने का कार्य करती है। पी0वी0 यंग के अनुसार, 'उपकल्पना से अनुसंधानकर्ता ऐसे तथ्यों को एकत्रित करने से बच जाता है जो बाद में अध्ययन विषय के लिए व्यर्थ सिद्ध होते हैं।'

3. उपयोगी तथ्यों के संकलन में सहायक (Helpful in Collecting Relevant Data)- उपकल्पना ही हमें समस्या से सम्बन्धित उपयुक्त एवं सार्थक तथा आवश्यक तथ्यों को संकलित करने के लिए प्रेरणा का कार्य करती है। एम0एच0 गोपाल के अनुसार, 'प्राक्कल्पना के बिना अध्ययनकर्ता अनावश्यक यहां तक कि व्यर्थ सामग्री भी एकत्रित कर सकता है और वास्तव में महत्वपूर्ण तथा लाभकारी तथ्य उसकी दृष्टि से छूट सकते हैं।'

4. अनुसंधान कार्य में निश्चितता लाना (Bringing Definiteness in the Research)- उपकल्पना के माध्यम से ही अनुसंधान कार्य को सुनिश्चित दिशा प्रदान की जा सकती है। अध्ययनकर्ता को यह पता रहता है कि उसे कब, कहां और कौन-से तथ्य या सूचनायें संकलित करनी हैं। इससे अध्ययनकर्ता व्यर्थ के परिश्रम, समय के अपव्यय, अनावश्यक सूचनाओं के संकलन एवं अव्यवस्था से बच जाता है।

5. तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में सहायक (Helpful in drawing logic conclusions): उपकल्पना के मार्गदर्शन में हम अध्ययन के दौरान विभिन्न विधियों एवं तकनीकियों के माध्यम से तथ्यों एवं सूचनाओं का संकलन करते हैं तथा अपनी उपकल्पना की सत्यता की जांच की करते हैं।

तथ्यों के आधार पर यदि उपकल्पना से सम्बन्धित निष्कर्ष सही प्रमाणित होता है तो उसे एक सामान्य नियम के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि उपकल्पना का

सावधानी से निर्माण किया जाये तो यह उपयुक्त और तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में अत्यधिक सहायक होती है।

6. सिद्धान्तों के निर्माण में सहायक (**Helpful in formulation of theories**): सामाजिक अनुसंधान का अन्तिम उद्देश्य कार्य-कारण सम्बन्धों को ज्ञात कर सिद्धान्तों का निर्माण करना होता है। इस कार्य में उपकल्पना की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है, उपकल्पना की सहायता से जो सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं वे नये सिद्धान्तों के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

3. उपकल्पना की आवश्यक्ताओं को संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

6.5 उपकल्पना के स्रोत

सामाजिक अनुसंधान या शोधकार्य में एक अनुसंधानकर्ता अनेक स्रोतों से उपकल्पना प्राप्त कर सकता है। शोधार्थी अपने स्वयं के चिन्तन, समझ, विचार एवं कल्पनाशक्ति के आधार पर उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। लुण्डबर्ग के अनुसार, 'एक फलप्रद उपकल्पना की खोज में हम कविता, साहित्य, दर्शन, समाजशास्त्र के विस्तृत वर्णनात्मक साहित्य, मानव-जाति शास्त्र, कलाकारों के काल्पनिक सिद्धान्तों या उन गंभीर विचारकों के सिद्धान्तों की सम्पूर्ण दुनिया में विचरण कर सकते हैं, जिन्होंने मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों के गहन अध्ययन कार्य में अपने को नियोजित किया है।

गुडे तथा हाट ने उपकल्पनाओं के चार मुख्य स्रोत बताये हैं- सामान्य संस्कृति, वैज्ञानिक सिद्धान्त, समरूपतायें तथा व्यक्तिगत अनुभव। हम यहां पर उपकल्पना के कुछ मुख्य स्रोतों की चर्चा करेंगे।

1. सामान्य संस्कृति - प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति होती है जिसका प्रभाव जीवन शैली, नातेदारी, व्यवहार, सामाजिक संस्थाओं, आदर्श नियमों, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, लोक विश्वास, विचारों में देखने को मिलता है। संस्कृति की यह सभी विशेषतायें उपकल्पनाओं के निर्माण के लिए आधारशिला का कार्य करते हैं। भारतीय सामाजिक जीवन और सामाजिक घटनाओं, जैसे जाति, प्रथा, संयुक्त परिवार,

जजमानी प्रथा, धर्म का महत्व आदि संस्कृति से प्रभावित होते हैं जिनके आधार पर अनेक उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

2. व्यक्तिगत अनुभव- अनेक उपकल्पनायें अध्ययनकर्ता के व्यक्तिगत अनुभव से भी निर्मित हो सकती हैं। उदाहरण के लिये, लोम्ब्रोसो ने सैनिकों के ऊपर अध्ययन किया तथा इस अध्ययन से सम्बन्धित अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर इस उपकल्पना का निर्माण किया कि 'अपराधी जन्मजात होते हैं।' न्यूटन की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति, माल्थस की जनसंख्या वृद्धि एवं डार्विन की अस्तित्व के लिये संघर्ष की उपकल्पनायें व्यक्तिगत अनुभव के परिणामस्वरूप निर्मित हुई हैं।

3. वैज्ञानिक सिद्धान्त- पूर्व में निर्मित कई वैज्ञानिक सिद्धान्त भी उपकल्पनाओं के स्रोत हो सकते हैं। पूर्व में वैज्ञानिक आधार पर प्रचलित उपकल्पनाओं का परीक्षण करने पर अनुसंधानकर्ता नवीन सामान्यीकरण को जन्म देते हैं, जो नई उपकल्पनाओं को जन्म देते हैं। उदाहरण के लिए, मर्टन ने प्रकार्यवादी सिद्धान्त में यह निष्कर्ष दिया कि सामाजिक संरचना की सभी इकाइयाँ सदैव उपयोगी ही नहीं होतीं बल्कि इनके कुछ अकार्य एवं दुष्प्रकार्य भी हो सकते हैं।

4. समरूपतायें- जब कभी भी दो दशाओं के बीच कुछ समानतायें दिखायी देती हैं तो उनके आधार पर कुछ नयी उपकल्पनाओं की रचना करना भी संभव हो जाता है। उदाहरण के लिये, मानव एवं पशु जीवन में अनेक समानतायें पायी जाती हैं। जब दो व्यवहारों में पाई जाने वाली समानता के कारणों का पता लगाया जाता है तो इससे नवीन उपकल्पना का जन्म होता है।

5. अनुसंधान एवं साहित्य- विभिन्न समाजविज्ञानों में समय-समय पर होने वाले अनुसंधान कार्य और उनसे प्राप्त होने वाले निष्कर्ष एवं सिद्धान्त भी अनेक उपकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं।

6. वैयक्तिक अन्र्दृष्टि- अनुसंधानर्ता अपनी व्यक्तिगत समझ चिन्तन एवं विचार शक्ति, विवेकशीलता, निजी अनुभव के आधार पर वे किसी समस्या के मूल कारणों को समझ कर उससे सम्बन्धित उपकल्पना का निर्माण कर सकते हैं।

6.6 उपकल्पना की सीमायें

सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना के महत्व को देखते हुए यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह सर्वथा दोषरहित विधि है तथा कोई भी उपकल्पना वैज्ञानिक अध्ययन का आधार बन सकती है। सावधानीपूर्वक बनायी गयी उपकल्पना जहां एक ओर वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग-निर्देशन करती हैं, वहीं एक दोषपूर्ण

अथवा भ्रमपूर्ण उपकल्पना अध्ययन के रास्ते में अनेक बाधायें भी उत्पन्न कर सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि उपकल्पना निर्माण की भी कुछ सीमायें हैं जिनको ध्यान में रखकर इसके दोषों से बचा जा सकता है।

(1) उपकल्पना की सबसे बड़ी सीमा अथवा दोष स्वयं अनुसंधानकर्ता की असावधानी है। एक ओर अनुसंधानकर्ता अक्सर अपनी भावनाओं अथवा पूर्वाग्रहों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण कर लेता है, वहीं दूसरी ओर अपनी उपकल्पना में उसका विश्वास इतना अटूट होता है कि वह उससे हटकर तथ्यों को देखना और समझना नहीं चाहता। इसके फलस्वरूप एक विशेष उपकल्पना पर आधारित सम्पूर्ण अध्ययन अवैज्ञानिक हो जाता है। साधारणतया अनेक अनुसंधानकर्ता अपनी परिकल्पना को प्रमाणित करना और प्रतिष्ठा का विषय मान लेते हैं जो अत्यधिक दोषपूर्ण मनोवृत्ति है।

(2) उपकल्पना की दूसरी सीमा स्वयं सामाजिक अध्ययनों से सम्बन्धित है। सामाजिक घटनायें अत्यधिक जटिल और परिवर्तनशील होती हैं। इस स्थिति में विषय से सम्बन्धित विस्तृत सूचनायें एकत्रित करने से पहले ही अपने मन में कोई सामान्य अनुमान लगा लेना बहुत कठिन होता है। आरम्भिक अनुमान अक्सर गलत उपकल्पनाओं के लिए उत्तरदायी होते हैं।

(3) उपकल्पना के निर्माण में सांस्कृतिक विशेषताओं का भी बहुत महत्व होता है। वर्तमान स्थिति यह है कि आज विभिन्न संस्कृतियों के बीच इतना अधिक आदान-प्रदान हो रहा है कि किसी भी समाज की संस्कृति का रूप विशुद्ध नहीं है। इसके फलस्वरूप यदि किसी सांस्कृतिक विशेषता को ही उपकल्पना का स्त्रोत मान लिया जाता है तो अक्सर इसके दोषपूर्ण होने की संभावना हो जाती है।

(4) उपकल्पना के निर्माण का एक दूसरा प्रमुख स्त्रोत प्रचलित सिद्धान्त होते हैं। साधारणतया किसी सिद्धान्त के आधार पर एक उपकल्पना का निर्माण तो कर लिया जाता है लेकिन अक्सर यह नहीं देखा जाता कि सम्बन्धित अध्ययन के लिए वह सिद्धान्त कितना अधिक व्यावहारिक अथवा उपयोगी है। इसके फलस्वरूप उपकल्पना अध्ययनकर्ता को दिशा-निर्देश देने के स्थान पर उसे अनेक भ्रमपूर्ण परिस्थितियां डाल देती है।

(5) उपकल्पना की एक महत्वपूर्ण सीमा पूर्वगामी की प्रकृति से सम्बन्धित है। साधारणतया उपकल्पना का निर्माण किसी पूर्वगामी सर्वेक्षण अथवा सामान्य अवलोकन की सहायता से किया जाता है। कठिनाई यह है कि शीघ्रता में किये गये पूर्वगामी सर्वेक्षण के द्वारा अनुसंधानकर्ता को उत्तरदाताओं से अक्सर सही सूचनायें प्राप्त नहीं हो पातीं। इस स्तर पर सूचनाओं की सत्यता को देख सकना भी बहुत कठिन होता है। इसके फलस्वरूप उन सूचनाओं के आधार पर बनायी गयी उपकल्पना भी दोषपूर्ण हो जाती है।

कार्यकारी उपकल्पना के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह सच है कि एक दोषपूर्ण उपकल्पना सम्पूर्ण अध्ययन को अवैज्ञानिक बना सकती है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना के

निर्माण से ही बचने का प्रयास किया जाना चाहिए। उपकल्पना की सीमायें केवल इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं कि उपकल्पना का निर्माण अत्यधिक सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना वह महत्वपूर्ण आधार है जो अध्ययनकर्ता पर नियन्त्रण रखकर उसे अध्ययन की सही दिशा दे सकता है।

6.7 सार-संक्षेप

उपकल्पना किसी विषय से सम्बन्धित एक सामान्य अनुमान अथवा विचार है जिसके संदर्भ में ही पूरा अध्ययन किया जाता है। उपकल्पना शोधकार्य में अध्ययनकर्ता का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ इधर-उधर भटकने से रोकने का कार्य करती है। उपकल्पना उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त करने तथा पूर्व निष्कर्षों के सत्यापन करने में सहायता प्रदान करती है।

6.8 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. उपकल्पना किसी शोध समस्या से सम्बन्धित एक सामान्य पूर्वानुमान अथवा विचार है जिसके संदर्भ में ही सम्पूर्ण शोध कार्य किया जाता है। प्रारम्भ में उपकल्पना शोधार्थी का दिशा-निर्देश करती है एवं अध्ययनकर्ता को इधर-उधर भटकने से रोकती है तथा अन्त में यह उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत करने तथा पूर्व-निष्कर्षों का सत्यापन करने में सहायता करती है।

2. विभिन्न विद्वानों ने उपकल्पना की प्रकृति को भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है। लुण्डबर्ग (ळण्।ण् स्नदकइमतह) के अनुसार, 'एक प्राक्कल्पना एक कामचलाऊ सामान्यीकरण है, जिसकी सत्यता की परीक्षा अभी बाकी है।'

गुडे एवं हाट (Goode and Hatt) के अनुसार, 'प्राक्कल्पना एक ऐसी मान्यता होती है जिसकी सत्यता सिद्ध करने के लिए उसका परीक्षण किया जा सकता है।'

पी0बी0 यंग के अनुसार, 'एक कार्यवाहक विचार जो उपयोगी खोज का आधार बनता है, कार्यवाहक प्राक्कल्पना माना जाता है।'

पीटर एच0मन0 के शब्दों में, 'प्राक्कल्पना एक कामचलाऊ अनुमान है।'

3. उपकल्पना की आवश्यकताएँ निम्न हैं:

i. अनुसंधान के उद्देश्य का निर्धारण: उपकल्पना हमारे शोध या अनुसंधान कार्य के उद्देश्य को इस प्रकार निर्धारित करती है कि हमें किसकी खोज करनी है, कौन-से तथ्य संकलित करने हैं, कौन-से नहीं? कौन-से तथ्य अनुसंधान के लिये उपयोगी और सार्थक हैं, कौन-से निरर्थक?

ii. अनुसंधान की दिशा का निर्धारण: उपकल्पना शोधार्थी के लिये पथ प्रदर्शन का कार्य करती है तथा इधर-उधर भटकाव से रोकने का कार्य करती है। पी0वी0 यंग के अनुसार, 'उपकल्पना से अनुसंधानकर्ता ऐसे तथ्यों को एकत्रित करने से बच जाता है जो बाद में अध्ययन विषय के लिए व्यर्थ सिद्ध होते हैं।'

iii. उपयोगी तथ्यों के संकलन में सहायक: उपकल्पना ही हमें समस्या से सम्बन्धित उपयुक्त एवं सार्थक तथा आवश्यक तथ्यों को संकलित करने के लिए प्रेरणा का कार्य करती है। एम0 एच0 गोपाल के अनुसार, 'प्राक्कल्पना के बिना अध्ययनकर्ता अनावश्यक यहां तक कि व्यर्थ सामग्री भी एकत्रित कर सकता है और वास्तव में महत्वपूर्ण तथा लाभकारी तथ्य उसकी दृष्टि से छूट सकते हैं।'

iv. अनुसंधान कार्य में निश्चितता लाना: उपकल्पना के माध्यम से ही अनुसंधान कार्य को सुनिश्चित दिशा प्रदान की जा सकती है। अध्ययनकर्ता को यह पता रहता है कि उसे कब, कहां और कौन-से तथ्य या सूचनायें संकलित करनी हैं। इससे अध्ययनकर्ता व्यर्थ के परिश्रम, समय के अपव्यय, अनावश्यक सूचनाओं के संकलन एवं अव्यवस्था से बच जाता है।

v. तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में सहायक: उपकल्पना के मार्गदर्शन में हम अध्ययन के दौरान विभिन्न विधियों एवं तकनीकियों के माध्यम से तथ्यों एवं सूचनाओं का संकलन करते हैं तथा अपनी उपकल्पना की सत्यता की जांच की करते हैं। तथ्यों के आधार पर यदि उपकल्पना से सम्बन्धित निष्कर्ष सही प्रमाणित होता है तो उसे एक सामान्य नियम के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि उपकल्पना का सावधानी से निर्माण किया जाये तो यह उपयुक्त और तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में अत्यधिक सहायक होती है।

vi. सिद्धान्तों के निर्माण में सहायक: सामाजिक अनुसंधान का अन्तिम उद्देश्य कार्य-कारण सम्बन्धों को ज्ञात कर सिद्धान्तों का निर्माण करना होता है। इस कार्य में उपकल्पना की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है, उपकल्पना की सहायता से जो सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं वे नये सिद्धान्तों के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं।

6.9 अभ्यास-प्रश्न

1. उपकल्पना की परिभाषा दीजिए तथा उपकल्पना की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

2. उपकल्पना के महत्व अथवा उपयोगिता की विवेचना कीजिए।

3. सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना की भूमिका की व्याख्या कीजिए।

4. उपकल्पना का क्या अथ है? उपकल्पना के प्रमुख स्रोतों की व्याख्या कीजिए।

6.10 पारिभाषिक शब्दावली

उपकल्पना- अनुसंधान या शोध के संदर्भ में पूर्वानुमान या विचार।

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. Lundberg, G.A. (1940), Social Research, Longman, New York, p.9.
2. Goode, W.I. and Hatt, P.K. (1952). Method of Social Researches, McGrawHill, New York, p. 56.
3. Young, P.V. (1953). Scientific Social Surveys and Research Englewood Cliff, Prentice Hall, N. J. 96.
4. Jahoda and Cook. Research Method in Social Research.
5. Goode, W.J. (1953). op. cit, p. 99.
6. Gopal, M.H., An Introduction to Research in Social Science, p. 117.
7. Lundberg, G.A. (1942). Social Research, Longman, New York, p. 9.

इकाई-7 निदर्शन

(Sampling)

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 अध्ययन के उद्देश्य

7.2 निदर्शन का अर्थ

7.3 निदर्शन का चयन

7.4 निदर्शन की उपयोगिता

7.5 निदर्शन की सीमाएँ

7.6 निदर्शन की पद्धतियाँ एवं प्रकार

7.7 सम्भावित निदर्शन की पद्धति के रूप में दैव निदर्शन

7.8 असम्भावित निदर्शन

7.9 निदर्शन की समस्याएँ

7.10 सार-संक्षेप

7.11 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.12 अभ्यास-प्रश्न

7.13 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्रीय अनुसन्धान की विषय-वस्तु व्यक्ति, परिवार, समूह, संस्थाएँ एवं संगठन इत्यादि होते हैं। अनुसन्धान की समस्या का निर्माण कर लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनाओं

का निर्माण करता है तथा फिर सामग्री (आँकड़े) एकत्रित करने की उपयुक्त प्रविधि (तकनीक) का निर्माण करके सामग्री संकलित करने का कार्य प्रारम्भ करता है। सामग्री संकलित करने से पहले उसे यह निर्णय लेना पड़ता है। कि अध्ययन की इकाई क्या होगी? वह कितनी इकाइयों अथवा सूचनादाताओं का अध्ययन हेतु चयन करेगा? इस सन्दर्भ में उसके सामने दो विकल्प हो सकते हैं- प्रथम, समग्र (Universe) की सम्पूर्ण इकाइयों का अध्ययन करना तथा द्वितीय, समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाले एक भाग का अध्ययन करना। प्रथम विकल्प द्वारा किया जाने वाला अध्ययन संगणना या जनगणना (Census) अध्ययन कहलाता है, जबकि द्वितीय विकल्प द्वारा किया जाने वाला अध्ययन निदर्शन (Sampling) कहलाता है। समग्र अथवा सम्पूर्ण इकाइयों में से प्रतिनिधि इकाइयों के चयन की प्रक्रिया को निदर्शन पद्धति या तकनीक (Sampling technique) कहते हैं।

7.0 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- निदर्शन के अर्थ, प्रकृति एवं अनिवार्य लक्षणों से परिचित हो सकेंगे।
- निदर्शन की उपयोगिता एवं सीमा तथा प्रकारों के बारे में जान सकेगें।

7.2 निदर्शन का अर्थ

निदर्शन समग्र का एक छोटा भाग या अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा जिसमें समग्र की मौलिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। दैनिक जीवन में हम निदर्शन का प्रयोग करते हैं, जबकि हम चावल, गेहूँ या कोई अन्य वस्तु खरीदने बाजार जाते हैं तो पहले इनका नमूना देखते हैं। उस नमूने से ही हम पूरी बोरी के चावल, गेहूँ या अन्य वस्तु की गुणवत्ता (Quality) का अनुमान लगा लेते हैं। यह नमूना ही प्रतिदर्श या निदर्शन कहलाता है। अतः निदर्शन वह तकनीक है जिसके द्वारा समग्र के केवल एक अंश का निरीक्षण करके सम्पूर्ण समग्र के बारे में जाना जा सकता है। फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने समाजशास्त्र के विश्वकोश में निदर्शन को इन शब्दों में परिभाषित किया है, "निदर्शन (सांख्यिकीय) वह प्रक्रिया अथवा पद्धति है जिसके द्वारा एक विशिष्ट समग्र में से निश्चित संख्या में व्यक्तियों, विषयों अथवा निरीक्षणों को निकाला जाता है।" उनके अनुसार एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, विषयों अथवा निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया अथवा पद्धति अथवा अध्ययन हेतु एक समग्र समूह में से उसके एक भाग का चयन करना निदर्शन तकनीक (Sampling techniques) कहलाती है।

गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, "एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी विस्तृत समूह का एक अपेक्षाकृत लघु प्रतिनिधि है।" यंग (Young) के शब्दों में, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह या योग का अति लघु चित्र है। जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।" यंग (Yang) के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधिक भाग है। यह समूह 'जनसंख्या', 'समग्र' अथवा 'पूर्ति-स्रोत' के नाम से जाना जाता है।"

अतः स्पष्ट है कि निदर्शन किसी विशाल समूह, समग्र या योग का एक अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधि है अर्थात् अंश की भी वही विशेषताएँ हैं जोकि सम्पूर्ण समूह या समग्र की हैं। अध्ययन हेतु सम्पूर्ण इकाइयों में से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों के चयन करने की तकनीक को निदर्शन तकनीक कहा जाता है। इस सन्दर्भ में बोगार्डस (Bogardus) ने लिखा है कि "निदर्शन तकनीक एक पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चयन करना है।" निदर्शन तकनीक केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान में ही नहीं, अपितु दैनिक जीवन में भी बहुधा प्रयोग में लाई जाती है। टिप्पेट (Tippett) ने लिखा है कि, "बृहत् समूह में से एक छोटा भाग लेने की प्रथा सामान्यतः भली प्रकार समझी एवं विस्तृत रूप में प्रयोग की जाती है। गृहस्वामिनी दुकान पर पनीर खरीदने से पहले उसका एक टुकड़ा एक नमूने के रूप में लेती है तथा एक रुई धुनने वाला व्यक्ति केवल रुई के एक टुकड़े को देखकर ही उस रुई की पूरी गाँठ को खरीद लेता है।" इसी भाँति, स्नेडेकोर एवं कोचरन (Snedecor and Cochran) ने लिखा है कि "केवल कुछ पौंड कोयले की जाँच के आधार पर पूरी गाड़ी कोयला या तो स्वीकृत कर लिया जाता है या अस्वीकृत कर दिया जाता है। केवल एक बूँद रक्त की जाँच करके डॉक्टर किसी बीमार व्यक्ति के रक्त के बारे में अनुमान लगा लेता है। निदर्शन ऐसे साधन हैं जिनसे केवल कुछ इकाइयों का निरीक्षण करके विशाल इकाइयों का अनुमान लगाया जा सकता है।"

स्वप्रगति परीक्षण

1. निदर्शन का आशय स्पष्ट किजिए।

.....

.....

.....

2. निदर्शन की कतिपय परिभाषाएं देते हुए उसका स्वरूप स्पष्ट किजिए।

.....

.....

.....

7.3 निदर्शन का चयन

निदर्शन की कार्यप्रणाली यद्यपि एक सरल प्रक्रिया लगती है परन्तु व्यवहार में यह एक कठिन कार्य है। अनुसन्धान की समस्या का निरूपण तथा उपकल्पनाओं का निर्माण कर लेने के पश्चात् तथा उपकल्पनाओं से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण चरों को चुन लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता के सामने निदर्शन की समस्या आती है। इसके लिए पहले यह निश्चित कर लेना अनिवार्य है कि उसे किस जनसमूह या समग्र का अध्ययन करना है तथा समग्र के बारे में थोड़ी-बहुत प्रारम्भिक जानकारी होना अनिवार्य है। समग्र के निर्धारण के पश्चात् उसे यह निर्णय लेना पड़ता है कि अध्ययन कि इकाई क्या होगी। इकाई गाँव, नगर, सम्पूर्ण समूह, परिवार या अन्य कोई समिति अथवा व्यक्ति हो सकती है। इकाईयों का चुनाव स्पष्ट निश्चित एवं विषय के अनुरूप किया जाना चाहिए। इकाईयाँ तय कर लेने के पश्चात् स्त्रोत सूची का होना अनिवार्य है जैसे कि मतदाता सूची, टेलीफोन डायरेक्टी, अध्यापक सुचियाँ या किसी अन्य प्रकार की सूची जिसमें से इकाईयों का चयन किया जा सके। इसके पश्चात् अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के आकार (अर्थात यह समग्र का कितना अंश होना चाहिए) और निदर्शन तकनीक (अर्थात किस पद्धति द्वारा इकाइयों का चयन किया जाना है) के बारे में निर्णय लेना पड़ता है। एक प्रतिनिधिक निदर्शन के लिए आकार का पर्याप्त होना और चयन की उपयुक्त पद्धति का अपनाया जाना अनिवार्य है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निदर्शन के चयन हेतु कुछ निर्धारित चरण हैं जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं:

1. समग्र को निर्धारित करना - निदर्शन के चयन का प्रथम चरण उन सभी इकाइयो को निर्धारित करना है जो समग्र का निर्माण करती हैं। यदि अध्ययन किसी विशिष समुदाय तक सीमित है तो समग्र का निर्धारण सरल है, अर्थात् उस समुदाय में रहने वाले सभी व्यक्ति समग्र का निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ, किसी गाँव, विद्यालय, महाविद्यालय, मोहल्ले के अध्ययन में समग्र का निर्धारण सरलता से किया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि समग्र अनिश्चित है तो इसकी समस्त इकाइयों का निर्धारण करना कठिन होता है। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी नगर में नियमित रूप से सिनेमा देखने वालों अथवा मादक द्रव्य का व्यसन करने वालों का अध्ययन करना है तो सम्पूर्ण इकाइयों का निर्धारण करना कठिन होता है। कोई भी यह वास्तविक अनुमान नहीं लगा सकता है कि कितने लोग हैं जो नियमित रूप से सिनेमा देखते हैं अथवा मादक द्रव्य के व्यसन के आदी हैं। प्रथम प्रकार के समग्र को वास्तविक समग्र तथा द्वितीय प्रकार के समग्र को काल्पनिक समग्र भी कहा जाता है। काल्पनिक समग्र में निदर्शन का चयन काल्पनिक रूप में ही पर्याप्त संख्या में होना अनिवार्य है।

2. निदर्शन की इकाई को निर्धारित करना - समग्र को निर्धारित करने के पश्चात् दूसरा चरण निदर्शन की इकाई का निर्धारण करना है। इस चरण में हमें यह निश्चित करना होता है कि कौन-सी इकाइयाँ ऐसी हो सकती हैं जिनको समग्र का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। निदर्शन की इकाई व्यक्ति होगा या कोई परिवार,

मोहल्ला, क्रीडा-समूह, स्कूल, व्यावसायिक समूह, चर्च अथवा क्लब इत्यादि, इसका निर्धारण इस चरण में किया जाता है। इस चरण में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि अध्ययन की इकाई समस्या की प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि संयुक्त परिवार का अध्ययन किया जा रहा है तो अध्ययन की इकाई संयुक्त परिवार ही होंगे। यदि किसी विद्यालय की छात्राओं का अध्ययन किया जा रहा है तो अध्ययन की इकाई वही छात्राएँ होंगी जो किसी निर्धारित स्तर के विद्यालय में पढ़ रही है। इकाई के निर्धारण में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए तथा साथ ही ऐसी इकाई का चयन किया जाना चाहिए जिसके साथ सुविधाजनक रूप में सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

3. इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना - निदर्शन के चयन का तीसरा चरण इकाईयों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना है। यदि सम्पूर्ण इकाईयों की कोई सूची उपलब्ध है तो इस चरण में उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इकाईयों की सूची को बहुधा 'साधन सूची' या 'स्रोत सूची' भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हमारे अध्ययन की इकाई मतदाता है तो मतदाता सूची स्रोत-सूची हो सकती है। यदि अध्ययन की इकाई टेलीफोन उपभोक्ता है तो स्रोत-सूची टेलीफोन डाइरेक्टरी हो सकती है। इसी भाँति, यदि अध्ययन की इकाई किसी विद्यालय के छात्र हैं तो उन छात्रों की कक्षा-वार सूची स्रोत-सूची हो सकती है। यह तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि जिस भी स्रोत-सूची का उपयोग किया जाए उसमें सम्पूर्ण इकाईयों का विवरण होना चाहिए। सूची इतनी पुरानी भी नहीं होनी चाहिए कि उसमें से जिन इकाईयों का चयन किया जाए वे उपलब्ध ही न हों। यदि इस प्रकार की विश्वसनीय सूची उपलब्ध हो जाती है तो इकाईयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना तथा उपयुक्त निदर्शन करना अपेक्षाकृत सरल होता है। किसी विश्वसनीय सूची के अभाव में इकाईयों की जानकारी होना कठिन कार्य बन जाता है।

4. निदर्शन के आकार को निर्धारित करना - इकाईयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् निदर्शन के चयन का चौथा चरण निदर्शन के आकार का निर्धारण करना है। निदर्शन का आकार निर्धारित करने का कोई सांख्यिकीय मापदण्ड नहीं है। फिर भी, इसका आकार न तो अत्यधिक बड़ा होना चाहिए और न ही अत्यधिक छोटा होना चाहिए। निदर्शन का कितना आकार विश्वसनीय एवं प्रामाणिक हो सकता है, इसी आधार पर निदर्शन किया जाना चाहिए। निदर्शन का आकार समग्र की प्रकृति, अनुसन्धान की प्रकृति, इकाईयों की प्रकृति, अध्ययन पद्धति एवं तकनीक, निदर्शन-पद्धति, उपलब्ध साधन इत्यादि को सामने रखकर निर्धारित किया जाना आवश्यक है।

5. निदर्शन की उपयुक्त पद्धति का चयन करना - निदर्शन हेतु अनेक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इस चरण तक पहुँचते-पहुँचते समग्र की प्रकृति, निदर्शन की इकाईयों की प्रकृति इकाईयों की सूची की उपलब्धता तथा निदर्शन का आकार स्पष्ट हो जाता है। इसी को सामने रखकर यह निर्णय लिया जाता है

कि कौन-सी ऐसी उपयुक्त निदर्शन पद्धति होगी जो सही अर्थ में इकाईयों का प्रतिनिधित्वपूर्ण चयन करने में सहायक है। उसी पद्धति को इकाईयों के चयन हेतु अपनाया जाता है।

6. निदर्शन का चयन करना - यह निदर्शन के चयन का अन्तिम चरण है। उपयुक्त निदर्शन पद्धति द्वारा निर्धारित संख्या में इकाईयों का चयन किया जाता है। यही चयनित इकाईयाँ निदर्शन कहलाती हैं तथा इन्हीं को अध्ययन की इकाईयाँ कहा जाता है। उपयुक्त निदर्शन पद्धति द्वारा विश्वसनीय, प्रामाणिक तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन करना ही सम्पूर्ण निदर्शन प्रक्रिया का वास्तविक उद्देश्य है।

7.4 निदर्शन की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन एक महत्त्वपूर्ण चरण है। इसकी निरन्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता इसकी उपयोगिता की द्योतक है। आधुनिक विशाल एवं जटिल समुदायों में जनगणना पद्धति द्वारा अध्ययन करना असुविधाजनक होता है। इसीलिए निदर्शन का प्रयोग अधिक होने लगा है। इसकी उपयोगिता को इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. समय की बचत -निदर्शन के प्रयोग द्वारा अनुसन्धानकर्ता के समय की बचत होती है क्योंकि इसमें सीमित इकाईयों का अध्ययन किया जाता है। जो अनुसन्धान व्यक्तिगत प्रकृति के होते हैं, उन्हें एक निश्चित अध्ययन में पूरा करना आवश्यक होता है। यह तभी सम्भव है जबकि निदर्शन द्वारा इकाईयों की संख्या सीमित रखी जाए।

2. धन की बचत - निदर्शन में धन की बचत होती है। जनगणना केवल सरकार ही करा सकती है क्योकि उसके पास अपार साधन होते हैं। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित अनुसन्धानों में यदि सभी इकाईयों का अध्ययन करना पड़े तो उसके लिए न केवल समय अधिक लगेगा, अपितु धन भी अधिक खर्च करना पड़ेगा। कम-से-कम खर्च करके अधिक-से-अधिक विश्वसनीय सामग्री को संकलित करना केवल निदर्शन द्वारा ही सम्भव है।

3. श्रम एवं शक्ति की बचत - निदर्शन में समय व धन कम लगने के कारण जनगणना पद्धति की अपेक्षा श्रम एवं शक्ति भी कम लगती है। इकाईयाँ कम होने के कारण सामग्री या आँकड़ों का संकलन केवल एक अनुसन्धानकर्ता अथवा बहुत कम प्रशिक्षित अनुसन्धानकर्ता कर सकते हैं।

4. विस्तृत एवं गहन अध्ययन की सम्भावना - निदर्शन के द्वारा विस्तृत एवं गहन। अध्ययन सम्भव हो जाता है। सीमित इकाईयों के अध्ययन के कारण अनुसन्धानकर्ता विस्तृत क्षेत्र में अध्ययन कर सकता है और साथ ही सूचनाओं के संकलन में गहनता ला सकता है। यदि सूचनादाता बहुत बड़े क्षेत्र में बिखरे हुए

हैं तथा हमें उन सभी से सूचना संकलित करनी है तो यह काफी असुविधाजनक हो सकती है। निदर्शन हमें इस असुविधा से बचाकर विस्तृत अध्ययन की सुविधा प्रदान करता है।

5. निष्कर्षों की परिशुद्धता - यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करता है तो इससे न केवल विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं, अपितु यथार्थ निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं। यदि निदर्शन का चयन ठीक प्रकार से किया गया है तो इसके आधार पर निकाले जाने वाले निष्कर्ष जनगणना पद्धति की सहायता से किए गए अध्ययनों के निष्कर्षों से भी अधिक यथार्थ हो सकते हैं। अमेरिका एवं पश्चिमी समाजों में चुनाव से पूर्व होने वाले निदर्शन सर्वेक्षण के परिणाम चुनाव के परिणामों से काफी सीमा तक मिलते-जुलते होते हैं।

6. वैज्ञानिकता - सही आकार एवं उपयुक्त पद्धति द्वारा चयन किए गए निदर्शन में वैज्ञानिकता का समावेश होता है। इसीलिए निदर्शन के निष्कर्षों को सम्पूर्ण इकाईयों पर लागू किया जा सकता है।

7. प्रशासनिक सुविधा - निदर्शन में प्रशासनिक कठिनाइयाँ भी कम उठानी पड़ती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक तो इकाईयों की संख्या सीमित होती है जिसके लिए कम संख्या में कार्यकर्ताओं को नियुक्त करना पड़ता है तो दूसरा कम लोगों से सूचना एकत्रित करने में कम परेशानी होती है। अपनी सुविधानुसार सभी सूचनादाताओं से सूचना एकत्रित करना कठिन होता है। इसलिए निदर्शन का छोटा आकार सूचनादाताओं की सुविधाओं को भी ध्यान में रखने में उपयोगी सिद्ध होता है।

निदर्शन की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए गुड एवं हैट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि "इस प्रकार, निदर्शन का प्रयोग किसी वैज्ञानिक कार्यकर्ता के समय की बचत कर उसके कार्य को अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करता है। यह संकलित विशाल सामग्री के विश्लेषण हेतु किसी एक दृष्टिकोण के आधार पर अधिक लगाने की अपेक्षा उस सामग्री के एक भाग को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने में सहायता प्रदान करता है अथवा अन्य शब्दों में कुछ मामलों का अधिक गहन अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है।" अतः स्पष्ट है कि यदि निदर्शन का चयन सावधानीपूर्वक किया गया है तो यह समग्र के बारे में ऐसे निष्कर्ष निकालने में सहायता प्रदान करता है जो बिल्कुल सत्य होते हैं।

इसलिए यह भी कहा जाता है कि निदर्शन त्रुटि के गणितीय सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण निदर्शन में सूक्ष्मता तथा पूर्ण शुद्धता की धारणा प्रारम्भ से प्रमुख होती है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. निदर्शन समय एवं धन की बचत में किस प्रकार सहायक है?

.....

.....

.....

7.5 निदर्शन की सीमाएँ

यद्यपि निदर्शन सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्त्वपूर्ण चरण है तथा इसके बिना अनुसन्धान की कल्पना करना सम्भव नहीं है. फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएँ है जिनके कारण इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना पड़ता है। निदर्शन की प्रमुख सीमाएँ निम्न प्रकार है:

1. पक्षपात एवं अभिनति की अधिक सम्भावना - निदर्शन के चयन में पक्षपात एवं अभिनति की सम्भावना अधिक होती है। न चाहते हुए भी किसी-न-किसी रूप में निदर्शन में पक्षपात एवं अभिनति का समावेश हो जाता है। इसका कारण अनुसन्धानकर्ता के अपने पूर्वाग्रह, मूल्य अथवा प्राथमिकताएँ होती हैं। इन्हें निदर्शन के समय अपने से अलग करना एक कठिन कार्य है।

2. विशेष ज्ञान की आवश्यकता - किसी भी जनसंख्या में से उसके प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन जितना सरल लगता है, वह उतना ही कठिन होता है। वस्तुतः निदर्शन के लिए विशेष ज्ञान, सूझ-बूझ, अनुभव तथा अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है। यह सभी गुण यदि अनुसन्धानकर्ता में नहीं हैं तो उससे प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन की आशा करना निरर्थक है। अनुसन्धानकर्ता के लिए ऐसे विशेषज्ञ ढूँढना भी कठिन कार्य है जो जनसंख्या से भली-भाँति परिचित हों।

3. प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन में कठिनाई - यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधि नहीं है, तो निष्कर्ष भी कम शुद्ध होते हैं। साथ ही, जनसंख्या के लक्षणों का ज्ञान न होने की स्थिति में निदर्शन के चयन हेतु विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। जिन परिस्थितियों में जनसंख्या में अत्यधिक विषमता पाई जाती है उनमें प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन करना एक चुनौती होता है। इसके लिए जनसंख्या का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि सभी वर्गों एवं समूहों को सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व मिल सके। सामान्यतः इस ज्ञान के अभाव में निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं होता।

4. उच्चतम परिशुद्धता वाले अध्ययनों में अनुपयोगी - उच्चतम परिशुद्धता वाले अध्ययनों में निदर्शन उपयोगी नहीं होता है। इसका प्रमुख कारण निदर्शन के चयन में पक्षपात एवं अभिनति होना है। यह सही है कि अमेरिका, पश्चिमी यूरोप तथा कई बार भारत में भी चुनाव-पूर्व होने वाले निदर्शन सर्वेक्षण के निष्कर्ष चुनाव के पश्चात् घोषित परिणामों से मिलते-जुलते होते हैं, फिर भी बहुधा यह निष्कर्ष वास्तविक परिणामों

से मेल नहीं खाते। इसीलिए जनता इनसे भ्रमित हो सकती है। परिशुद्ध न होने के कारण ही भारत में चुनाव पूर्व ऐसे निदर्शन सर्वेक्षण न करने की बार-बार माँग की जाती है।

5. निदर्शन पद्धति की असम्भवता - कुछ परिस्थितियों में निदर्शन को अपनाना प्रायः असम्भव होता है। यदि कोई कम इकाईयों का गहन अध्ययन करना चाहता है तो ऐसे अध्ययनों में निदर्शन सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में उसे सभी इकाईयों को अपने अध्ययन में सम्मिलित करना पड़ता है। इसी भाँति, अत्यधिक विषमता वाली जनसंख्या के अध्ययन में निदर्शन द्वारा किया गया अध्ययन यथार्थ निष्कर्ष निकालने में सहायक नहीं होता है।

6. भ्रामक परिणामों की आशंका - निदर्शन के चयन में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। यदि यह सावधानी न रखी जाए तो निदर्शन से प्राप्त निष्कर्ष भामक भी हो सकते हैं। इसीलिए निदर्शन पर आधारित निष्कर्षों पर कभी भी एकाएक पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता। कई बार तो निदर्शन द्वारा निकाले गए परिणाम वास्तविक स्थिति के बिल्कुल विपरीत होते हैं।

7. निदर्शन की इकाईयों की उपलब्धता सम्बन्धी समस्या - किसी भी अनुसन्धान में निदर्शन द्वारा जिन इकाईयों का चयन किया जाता है, उन्हीं इकाईयों से सामग्री संकलित करनी पड़ती है। कई बार ऐसा होता है कि उन इकाईयों के साथ सम्पर्क करने में अनेक समस्याएँ सामने आती हैं। उदाहरणार्थ, निवासस्थान बदल लेने, परदा प्रथा के प्रचलन, सूचनादाता की अत्यधिक उच्च सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति, अनेक सूचनादाताओं का अनुसन्धान कार्य में असहयोग आदि से उन्हीं इकाईयों पर कायम रहना कठिन हो जाता है जिनका चयन निदर्शन द्वारा किया गया है। यदि इन इकाईयों के स्थान पर दूसरी इकाईयों का चयन किया जाता है तो निदर्शन पूरी तरह से प्रभावित हो सकता है।

निदर्शन की सीमाओं को सामने रखते हुए अनेक विद्वानों ने यह मत प्रस्तुत किया है कि निदर्शन औषधियों (दवाइयों) की भाँति होते हैं। यदि उनका चयन असावधानी से अथवा उनके प्रभावों के पर्याप्त ज्ञान के बिना किया जाता है, तो वे हानिकारक भी हो सकती हैं। निदर्शन की उपर्युक्त सीमाओं से यह भी स्पष्ट है कि यदि निदर्शन के चयन में सावधानी रखी जाए तो एक विश्वसनीय निदर्शन का चयन इसकी सीमाओं को कम कर सकता है। यदि अध्ययन-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है, प्रशिक्षित अनुसन्धानकर्ताओं की कमी है, समय एवं धन का अभाव है तथा निदर्शन से ही हमारा काम चल सकता है तो निदर्शन को अध्ययन का आधार बनाना सर्वाधिक उचित है। उपर्युक्त सीमाएँ किसी भी रूप में निदर्शन के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करती है।

स्वप्रगति परीक्षण

4. उच्चतम परिशुद्धता वाले अध्ययनों में निदर्शन उपयोगी नही है क्यों?

.....

.....

.....

7.6 निदर्शन की पद्धतियाँ एवं प्रकार

निदर्शन पद्धति (तकनीक) का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा निदर्शन का चुनाव किया जाता है। निदर्शन की पद्धतियों के प्रयोग के आधर पर निदर्शन को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) सम्भावित निदर्शन तथा **(ii)** असम्भावित निदर्शन । प्रथम प्रकार के निदर्शन के इकाईयों का चयन समान सम्भावना के आधार पर किया जाता है। सामाजिक अनुसन्धान में मुख्य रूप से इसी प्रकार के निदर्शन को प्रयोग में लाया जाता है। दैव निदर्शन (Random sampling) इस प्रकार के निदर्शन का प्रमुख उदाहरण है। सम्भावित निदर्शन सांख्यिकीय निरन्तरता एवं सामान्य वितरण के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण अधिक वैज्ञानिक होता है। दूसरे प्रकार के निदर्शन अर्थात् असम्भावित निदर्शन में समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व नहीं दिया जाता अपितु अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधानुसार इकाईयों का चयन करता है। उद्देश्यपूर्ण एवं सुविधापूर्ण निदर्शन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस प्रकार की निदर्शन पद्धतियों में वैज्ञानिकता का अंश कम होता है।

7.7 सम्भावित निदर्शन की पद्धति के रूप में दैव निदर्शन

यह (सम्भावित) वह निदर्शन है जिसमें समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व दिया जाता है। वस्तुतः प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन हेतु अनुसन्धानकर्ता को स्वयं के पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा मिथ्या-झुकाव की सम्भावना को कम करने हेतु समग्र की सभी इकाईयों को चुने जाने का एक समान अवसर प्रदान करना पड़ता है। दैव निदर्शन (Random Sampling) सम्भावित निदर्शन का प्रमुख प्रकार है। दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की सम्भावना या संयोग (Chance) एक समान होता है। अतः यह निदर्शन पक्षपातरहित एवं समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है। गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, "दैव निदर्शन में समग्र की इकाईयों को इस प्रकार से क्रमबद्ध किया जाता है कि चुनाव प्रक्रिया समग्र की प्रत्येक इकाई को चयन का समान अवसर प्रदान करती है।" अतः दैव निदर्शन में समग्र की प्रत्येक इकाई को चयनित होने हेतु समान अवसर प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, इसमें

किसी इकाई का चयन किसी दूसरी इकाई के चयन की सम्भावना को किसी भी रूप में कम नहीं करता है। इस प्रकार का चुनाव दैवयोग से हुआ माना जाता है।

दैव निदर्शन में समग्र की इकाईयों का चयन संयोगिक आधार पर किया जाता है। इसमें किसी भी एक इकाई के चुने जाने का अवसर उतना ही रहता है जितना कि अन्य किसी इकाई के चुने जाने का। इसमें प्रत्येक इकाई चुने जाने हेतु स्वतन्त्र होती है तथा उसे चुने जाने का समान अवसर उपलब्ध किया जाता है। अन्य शब्दों में दैव निदर्शन में किसी भी इकाई को किसी प्रकार की प्राथमिकता, प्रमुखता अथवा अधिमान्यता नहीं दी जाती है। दैव निदर्शन को कई बार 'समानुपातिक निदर्शन' (Proportionate sampling) भी कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में वह वर्ग समग्र में विद्यमान है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज में पढ़ने वाले 5,000 छात्रों में से 70 प्रतिशत छात्र नगरीय पृष्ठभूमि तथा शेष 30 प्रतिशत छात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि के हैं तो इकाईयों को समान अवसर देने के सिद्धान्त के अनुसार निदर्शन में चयनित छात्रों का अनुपात भी लगभग इसी प्रकार का होना चाहिए। यदि थोड़ा-बहुत अन्तर भी है तो उसका अध्ययन के निष्कर्षों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

कई बार दैव निदर्शन को 'आकस्मिक निदर्शन' (Incidental sampling) मान लेने की भूल भी की जाती है। दोनों में कोई समानता नहीं है क्योंकि आकस्मिक निदर्शन में हमें जो इकाई सरलता से उपलब्ध होती है उसी का हम चयन कर लेते हैं। यह सम्भव है कि संयोग से आकस्मिक निदर्शन दैव निदर्शन भी हो, परन्तु सदैव ऐसा नहीं होता है। आकस्मिक निदर्शन में पक्षपात की सम्भावना सदैव बनी रहती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई छात्र पुस्तकालय में किसी पुस्तक का कोई पृष्ठ अनायास खोलता है तो उस पृष्ठ के खुलने की सम्भावना अधिक है जिसे अधिकतर छात्रों ने खोला एवं पढ़ा है।

दैव निदर्शन एक सरल पद्धति होने के साथ ही सम्भावित अशुद्धता का सरलता से पता लगाने में भी सहायता देती है। परन्तु दैव निदर्शन का प्रयोग तभी सम्भव है जबकि समग्र में से इकाईयों के चयन हेतु स्रोत-सूची उपलब्ध हो और इकाईयों में एकरूपता पाई जाती हो।

दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं:

(अ) सरल दैव निदर्शन

इस प्रकार के निदर्शन का प्रयोग सजातीय समग्र में से इकाईयों के चयन हेतु किया जाता है। इसमें इकाईयों का चयन अनेक प्रकार से किया जाता है। सामान्यतः सरल दैव निदर्शन में इकाईयों के चयन हेतु निम्नांकित पद्धतियाँ प्रयोग में लाई आती हैं:

(1) लाटरी पद्धति - यदि समग्र का आकार छोटा है तो सभी इकाईयों को एक से कागज की छोटी-छोटी पर्चियों पर लिखकर किसी ड्रम इत्यादि में डालकर हिलाया जाता है ताकि पर्चियाँ आपस में इस प्रकार

मिल जाएँ कि पक्षपात की कोई सम्भावना न रहे। फिर स्वयं अनुसन्धानकर्ता आँख बन्द करके एक-एक पर्ची निकालता है। जितना निदर्शन चाहिए उतनी पर्चियाँ एक-एक करके निकाली जाती हैं।

(2) कार्ड या टिकट पद्धति - लाटरी पद्धति की भाँति सरल दैव निदर्शन में इकाईयों के चयन हेतु कार्ड या टिकट पद्धति भी प्रयोग में लाई जाती है। कार्ड या टिकट पद्धति में इकाईयों के नम्बर या नाम एक समान आकार, रंग तथा मोटाई वाले कार्डों या टिकटों पर लिखे रहते हैं। इन कार्डो को एक बन्द कैन्टेनर या ड्रम डाल दिया जाता है। जिसके ढकने में एक छेद कर दिया जाता है। ताकि आवष्कयता अनुसार उस छेद से एक बार में एक बार कार्ड निकाल सकें तत्पष्चात उस ड्रम को हिलाकर ड्रम को उलटा कर उसमें से एक कार्ड निकाला जाता है। पहला कार्ड या टिकट निकालने के बाद ड्रम को निश्चित बार हिलाया जाता है जिससे शेष बचे कार्ड या टिकट पुनः संयोगिक हो जाएँ। तत्पश्चात् दूसरा कार्ड या टिकट निकाला जाता है। तीसरा कार्ड या टिकट निकालने से पहले ड्रम को पुनः निश्चित बार हिलाया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक निर्धारित संख्या में इकाईयों का चयन न हो जाए। इस पद्धति में कार्ड या टिकट निकालने का कार्य अनुसन्धानकर्ता द्वारा न कर किसी बच्चे या अन्य किसी द्वारा किया जाता है।

(3) ग्रिड पद्धति - इसे भौगोलिक क्षेत्र के किसी भाग को चुनने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस पद्धति में सर्वप्रथम प्रस्तावित क्षेत्र का भौगोलिक मानचित्र तैयार किया जाता है। तत्पश्चात् मानचित्र के बराबर एक सेल्यूलाइड या किसी पारदर्शक प्लेट (ग्रिड प्लेट) ली जाती है और उसमें संयोगिक या यदृच्छ रूप से उतने ही वर्गाकर छेद कर दिए जाते हैं जितने क्षेत्र निदर्शन में सम्मिलित किए जाने हैं। इस ग्रिड प्लेट को मानचित्र पर रखा जाता है। जो क्षेत्र छेदों में दिखाई देते हैं उन्हें चिह्नित कर लिया जाता है तथा वे क्षेत्र निदर्शन में सम्मिलित किए जाते हैं। मान लीजिए किसी औद्योगिक क्षेत्र में हमें सभी श्रमिक बस्तियों में से केवल 10 बस्तियों का अध्ययन करना है। इसके लिए सर्वप्रथम श्रमिक बस्तियों का मानचित्र तैयार किया जाएगा तथा फिर ग्रिड प्लेट पर संयोगिक या यदृच्छ रूप से 10 छेद कर दिए हैं। मानचित्र पर ग्रिड प्लेट रखने के पश्चात जो क्षेत्र छेदों के नीचे विखाई देते हैं उन्हें निदर्शन की इकाई माना जाता है।

(4) दैव संख्या सारणी पद्धति - जब समग्र का आकार बड़ा होता है और लाटरी अथवा कार्ड या टिकट पद्धति द्वारा निदर्शन का चयन कठिन होता है तो इस प्रकार के बड़े समग्र में से अध्ययन इकाई के चयन हेतु प्रायः दैव संख्या सारणी का प्रयोग किया जाता है। इन संख्याओं को वैज्ञानिक पद्धति द्वारा निर्धारित किया जाता है। सामान्यतः टिप्पेट (Tippet) अथवा फिशर एवं येट्स (Fisher and Yates) की दैव संख्या सारणी का प्रयोग किया जाता है। इस सारणी द्वारा निर्धारित संख्या में इकाईयों का चयन किया जाता है। इसमें भी प्रत्येक इकाई के चुने जाने की बराबर सम्भावना होती है। उदाहरणार्थ, टिप्पेट द्वारा 10,400 संख्याओं की संयोगिक या यदृच्छ चयन पद्धति (Random selection method) द्वारा एक सूची बनाई गई तथा उसका मानकीकरण किया गया। अनुसन्धानकर्ता टिप्पेट द्वारा बनाई गई इस सूची के किसी पृष्ठ से

निर्धारित संख्या में इकाईयों का चयन कर सकता है। टिप्पेट द्वारा एक पृष्ठ पर दिए गए अंकों का नमूना इस प्रकार है-

2952 3392 7979 3170

4167 1545 7203 3100

2370 3408 3563 6913

0560 1112 6008 4433

2754 1405 7002 8816

6641 9792 5911 5624

9524 1392 5356 2993

7483 2762 1089 7691

5246 6107 8126 8796

9143 9025 6111 9446

इसी प्रकार, अन्य पृष्ठों पर संख्या दर्शाई गई होती हैं। इन संख्याएँ का निर्धारण वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। मान लीजिए समग्र का आकार 500 है तथा इनमें से हमें केवल 50 सूचनादाताओं का निदर्शन लेना है, तो हम ऐसे नम्बरों वाली इकाईयों का चयन करेंगे जिनकी संख्या 500 या इससे कम है।

चुनी हुई इकाईयों की संख्या निम्न प्रकार निर्धारित होगी :

1. 295 6. 339 11. 139

2. 416 7. 154 12. 276

3. 237 8. 340 13. 356

4. 056 9. 111 14. 108

5. 275 10. 140 15. 302 इत्यादि।

इकाईयों का निर्धारित संख्या में चयन करते समय यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि टिप्पेट की सूची के किसी भी पृष्ठ के किसी भी स्थान से लगातार संख्याओं का चयन करना आवश्यक है। साथ ही, इस बात का ध्यान

रखा जाना भी आवश्यक है कि बाईं तरफ के या दाईं तरफ के उतने ही अंकों का चयन करना आवश्यक है जितने अंकों में हमें निदर्शन लेना है।

(5) नियमित अंकन दैव निदर्शन पद्धति-इस पद्धति का प्रयोग तब किया जाता है जब समग्र की सभी इकाईयाँ किसी विशेष ढंग, काल, स्थान आदि के अनुसार व्यवस्थित होती हैं। सर्वप्रथम सभी इकाईयों पर क्रमसंख्या डालते हुए एक सूची का निर्माण किया जाता है तथा तत्पश्चात् निदर्शन के आकार का निर्धारण किया जाता है। किसी एक संख्या से प्रारम्भ कर नियमित रूप से अगली संख्याएँ निर्धारित संख्या में चुनी जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी कक्षा के 200 छात्रों में से केवल 20 छात्रों का चयन करना है तो पहले उस कक्षा के 200 छात्रों की सूची विद्यालय से ली जाएगी अथवा स्वयं तैयार की जाएगी। इसके पश्चात् सूची में सम्मिलित हर 10वाँ छात्र (अर्थात् 10, 20, 30, 40, 50, 60, 70 इत्यादि) निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाएगा। यह पद्धति आकस्मिक ढंग से निदर्शन के चयन में सहायक होती है। अतः इसमें सभी प्रकार के छात्रों के निदर्शन में सम्मिलित होने की सम्भावना अधिक होती है। यद्यपि यह पद्धति दैव निदर्शन की ही एक पद्धति है, तथापि इसमें सभी इकाईयों की जानकारी होना कठिन होता है जिसके परिणामस्वरूप इसमें अभिनति की सम्भावना अधिक रहती है। इस पद्धति को क्रमबद्ध निदर्शन भी कहा जाता है।

(ब) स्तरीकृत दैव निदर्शन

जब जनसमूह अथवा समग्र में समानता कम और भिन्नताएँ अधिक हों तो पहले सम्पूर्ण समग्र को कुछ सजातीय श्रेणियों या वगर्गों में बाँट लिया जाता है और फिर प्रत्येक श्रेणी से सरल दैव निदर्शन द्वारा इकाईयों का चयन किया जाता है। यह समानुपातिक (Proportional) अर्थात प्रत्येक श्रेणी की इकाईयों की संख्या के आधार पर समान अनुपात द्वारा लिया गया अथवा असमानुपातिक (Disproportional) हो सकता है जिसमें प्रत्येक श्रेणी से निश्चित संख्या में इकाईयों का चयन किया जाता है चाहे उनकी संख्या में कितना भी अन्तर क्यों न हो। कई बार इन दोनों का मिला-जुला रूप प्रयोग में लाया जाता है जिसे भारयुक्त निदर्शन (Weighted sampling) कहा जाता है। इसमें प्रत्येक श्रेणी से इकाईयों की संख्या तो समान अनुपात में होती है परन्तु बाद में अधिक संख्या वाली श्रेणी की इकाईयों को अधिक भार प्रदान कर उसका प्रभाव बढ़ा दिया जाता है। इस भार को उसी अनुपात में बढ़ाया जाता है जिस अनुपात में श्रेणी की इकाईयाँ समग्र में विद्यमान हैं।

स्तरीकृत निदर्शन में समग्र का प्रसार कम हो जाता है और यह अधिक प्रतिनिधित्व करने वाला बन जाता है। सिन पाओ यांग (Hsin Pao Yang) के शब्दों में, "स्तरीकृत निदर्शन का अर्थ समग्र में से सामान्य विशेषताओं के आधार पर उप-निदर्शन लेना है। यह विशेषताएँ कृषि, खेतों का आकार, भूमि पर स्वामित्व, शैक्षणिक स्तर, आय, लिंग, सामाजिक वर्ग इत्यादि हो सकती हैं।" इस निदर्शन हेतु अनुसन्धानकर्ता

सर्वप्रथम समग्र की विशेषताओं के आधार पर उसे विभिन्न वर्गों में विभाजित कर लेता है तथा फिर प्रत्येक वर्ग में निर्धारित संख्या में निदर्शन की इकाईयों का चयन करता है। इस प्रकार, स्तरीकृत दैव निदर्शन में पहले स्तरों का निर्धारण होता है तथा फिर प्रत्येक स्तर में से निदर्शन की इकाईयों का चयन किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी गाँव के विभिन्न व्यवसायों में लगे 1,000 लोगों का 10 प्रतिशत निदर्शन लेना है तो पहले हमें विभिन्न व्यवसायों (कृषि, व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मजदूरी आदि) में लगे लोगों के वर्ग बनाने होंगे। फिर प्रत्येक वर्ग में जितने लोग आएँगे उनमें से 10 प्रतिशत लोगों का चयन दैव निदर्शन की पद्धति से कर लिया जाएगा।

स्तरीकृत निदर्शन की उपयोगिता को इसके निम्नलिखित प्रमुख गुणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

1. इसमें समग्र की प्रत्येक श्रेणी या वर्ग की इकाईयों को निदर्शन में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त होता है जिसके कारण किसी महत्त्वपूर्ण वर्ग या श्रेणी के उपेक्षित होने की सम्भावना नहीं रहती। सरल दैव निदर्शन में तो कोई महत्त्वपूर्ण इकाई छूट सकती है परन्तु स्तरीकृत दैव निदर्शन में ऐसा सम्भव नहीं है।

2. इसमें यदि विभिन्न श्रेणियों का विभाजन सोच-समझकर किया जाए तथा प्रत्येक श्रेणी से चाहे कम इकाईयों का ही चयन किया जाए तो भी यह निदर्शन समग्र का अधिक प्रतिनिधित्व करने वाला होता है।

3. इसमें किसी इकाई को आवश्यकता पड़ने पर त्याग कर उसके स्थान पर उसी श्रेणी की दूसरी इकाई चुनने की सुविधा होती है। यदि किसी कारणवश किसी एक श्रेणी के सूचनादाता से उसके द्वारा स्थान छोड देने के कारण सम्पर्क नहीं हो पा रहा है तो उसी श्रेणी के दूसरे सूचनादाता का चयन किया जा सकता है। ऐसा करने पर निदर्शन के प्रतिनिधित्वपूर्ण बने रहने में कोई बाधा नहीं पड़ती है।

4. इसमें वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्धारण भौगोलिक आधार पर भी किया जा सकता है। क्षेत्रीय आधार पर वर्गीकरण करने में समय एवं धन की बचत होती है तथा चयनित इकाईयों से सम्पर्क स्थापित करने में सुविधा रहती है। सरल दैव निदर्शन में ऐसा होना सम्भव नहीं है।

स्तरीकृत दैव निदर्शन के उपर्युक्त गुणों के बावजूद उसकी कुछ सीमाएँ भी हैं जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं:

1. यदि वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्धारण ठीक प्रकार से नहीं किया जाए तो यह निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो सकता है। इसमें किसी एक वर्ग या श्रेणी की इकाईयों की संख्या अत्यधिक या न्यूनतम हो सकती है जिससे निदर्शन समग्र का विश्वसनीय प्रतिनिधि नहीं रह जाता।

2. यदि वर्गों अथवा श्रेणियों के आकार में अत्यधिक अन्तर है तथा इकाईयों का चयन समानुपातिक ढंग से किया जाता है तो यह निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो सकता है।

3. यदि वर्गों अथवा श्रेणियों के आकार में अत्यधिक अन्तर है तथा इकाईयों का चयन समानुपातिक ढंग से किया जाता है तो बाद में बड़े वर्गों अथवा श्रेणियों की इकाईयों को अधिक भार देना पड़ता है जिसके कारण इसमें पक्षपात की सम्भावना बढ़ जाती है।

4. कई बार कुछ इकाईयाँ मिश्रित विशेषताओं वाली होती हैं जिसके कारण उन्हें किसी एक वर्ग अथवा श्रेणी में रखना सम्भव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में इकाईयों का श्रेणियों में विभाजन एक समस्या बन जाता है।

(स) बहु-स्तरीय निदर्शन

समग्र में अत्यधिक भिन्नताएँ होने पर इकाईयों के चयन हेतु बह-स्तरीय निदर्शन पद्धति का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें निदर्शन अनेक स्तरों पर किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी बड़े नगर का अध्ययन करना है तो पहले उसके वाडाँ का पता लगाया जाता है. फिर इनमें से कुछ वार्ड अध्ययन हेतु चुने जाते हैं। अगले स्तर पर इन वार्डों के परिवारों का पता लगाकर उनमें से कुछ परिवारों का चयन किया जाता है। यदि प्रत्येक स्तर का निदर्शन सुविधानुसार अथवा स्व-चयनित ढंग से किया जाता है तो यह असम्भावित निदर्शन कहलाता है। यदि प्रत्येक स्तर का चयन दैव निदर्शन द्वारा किया जाता है तो स्तरीकृत निदर्शन की भाँति इसे सम्भावित निदर्शन का एक प्रकार माना जाता है। अत्यधिक क्षेत्रीय भिन्नताओं वाले समग्र के अध्ययन हेतु यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी मानी जाती है क्योंकि इसमें समग्र की इकाईयों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है, प्रत्येक इकाई के चयन की पूर्ण सम्भावना रहती है तथा इसमें दैव निदर्शन के गुण पाए जाते हैं। इस पद्धति को अपनाने में सबसे अधिक कठिनाई क्षेत्रीय विभाजन के समय होती है तथा इसमें दैव निदर्शन के सभी दोष अन्तर्निहित होते हैं।

(द) क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन

इस निदर्शन में सर्वप्रथम समग्र को कुछ स्वाभाविक समूहों या भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है और फिर सरल दैव निदर्शन द्वारा प्रत्येक समूह या क्षेत्र से इकाईयों का चयन किया जाता है। यह भी सम्भव है कि पहले समग्र के कुछ क्षेत्रों या गुच्छों का दैव निदर्शन द्वारा चयन कर लिया जाए तथा इन चयनित क्षेत्रों या गुच्छों, जिन्हें उप-निदर्शन (Sub-sampling) कहा जाता है, से सभी या कुछ इकाईयों का चयन कर लिया जाए। आजकल इस पद्धति का भी बहुधा प्रयोग किया जाने लगा है।

(य) पुनरावृत्ति निदर्शन

कई बार समग्र से चुना गया निदर्शन अपेक्षाकृत बड़ा होता है क्योंकि हो सकता है कि स्तरीकरण के स्पष्ट आधार का पता न हो। इस बड़े निदर्शन से यदि चर से सम्बन्धित इकाईयों के चयन के लिए पुनः निदर्शन किया जाता है तो उसे द्विशः या पुनरावृत्ति निदर्शन कहते हैं। इस पद्धति द्वारा समग्र की विशेषताओं का मूल्यांकन करने में सम्भावित त्रुटियाँ कम हो जाती हैं।

अधिकांश सामाजिक अनुसन्धानों एवं सर्वेक्षणों में दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग इसकी उपयोगिता का द्योतक है। इसके प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं:

1. दैव निदर्शन में निष्पक्षता का गुण होता है तथा यह पक्षपातरहित होता है। इसमें किसी भी इकाई को प्राथमिकता, प्रमुखता या अधिमान्यता नहीं दी जाती तथा प्रत्येक इकाई के निदर्शन में चुने जाने की समान सम्भावना विद्यमान रहती है। इसीलिए सामाजिक विज्ञानों में होने वाले अधिकांश अध्ययनों में इसी प्रकार के निदर्शन को आधार बनाया जाता है।

2. दैव निदर्शन एक सरल एवं वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें किसी प्रकार की जटिल प्रक्रिया अथवा गूढ़ नियमों का पालन नहीं करना पड़ता है। येट्स (Yates) ने इस सन्दर्भ में उचित ही कहा है कि दैव निदर्शन सबसे सरल प्रकार का निर्वाचित निदर्शन है और निदर्शन की अधिकांश जटिल पद्धतियों का आधार है।

3. दैव निदर्शन में जनसंख्या के विषय में अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। न्यूनतम ज्ञान होने पर भी इस पद्धति का प्रयोग सम्भव है।

4. दैव निदर्शन द्वारा इकाईयों के चयन तथा उनसे प्राप्त सामग्री के विश्लेषण में त्रुटियों का सरलतापूर्वक मूल्यांकन किया जा सकता है। इसमें गणितीय पद्धतियों द्वारा सम्भावित अशुद्धता का पता लगाया जा सकता है।

5. दैव निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है क्योंकि इसमें प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चयनित होने का समान अवसर उपलब्ध होता है।

दैव निदर्शन द्वारा इकाईयों के चयन हेतु पहले से स्रोत-सूची का होना अनिवार्य है। यदि इस प्रकार की कोई सूची उपलब्ध नहीं है और न ही उसे बनाया जाना सम्भव है तो इस प्रकार का निदर्शन प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। दैव निदर्शन की प्रमुख सीमाएँ निम्न प्रकार हैं:

1. दैव निदर्शन के प्रयोग हेतु समग्र की सम्पूर्ण इकाईयों की विस्तृत एवं सम्पूर्ण सूची उपलब्ध होना आवश्यक है। कुछ परिस्थितियों को छोड़कर इस प्रकार की सूची प्रायः उपलब्ध नहीं हो पाती है। इसलिए इसका प्रयोग सभी प्रकार के अध्ययनों में करना सम्भव नहीं है।

2. दैव निदर्शन में इकाईयों के चयन में अनुसन्धानकर्ता का कोई नियन्त्रण नहीं होता। इसलिए ऐसी इकाईयों का भी चयन हो जाता है जो दूर-दूर स्थित होती हैं तथा जिनसे सम्पर्क करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में चुने हुए निदर्शन। को अपनाना प्रायः कठिन होता है।

3. दैव निदर्शन में विकल्प की कोई सम्भावना नहीं होती है। यदि निदर्शन में चयनित कुछ इकाईयाँ अपना स्थान छोड़कर कहीं और चली गई हैं तो अन्य विकल्पों को सुविधानुसार इसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। इससे निदर्शन की विश्वसनीयता प्रभावित होती है।

4. दैव निदर्शन में यदि समग्र की इकाईयाँ समान आकार वाली नहीं हैं तथा उनमें एकरूपता का अभाव पाया जाता है तो प्रतिनिधि इकाईयों का चयन होना अनिवार्य नहीं है। ऐसी स्थिति में यह पद्धति अधिक उपयुक्त नहीं होती।

दैव निदर्शन के प्रयोग में अनुसन्धानकर्ता यदि निम्नलिखित सावधानियाँ रखता है। तो उसका अध्ययन अधिक वैज्ञानिक हो सकता है-

1. दैव निदर्शन द्वारा इकाईयों के चयन से पूर्व समग्र का निर्धारण ठीक प्रकार से किया जाना चाहिए तथा यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि समस्त इकाईयों की सम्पूर्ण सूची उपलब्ध है।

2. दैव निदर्शन में सम्मिलित होने वाली इकाईयाँ स्वतन्त्र होनी चाहिए अर्थात् वे एक-दूसरे पर अध्ययन हेतु निर्भर नहीं होनी चाहिए।

3. दैव निदर्शन में इकाईयाँ ऐसी होनी चाहिएँ जिनसे सम्पर्क स्थापित किया जा सके क्योंकि इसमें एक बार चुनी हुई इकाई को बदला नहीं जा सकता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि स्तरीकृत दैव निदर्शन, क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन तथा द्विशः या पुनरावृत्ति निदर्शन पूरी तरह से सम्भावित निदर्शन न होकर अर्द्धसम्भावित (Semi-probability) निदर्शन होता है क्योंकि इनमें सरल दैव निदर्शन के सभी गुणों का समावेश नहीं होता है। यद्यपि इनमें तथा सरल दैव निदर्शन में अन्तर केवल अंशों का ही है, तथापि इनमें एक इकाई का चयन दूत्तरी इकाई के चयन को प्रभावित करता है। अतः इनमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन का समानव अवसर नहीं होता है। कुछ विद्वान् इसे सीमित दैव (Limited random) निदर्शन भी कहते हैं।

7.8 असम्भावित निदर्शन

कई बार स्रोत-सूची इत्यादि उपलब्ध न होने पर सम्भावित निदर्शन करना कठिन कार्य हो जाता है। अतः कई बार इसका प्रयोग अनुसन्धान में न करके असम्भावित में अनुसन्धानकर्ता इसमें भी निदर्शन को प्रतिनिधिक एवं पर्याप्त बनाने के लिए कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है।

सामाजिक अनुसन्धान एवं सर्वेक्षण में मुख्य रूप से असम्भावित निदर्शन की निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है:

1. अभ्यंश या कोटा निदर्शन- इसे कई बार प्रतिनिधिक निदर्शन भी कह दिया जाता है क्योंकि इसमें भी जनसंख्या का स्तरीकरण उसी प्रकार से किया जाता है जिस प्रकार कि स्तरीकृत दैव निदर्शन में। परन्तु इसमें प्रत्येक स्तर से आवश्यक संख्या में इकाईयों का चुनाव अनुसन्धानकर्ता अपने विवेक के आधार पर ही करता है। प्रत्येक स्तर से इकाईयों का निश्चित संख्या में चयन करने के कारण ही इसे अभ्यंश या कोटा निदर्शन कहा जाता है। जनमत सर्वेक्षणों में इस प्रकार के निदर्शन का अधिक प्रचलन है।

2. उद्देश्यपूर्ण निदर्शन-इसमें अनुसन्धानकर्ता अपने पूर्व ज्ञान या पूर्व विचारों के आधार पर उन इकाईयों का चयन कर लेता है जिन्हें वह जनसंख्या का प्रतिनिधि समझता है। इसे सविचार, सप्रयोजन अथवा सोद्देश्य निदर्शन पद्धति भी कहा जाता है। इसमें अनुसन्धानकर्ता द्वारा स्वेच्छा से विभिन्न समूहों ते निर्धारित संख्या इकाईयों का चयन इस प्रकार किया जाता है कि विभिन्न समूह मिलकर यथासम्भव वही अनुपात प्रदान करते हैं जोकि समग्र में होता है। इस प्रकार के निदर्शन हेतु अध्ययनकर्ता का समग्र की सभी विशेषताओं से भली-भाँति परिचित होना आवश्यक है। यदि अनुसन्धानकर्ता में उपयुक्त कुशलता है और उसने उचित निर्णय लिया है तो यह निदर्शन भी सन्तोषजनक हो सकता है। इसमें धन का कम व्यय होता है क्योंकि निदर्शन का आकार बड़ा नहीं होता है। यह निदर्शन पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि यदि निदर्शन का चयन पक्षपातरहित हो तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन भी समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला हो सकता है। साथ ही, इस पद्धति का प्रयोग उन परिस्थितियों में उपयोगी है जिनमें समग्र की कुछ इकाईयाँ विशेष महत्त्व रखती हैं तथा उनका निदर्शन में चुना जाना आवश्यक है। दैव निदर्शन द्वारा ऐसा सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि उत्तराखण्ड के महाविद्यालयों का अध्ययन करना है तो डी०ए०वी० कॉलेज देहरादून को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। इस निदर्शन पद्धति के प्रयोग द्वारा यह महाविद्यालय तो निदर्शन में सम्मिलित हो सकता है, परन्तु हो सकता है कि दैव निदर्शन में यह महाविद्यालय छूट जाए। घापि उद्देश्यपूर्ण निदर्शन की पद्धति को बहुधा प्रयोग में लाया जाता है, तथापि। यह अधिक उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें अभिनति एवं पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है। अनुसन्धानकर्ता हित-विशेष की पूर्ति हेतु ऐसे निदर्शन का चयन कर सकता है जो उसके मतों की पुष्टि करने वाला हो। इस पद्धति में तीन प्रमुख दोष पाए जाते हैं-

(1) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन हेतु प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता में समग्र की विभिन्न विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है। परन्तु यथार्थ में समग्र के बारे में पहले से ही पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं होता।

(ii) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता किसी भी इकाई को निदर्शन के रूप में चुनने हेतु स्वतन्त्र होता है। उस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न होने के कारण इस पद्धति में निदर्शन पक्षपातपूर्ण ढंग से होने की सम्भावना अधिक रहती है।

(iii) निदर्शन सम्बन्धी अशुद्धता का अनुमान जिन मान्यताओं पर किया जाता है, उनमें से एक भी उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में नहीं पाई जाती है।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी मानी जाती है। दैव निदर्शन पद्धति में तो महत्त्वपूर्ण इकाईयों के छूट जाने की पूर्ण सम्भावना रहती है, परन्तु इसमें ऐसा नहीं होता है।

3. स्व-चयनित या आकस्मिक निदर्शन-स्व-चयनित निदर्शन को आकस्मिक निदर्शन भी कहा जाता है। इसमें जो भी इकाई सुविधाजनक रूप में उपलब्ध होती है, उसका चयन कर लिया जाता है। इस पद्धति को भी सामाजिक अनुसन्धानों में निदर्शन के चयन हेतु प्रयोग में लाया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जाता है जब न तो समग्र की पूर्ण जानकारी उपलब्ध है और न ही निदर्शन की इकाईयाँ स्पष्ट हैं। कोई स्रोत-सूची भी उपलब्ध नहीं है। इसमें आकस्मिक रूप में जो भी इकाई उपलब्ध होती है उसी को निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाता है। अनेक विद्वान् इस पद्धति को प्रयोग में लाने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि जब अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधाओं को ध्यान में रखकर आकस्मिक रूप से निदर्शन करने लगता है तो यह पद्धति अवैज्ञानिक एवं अवसरवादी बन जाती है।

4. खण्ड निदर्शन-इस प्रकार के निदर्शन में सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन न करके उसके किसी एक खण्ड को सुविधानुसार अध्ययन हेतु चुन लिया जाता है मतदाताओं का अध्ययन कर रहा है और वह केवल अपने मोहल्ले को निदर्शन के एक खण्ड के रूप में चुन लेता है तो इसे खण्ड निदर्शन कहा जाएगा। उसने अपने मोहल्ले का चयन अपनी सुविधानुसार किया है क्योंकि मोहल्ले वाले उसके परिचित हैं तथा मतदाता के रूप में जो भी जानकारी उसे चाहिए वह उसे उनसे मिल सकती है।

यह सही है कि असम्भावित निदर्शन अधिक वैज्ञानिक नहीं होता है. फिर भी अनेक सामाजिक विज्ञानों में इसका व्यापक प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में तो बहुधा इसी प्रकार के निदर्शन का प्रयोग किया जाता है क्योंकि प्रयोगशालाओं में सम्भावित निदर्शन सम्भव नहीं होता। इतना ही नहीं, सम्भावित निदर्शन की पद्धति अधिक कठोर पद्धति है जिसका पूरी तरह से पालन करना कठिन होता है। इसीलिए फरग्यूसन (Ferguson) ने लिखा है, " यदि हम निदर्शन के संयोगिक आधार का कठोरता से पालन करें तब बहुत-से प्रायोगिक अध्ययन सम्भव ही नहीं हो सकेंगे।" अतः असम्भावित निदर्शन की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है।

असम्भावित निदर्शन की उपर्युक्त पद्धतियों में से किसी एक का चयन निम्नलिखित परिस्थितियों में उपयुक्त माना जाता है :

(i) जब अनुसन्धानकर्ता को समग्र के विषय में पूर्ण ज्ञान न हो।

(ii) जब अनुसन्धानकर्ता को समग्र की इकाईयों का स्वरूप स्पष्ट न हो।

(iii) जब अध्ययन का उद्देश्य अग्रगामी अध्ययन (Pilot study) करना हो।

(iv) जब अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के आधार पर अध्ययन के परिणामों को शीघ्रातिशीघ्र जानने की आवश्यकता हो।

(v) जब अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के लिए किसी प्रकार का तकनीकी ज्ञान उपलब्ध न हो।

(vi) जब अनुसन्धानकर्ता द्वारा अध्ययन सम्बन्धी आकलनों में परिशुद्धता को अधिक महत्त्व न दिया जाना हो।

(vii) जब अनुसन्धानकर्ता के पास धन का अभाव हो तथा कम साधनों के होते हुए एक छोटे आकार का निदर्शन लेना ही सम्भव हो।

(vii) जब अनुसन्धानकर्ता के पास समय का अभाव हो तथा उसका लक्ष्य एक छोटे आकार के निदर्शन को ही अध्ययन का आधार बनाना हो।

सम्भावित निदर्शन की विभिन्न पद्धतियों की तुलना में असम्भावित निदर्शन की पद्धतियों को उनके निम्नलिखित दोषों के कारण कम अपनाया जाता है:

(i) असम्भावित निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता समग्र की इकाईयों का चयन अपनी सुविधानुसार करता है जिसके कारण पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है।

(ii) असम्भावित निदर्शन में पक्षपात की अधिक सम्भावना के कारण यह आवश्यक नहीं है कि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला ही हो।

(iii) असम्भावित निदर्शन में निदर्शन की त्रुटि की गणना में कठिनाई होती है क्योंकि इसमें सम्भावित सिद्धान्त की अभिकल्पना नहीं रहती।

(iv) असम्भावित निदर्शन द्वारा जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे अधिक विश्वसनीय एवं वैध नहीं होते। इसीलिए ऐसे निष्कर्षों पर न तो कोई भविष्यवाणी की जा सकती है और यदि की भी जाती है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह सच ही हो।

आजकल सम्भावित एवं असम्भावित दोनों प्रकार के निदर्शन का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान में किया जाने लगा है। यदि असम्भावित निदर्शन का प्रयोग किया गया है तो निष्कर्ष निकालने में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है।

7.9 निदर्शन की समस्याएँ

निदर्शन सामाजिक अनुसन्धान का एक प्रमुख चरण है। अनुसन्धान के निष्कर्ष काफी सीमा तक निदर्शन पर ही निर्भर करते हैं। यदि निदर्शन ही ठीक प्रकार से नहीं किया गया है तो निष्कर्ष भी सही नहीं होंगे। निदर्शन का चयन करते समय अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं- प्रथम, कई बार समग्र पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होता है। हमें यह पता नहीं होता है कि इसमें किस सीमा तक सजातीयता अथवा विजातीयता पाई जाती है। इसके परिणामस्वरूप हम निदर्शन के आकार के बारे में सही निर्णय नहीं ले पाते हैं। द्वितीय, निदर्शन की कौन-सी विधि प्रयोग में लाई जाए, यह भी निदर्शन की एक प्रमुख समस्या है। दैव निदर्शन का प्रयोग केवल उन्हीं परिस्थितियों में किया जाता है जहाँ समग्र की इकाईयाँ स्पष्ट हैं तथा उन्हें किसी-न-किसी आधार पर क्रमानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता है, किन्तु ऐसा प्रायः सम्भव नहीं होता है। तृतीय, निदर्शन की एक अन्य समस्या इसके समग्र को प्रतिनिधित्व करने की है। यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता है तो निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हैं, इसलिए इसका समग्र का प्रतिनिधित्व करना अनिवार्य है। चतुर्थ, निदर्शन की अन्तिम नहीं है तो सामान्यीकरण निकालने में कठिनाई हो सकती है।

7.10 सार-संक्षेप

एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों विषयों अथवा निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया अथवा पद्धति अथवा अध्ययन हेतु एक समग्र समूह में से उसके एक भाग का चयन करना निदर्शन तकनीक (Sampling technique) कहलाती है।

निदर्शन ऐसे साधन है जिनसे केवल कुछ इकाईयों का निरीक्षण करके विशाल इकाईयों का अनुमान लगाया जा सकता है।

निदर्शन की कार्यप्रणाली यद्यपि एक सरल प्रक्रिया लगती है परन्तु व्यवहार में यह एक कठिन कार्य है।

निदर्शन के चयन का प्रथम चरण उन सभी इकाईयों को निर्धारित करना है जो समग्र का निर्माण करती हैं।

समग्र को निर्धारित करने के पश्चात् दूसरा चरण निदर्शन की इकाई का निर्धारण करना है। इस चरण में हमें यह निश्चित करना होता है कि कौन-सी इकाईयाँ ऐसी हो सकती है जिनको समग्र का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

निदर्शन के चयन का तीसरा चरण इकाईयों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना है। यदि सम्पूर्ण इकाईयों की कोई सूची उपलब्ध है तो इस चरण में उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

इकाईयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् निदर्शन के चयन का चौथा चरण निदर्शन के आकार का निर्धारण करना है। निदर्शन का आकार निर्धारित करने का कोई सांख्यिकीय मापदण्ड नहीं है।

निदर्शन के द्वारा विस्तृत एवं गहन अध्ययन सम्भव हो जाता है। सीमित इकाईयों के अध्ययन के कारण अनुसन्धानकर्ता विस्तृत क्षेत्र में अध्ययन कर सकता है और साथ ही सूचनाओं के संकलन में गहनता ला सकता है।

इस प्रकार, निदर्शन का प्रयोग किसी वैज्ञानिक कार्यकर्ता के समय की बचत कर उसके कार्य को अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करता है।

यद्यपि निदर्शन सामाजिक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण चरण है तथा इसके बिना अनुसन्धान की कल्पना करना सम्भव नहीं है, फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनके कारण इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना पड़ता है।

7.11 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. निदर्शन समग्र का एक छोटा भाग या अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधित्व करता है। तथा जिसमें समग्र की मौलिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। दैनिक जीवन में हम निदर्शन का प्रयोग करते हैं, जबकि हम चावल, गेहूँ या कोई अन्य वस्तु खरीदने बाजार जाते हैं तो पहले इनका नमूना देखते हैं। उस नमूने से ही हम पूरी बोरी के चावल, गेहूँ या अन्य वस्तु की गुणवत्ता (Quality) का अनुमान लगा लेते हैं। यह नमूना ही प्रतिदर्श या निदर्शन कहलाता है।

2. गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, "एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी विस्तृत समूह का एक अपेक्षाकृत लघु प्रतिनिधि है।" यंग (Young) के शब्दों में, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह या योग का अति लघु चित्र है जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।" यांग (Yang) के

अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधिक भाग है। यह समूह 'जनसंख्या', 'समग्र' अथवा 'पूर्ति स्रोत' के नाम से जाना जाता है।"

अतः स्पष्ट है कि निदर्शन किसी विशाल समूह, समग्र या योग का एक अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधि है अर्थात् अंश की भी वही विशेषताएँ हैं जोकि सम्पूर्ण समूह या समग्र की हैं।

3. समय की बचत-निदर्शन के प्रयोग द्वारा अनुसन्धानकर्ता के समय की बचत होती है क्योंकि इसमें सीमित इकाईयों का अध्ययन किया जाता है। जो अनुसन्धान व्यक्तिगत प्रकृति के होते हैं, उन्हें एक निश्चित अध्ययन में पूरा करना आवश्यक होता है। यह तभी सम्भव है जबकि निदर्शन द्वारा इकाईयों की संख्या सीमित रखी जाए।

4. धन की बचत-निदर्शन में धन की बचत होती है। जनगणना केवल सरकार ही करा सकती है क्योंकि उसके पास अपार साधन होते हैं। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित अनुसन्धानों में यदि सभी इकाईयों का अध्ययन करना पड़े तो उसके लिए न केवल समय अधिक लगेगा, अपितु धन भी अधिक खर्च करना पड़ेगा। कम-से-कम खर्च करके अधिक-से-अधिक विश्वसनीय सामग्री को संकलित करना केवल निदर्शन द्वारा ही सम्भव है। है। इसका प्रमुख कारण निदर्शन के चयन में पक्षपात एवं अभिनति होना है। यह सही है कि अमेरिका, पश्चिमी यूरोप तथा कई बार भारत में भी चुनाव-पूर्व होने वाले निदर्शन सर्वेक्षण के निष्कर्ष चुनाव के पश्चात् घोषित परिणामों से मिलते-जुलते होते हैं फिर भी बहुधा यह निष्कर्ष वास्तविक परिणामों से मेल नहीं खाते। इसीलिए जनता इनसे भ्रमित हो सकती है। परिशुद्ध न होने के कारण ही भारत में चुनाव-पूर्व ऐसे निदर्शन सर्वेक्षण न करने की बार-बार माँग की जाती है।

7.11 अभ्यास प्रश्न

1. निदर्शन को परिभाषित कीजिए तथा इसके चयन की प्रक्रिया संक्षेप में बताइए।

2. निदर्शन से आप क्या समझते हैं? इसकी उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

3. असभावित निदर्शन क्या है? इसकी प्रमुख पद्धतियाँ बताइए।

4. सामाजिक अनुसन्धान में उपयुक्त निदर्शन का चयन कैसे किया जाता है?

5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए:

(अ) ग्रिड पद्धति

(ब) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन

(स) असम्भावित निदर्शन की सीमाएँ

(द) अभ्यंश या कोटा निदर्शन

7.10 पारिभाषिक शब्दावली

समग्र - समग्र का आशय सम्पूर्ण इकाईयों से है।

निदर्शन - निदर्शन समग्र का लघु चित्र है जो समग्र का प्रतिनिधित्व करता है।

तकनीक - तकनीक से अभिप्राय किसी भी सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री संकलन करने की पद्धति से है।

जनांकिकी - जनांकिकी जनसंख्या से सम्बन्धित विज्ञान है।

निष्पक्षता - निष्पक्षता से अभिप्राय किसी भी यथार्थ को पूर्वाग्रह के बिना या पक्षपातरहित ढंग से देखना है। अपने किसी मूल्य द्वारा प्रभावित हुए बिना यथार्थ को उसी रूप में देखना जिस रूप में वह विद्यमान है, निष्पक्षता कहलाती है।

सम्भावित निदर्शन – यह वह निदर्शन है जिसमें समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व दिया जाता है। इसमें अनुसन्धानकर्ता को स्वयं के पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा मिथ्या-झुकाव की सम्भावना को कम करने हेतु समग्र की सभी इकाईयों को चुने जाने का एक समान अवसर प्रदान करना पड़ता है।

असभावित निदर्शन - सम्भावित निदर्शन से अभिप्राय उस निदर्शन से है जिसमें अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधा अथवा विवेक के आधार पर इकाईयों का चयन करता है तथा प्रत्येक इकाई को निदर्शन में सम्मिलित होने का एक समान अवसर उपलब्ध नहीं होता।

पक्षपातपूर्ण निदर्शन - एक ऐसा निदर्शन जो समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता पक्षपातपूर्ण निदर्शन कहा जा सकता है।

दैव निदर्शन - दैव निदर्शन उसे कहा जाता है जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई को चयनित होने हेतु समान अवसर प्राप्त होते हैं तथा जिसमें किसी इकाई का चयन किसी दूसरी इकाई के चयन की सम्भावना को किसी भी रूप में कम नहीं करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

- Bogardus, E. S., Introduction to Sociology, New York: Charles Scribner's Sons, 1922.
- Fairchild, H. P., Dictionary of Sociology, Totowa, N. J.: Littlefield, Adams and Co., 1977.
- Goode, W. J. and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York: McGraw-Hill Book Company, 1952.
- Lundberg, G. A., Social Research, New York: Longmans, Green and Co., 1951.
- Snedecor, George W. and William G. Cochran, Statistical Methods, lowa: Blackwell Publishing Professional, 1989.
- Tippett, L. H. C., Random Sampling Numbers, London: CUP, 1927.
- Yang, Hsin Pao, Fact-finding with Rural People, Rome: Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1955.
- Young, P. V., Scientific Social Surveys and Research, Bombay: Asia Publishing House, 1960.

इकाई-8 **सूचनाओं का प्राथमिक एवं द्वितीयक श्रोत**

Primary & Secondary Sources of Data

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 अध्ययन के उद्देश्य

8.2 सूचनाओं के स्रोत

8.3 प्राथमिक सामग्री

8.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता

8.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ

8.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत

8.7 द्वितीयक सामग्री

8.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता

8.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ

8.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत

8.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर

8.12 सार-संक्षेप

8.13 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.14 अभ्यास-प्रश्न

8.15 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसन्धान का अर्थ सामाजिक घटनाओं अथवा तथ्यों के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना, प्राप्त ज्ञान में वृद्धि करना अथवा जिन सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्माण किया जा चुका है, उनमें किसी भी प्रकार का संशोधन करना है। अतः सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्त्वपूर्ण चरण सामग्री अथवा आँकड़े एकत्रित करना है क्योंकि इस सामग्री के आधार पर ही नवीन ज्ञान की प्राप्ति या पहले से प्राप्त ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। सामग्री के संकलन में जितनी अधिक सावधानी रखी जाती है, निष्कर्ष उतने ही अधिक विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक होते हैं।

सामाजिक अनुसन्धान में मुख्यतः प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों के विभिन्न स्रोत होते हैं तथा इन स्रोतों का अपना अलग महत्त्व होता है। प्राथमिक सामग्री अनुसन्धानकर्ता क्षेत्राधारित अध्ययनों द्वारा संकलित करता है, जबकि द्वितीयक (जिसे ऐतिहासिक सामग्री भी कहा जाता है) का संकलन स्वयं अनुसन्धानकर्ता नहीं करता है अपितु वह अन्य किसी द्वारा संकलित होती है जिसे अनुसन्धानकर्ता अपनी अनुसन्धान समस्या के विश्लेषण एवं विवेचन हेतु प्रयोग करता है। द्वितीयक सामग्री किसी अन्य व्यक्ति, संस्था अथवा एजेन्सी द्वारा अपने निजी प्रयोग के लिए संकलित की जाती है। इसे संकलित करने वाला व्यक्ति, संस्था अथवा एजेन्सी का स्वरूप सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा निजी कुछ भी हो सकता है। इस प्रकार की सामग्री सामान्यतया विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए संस्मरणों एवं अप्रकाशित प्रतिवेदनों अथवा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं व प्रलेखों में उपलब्ध रहती है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी समय-समय पर इस प्रकार की हेतु द्वितीयक सामग्री का कार्य करती है। किसी अनुसन्धानकर्ता द्वारा जनगणना सम्बन्धी सामग्री का प्रयोग भी द्वितीयक सामग्री का ही उदाहरण है। किसी भी ऐतिहासिक अध्ययन में द्वितीयक सामग्री का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। प्राथमिक सामग्री सूक्ष्म प्रकृति की होती है, जबकि द्वितीयक सामग्री की प्रकृति बृहत् होती है। द्वितीयक सामग्री सम्पूर्ण समाज अथवा सभ्यता से सम्बन्धित हो सकती है। उदाहरणार्थ, जनगणना, राष्ट्रीय निदर्शन सर्वेक्षण इत्यादि बृहत सामग्री के ही उदाहरण हैं जिन्हें द्वितीयक स्रोतों के रूप में अनुसन्धान में विविध प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

8.0 अध्ययन के उद्देश्य

सामाजिक अनुसन्धान, अन्वेषण अथवा शोध में विविध प्रकार की सामग्री (आँकड़े. सूचनाएँ अथवा तथ्य) का प्रयोग किया जाता है। बिना इनके सामाजिक अनुसन्धान एक अपंग प्राणी की भाँति है। अनुसन्धान में प्रयोग की जाने वाली सामग्री चूँकि एक ही प्रकार की नहीं होती, अतः प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता को यह पता होना चाहिए कि उसे किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता है? वह सामग्री किन स्रोतों से प्राप्त की जा

सकती है? यदि उसे इसका पता नहीं है तो वह इधर-उधर भटकता रहेगा तथा उसका काफी समय एवं श्रम व्यर्थ चला जाएगा। प्रस्तुत इकाई में अनुसन्धान में प्रयुक्त होने वाली दोनों प्रकार की सामग्री-प्राथमिक एवं द्वितीयक-के अर्थ, उपयोगिता, सीमाओं तथा स्रोतों के साथ-साथ इन दोनों में अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

8.2 सामग्री के स्रोत

सामाजिक अनुसन्धान में विविध प्रकार की विधियों एवं प्रविधियों द्वारा सामग्री एकत्रित की जाती है। आखिर इस सामग्री या आँकड़ों के स्रोत क्या हैं? एक समाजशास्त्री अनुसन्धान सम्बन्धी सामग्री का संकलन दो प्रमुख स्रोतों से करता है-सामग्री के प्राथमिक स्रोत या क्षेत्रीय स्रोत तथा सामग्री के द्वितीयक स्रोत या ऐतिहासिक स्रोत। सामग्री या आँकड़ों के प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राथमिक सामग्री एकत्रित की जाती है, जबकि ऐतिहासिक स्रोतों द्वारा द्वितीयक सामग्री या ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की जाती हैं। प्राथमिक स्रोत वे साधन हैं जो घटना, व्यक्ति या संस्था के विषय में प्रथम साक्षी का कार्य करते हैं। द्वितीयक स्रोत वे साधन हैं जो अनुसन्धानकर्ता के लिए प्रथम साक्षी नहीं है क्योंकि इनमें उसका स्रोत से सम्बन्धित घटना, व्यक्ति या संस्था से तात्कालिक सम्बन्ध नहीं होता। प्राथमिक स्रोतों को क्षेत्रीय स्रोत तथा द्वितीयक स्रोतों को ऐतिहासिक स्रोत या प्रलेखीय स्रोत भी कहा जाता है। प्राथमिक स्रोतों में अनुसन्धानकर्ता द्वारा अपनी समस्या से सम्बन्धित वास्तविक व्यक्तियों से प्राप्त जानकारी अथवा प्रत्यक्ष अवलोकन (या अन्य किसी तकनीक) द्वारा प्राप्त तथ्य सम्मिलित होते हैं, जबकि द्वितीयक स्रोतों के अन्तर्गत सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित, अप्रकाशित अथवा लिखित प्रलेख सम्मिलित होते हैं। वास्तव में, अध्ययन या अनुसन्धान के स्रोत क्या होंगे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. सामाजिक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण चरण सामाग्री या आंकड़ो का चयन है। क्यों

.....

.....

.....

2. सामाजिक अनुसंधान की सामाग्री के दो प्रमुख स्त्रोत कौन-कौन से है?

.....

.....

.....

8.3 प्राथमिक सामग्री

प्राथमिक सामग्री उस सामग्री, आँकड़ों या सूचनाओं को कहते हैं जोकि अनुसन्धानकर्ता (अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा) स्वयं प्राप्त की जाती है अर्थात् प्रथम स्तर (First hand) पर एकत्रित सामग्री ही प्राथमिक सामग्री कहलाती है।

यद्यपि कुछ प्रलेखों इत्यादि से भी सामग्री एकत्रित की जाती है परन्तु उसे प्राथमिक सामग्री में सम्मिलित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे अनुसन्धानकर्ता ने स्वयं प्रथम स्तर पर संकलित नहीं किया होता। प्राथमिक सामग्री में वे मौलिक सूचनाएँ सम्मिलित की जाती हैं जोकि एक अनुसन्धानकर्ता स्वयं अध्ययन-क्षेत्र में जाकर अपनी अध्ययन समस्या की विवेचना हेतु निदर्शन द्वारा चयनित सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची या प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है। प्राथमिक सामग्री को प्राथमिक इस अर्थ में कहा जाता है क्योंकि इसे अनुसन्धानकर्ता अपने अध्ययन उपकरणों द्वारा प्रथम बार स्वयं एकत्रित करता है। इसलिए प्राथमिक सामग्री संकलित करने के दो प्रमुख स्रोत हो सकते हैं-प्रथम, सूचनादाताओं से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएँ तथा द्वितीय, क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष अवलोकन ।

पामर (Palmer) के मतानुसार सूचनादाता न केवल अध्ययन विषय की विद्यमान अवस्थाओं को स्पष्ट करने की योग्यता रखते हैं, अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्त्वपूर्ण चरण एवं अवलोकन योग्य प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में संकेत कर सकते हैं। यदि इन सूचनादाताओं का चयन सावधानीपूर्वक किया जाए तो वे अध्ययन कार्य के महत्त्वपूर्ण अंग बन सकते हैं। प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा भी किसी समुदाय या समूह के जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यदि अनुसन्धानकर्ता अवलोकन करते समय निष्पक्षता बनाए रखता है तो उसके द्वारा जो सामग्री प्रत्यक्ष अवलोकन के प्रयोग से संकलित की जाएगी वह अत्यन्त विश्वसनीय एवं अति उत्तम प्राथमिक स्रोत हो सकती है। सहभागी अवलोकन द्वारा तो सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित आन्तरिक एवं गुप्त बातों को भी जाना जा सकता है।

सरल शब्दों में, प्राथमिक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री प्राथमिक सामग्री कहलाती है। प्राथमिक स्रोतों को कई बार क्षेत्रीय स्रोत भी कहा जाता है। पीटर एच० मन (Peter H. Mann) के अनुसार, "प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री प्रदान करते हैं अर्थात् जिन लोगों ने उसे एकत्रित किया है ये उनके द्वारा ही प्रस्तुत की गई सामग्री के मौलिक स्वरूप (कुलक) हैं।" मन ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्राथमिक स्रोत

की परिभाषा को सीमित अर्थ अर्थात् स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा एकत्रित सामग्री के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जनगणना के आँकड़ों (Census data) को हम प्रथम स्तर के आँकड़े मानते हैं यद्यपि इन्हें रजिस्ट्रार जनरल (Registrar General) ने व्यक्तिगत रूप में एकत्रित नहीं किया और न ही इनके विश्लेषण एवं लिखने का कार्य ही उसने किया है। इन्हें हम प्राथमिक आँकड़े या इकाई के रूप में इन्हें एकत्रित करके इनका विश्लेषण किया है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. प्राथमिक समाग्री में कौन-सी सूचनाएं सम्मिलित की जाती हैं?

.....

.....

.....

8.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में हमारा प्रयास यथासम्भव प्राथमिक सामग्री को एकत्रित करना है क्योंकि प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री या आँकडे अधिक विश्वसनीय होते हैं। ग्रामीण समाज के क्षेत्रीय अध्ययनों में तो केवल प्राथमिक सामग्री ही उपयोगी मानी जाती है। प्राथमिक सामग्री का संकलन प्राथमिक स्रोतों से ही किया जाता है। इन स्रोतों में अनुसन्धानकर्ता द्वारा प्रयोग की गई तकनीक (साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली इत्यादि) तथा प्रत्यक्ष अवलोकन प्रमुख हैं। प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता को इसके निम्नलिखित गुणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

1. विश्वसनीयता-प्राथमिक सामग्री अधिक विश्वसनीय होती है क्योंकि इसे अधिकांशतः अनुसन्धानकर्ता द्वारा स्वयं प्रत्यक्ष रूप में एकत्रित किया जाता है। यदि इसमें किसी प्रकार की कमी है तो यह केवल अनुसन्धानकर्ता के पक्षपात के कारण है।

2. वास्तविकता-प्राथमिक सामग्री अधिक स्वाभाविक अर्थात् वास्तविक होती है क्योंकि इसे अनुसन्धानकर्ता द्वारा प्रथम स्तर पर क्षेत्रीय कार्य के आधार पर संकलित किया जाता है। इससे हमें घटना के वास्तविक रूप का पता चल जाता है।

3. व्यावहारिक उपयोगिता-प्राथमिक सामग्री अधिक व्यावहारिक होती है क्योंकि इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा अनुसन्धान की समस्या के उद्देश्यों के अनुकूल ही एकत्रित किया जाता है।

4. नवीनता-प्राथमिक सामग्री में नवीनता का गुण पाया जाता है क्योंकि इसे अनुसन्धान क्षेत्र में जाकर स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा एकत्रित किया जाता है। प्रत्यक्ष सम्पर्क होने के कारण बहुत-सी ऐसी बातों का पता चल जाता है जोकि द्वितीयक स्रोतों से नहीं मिल पातीं।

8.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि प्राथमिक सामग्री सामाजिक अनुसन्धान की आधारशिला है, फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएँ अथवा अवगुण हैं। इसकी प्रमुख सीमाएँ निम्नांकित हैं :

1. अभिनति-प्राथमिक सामग्री के संकलन में अनुसन्धानकर्ता द्वारा पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है। वह अपने विचारों, मूल्यों अथवा पूर्वाग्रहों के अनुरूप सामग्री को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है। उसके लिए अपने विचारों, मूल्यों अथवा पूर्वाग्रहों को छोड़कर निष्पक्ष रूप से अध्ययन करना प्रायः कठिन होता है।

2. साधनों की आवश्यकता- प्राथमिक सामग्री के संकलन में अधिक साधनों की आवश्यकता होती है क्योंकि इसके संकलन में अधिक समय एवं धन व्यय होता है। उदाहरणार्थ, यदि हम साक्षात्कार द्वारा सूचनादाताओं से प्राथमिक सामग्री संकलन करना चाहते हैं तो हमें चयनित प्रत्येक सूचनादाता से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा आमने-सामने की स्थिति में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती हैं।

3. केवल समकालीन घटनाओं का अध्ययन-प्राथमिक सामग्री केवल समकालीन घटनाओं के अध्ययन में ही उपयोगी है। भूतकालीन घटनाओं के बारे में प्राथमिक सामग्री एकत्रित करना कठिन कार्य है। इन घटनाओं को समझने में केवल द्वितीयक सामग्री ही उपयोगी होती है।

8.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत

प्राथमिक सामग्री को अनेक स्रोतों द्वारा एकत्रित किया जा सकता है। प्राथमिक सामग्री के स्रोतों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

1. प्रत्यक्ष स्रोत- इनमें उन स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है जिनमें अनुसन्धानकर्ता प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सामग्री एकत्रित करता है। प्रत्यक्ष स्रोतों के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं-

(i) अवलोकन- प्राथमिक सामग्री को संकलित करने का सबसे प्रमुख स्रोत प्रत्यक्ष अवलोकन (निरीक्षण, प्रेक्षण अथवा पर्यवेक्षण) है। अवलोकन अनुसन्धान की एक तकनीक या प्रविधि है जिसका प्रयोग प्राथमिक सामग्री या आँकड़े एकत्रित करने के लिए किया जाता है। डॉलार्ड (Dollard) के मतानुसार, "अवलोकन अनुसन्धान के एक प्राथमिक यन्त्र के रूप में मानव-बुद्धि के प्रेक्षण तथा अनुभवों के आधार पर ज्ञान प्राप्त

करना है।" इसका प्रयोग उन सामाजिक व्यवहारों, घटनाओं एवं परिस्थितियों के अध्ययन के लिए किया जाता है जिन्हें हम घटित होते हुए देख सकते हैं। यह एक विश्वसनीय प्रविधि मानी गई है। क्योंकि एक प्राचीन कहावत है कि देखकर ही विश्वास होता है। अवलोकन में देखकर ही अध्ययन किया जाता है, अतः यह प्रविधि विश्वसनीय प्राथमिक सामग्री के संकलन में सहायक है। अवलोकन में घटनाओं का ज्यों-का-त्यों निरीक्षण किया जाता है और आँकड़ों का निष्पक्ष आलेखन किया जाता है। अतः इस प्रविधि द्वारा एकत्रित आँकडे अधिक विश्वसनीय होते हैं। इसके द्वारा वास्तविक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जिससे अतिशयोक्ति एवं पक्षपात इत्यादि की सम्भावना कम हो जाती है। सामाजिक मानवशास्त्र में तो अवलोकन प्राथमिक सामग्री का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। अवलोकन का प्रयोग सहभागी अवलोकन, असहभागी अवलोकन तथा अर्द्ध-सहभागी अवलोकन के रूप में किया जाता है।

(ii) साक्षात्कार- साक्षात्कार अनुसन्धान में प्राथमिक सामग्री संकलित करने की एक प्राचीन एवं बहुचर्चित प्रविधि है जिसका समाजशास्त्र में इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि यह आज एक सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि मानी जाती है। साक्षात्कार प्रविधि सूचनादाता के सामने बैठकर वार्तालाप का अवसर प्रदान करती है जिससे कि उसके मनोभावों, मनोवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों के बारे में भी जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसका प्रयोग केवल समाजशास्त्र में ही नहीं किया जाता अपितु अन्य सामाजिक विज्ञानों, मनोचिकित्सा, मनोविश्लेषण एवं चिकित्सा जैसे विषयों में भी अत्यधिक प्रचलन देखा जा सकता है। पामर (Palmer) के अनुसार, "साक्षात्कार दो व्यक्तियों के मध्य एक सामाजिक स्थिति की रचना करता है तथा इसमें प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों को परस्पर उत्तर प्रत्युत्तर देने पड़ते हैं।" साक्षात्कार प्रविधि द्वारा अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के बाहरी एवं आन्तरिक जीवन का अध्ययन कर सकता है। आलपोर्ट (Allport) के अनुसार यह प्रविधि सूचनादाताओं की भावनाओं, अनुभवों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों के अध्ययन में विशेष रूप से उपयोगी है।

(iii) अनुसूची- अनुसूची सामाजिक अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित प्राथमिक सामग्री एकत्रित करने का एक उपकरण है। इसका यथार्थ एवं वास्तविक सामग्री को प्रत्यक्ष रूप में संकलन करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह प्रश्नों की एक सूची है जिसे अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के पास लेकर जाता है तथा उससे प्रश्नों के उत्तर पूछ कर स्वयं उन्हें अनुसूची में अंकित करता है। बोगार्डस (Bogardus) के अनुसार, "अनुसूची तथ्यों को एकत्रित करने के लिए एक औपचारिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जो वस्तुनिष्ठ रूप में हैं एवं आसानी से प्रत्यक्ष अनुभव किए जाने योग्य हैं। अनुसूची स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा भरी जाती है।"

2. अप्रत्यक्ष स्रोत- प्राथमिक सामग्री के अप्रत्यक्ष स्रोत उन स्रोतों को कहते हैं जिनमें सूचना तो प्रथम स्तर पर एकत्रित की जाती है परन्तु अनुसन्धानकर्ता (अध्ययनकर्ता) का सूचनादाताओं से किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। इनका संकलन निम्नांकित प्रविधियों द्वारा किया जाता है

(i) डाक प्रश्नावली-डाक प्रश्नावली का विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र में फैले हुए सूचनादाताओं से प्राथमिक सामग्री संकलित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह प्राथमिक सामग्री का एक महत्त्वपुर्ण स्रोत है जिसमें कम समय में अनेक सूचनादाताओं, जोकि विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते हैं, से सूचना एकत्रित की जा सकती है। यांग (Yang) के अनुसार, "प्रश्नावली एक विशाल एवं विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों के समूह से आँकड़े एकत्रित करने की शीघ्रतम पद्धति प्रदान करती है। अपने सरलतम रूप में प्रश्नावली प्रश्नों की एक अनुसूची है जिसे कि सर्वेक्षण निदर्शन के रूप से चुने हुए व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजा जाता है।" इस प्रकार, डाक प्रश्नावली प्रश्नों की एक सूची है जिनका उत्तर स्वयं सूचनादाता भरता है, अतः इसका प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जा सकता है जिसमें सूचनादाता शिक्षित हैं।

(ii) दूरभाष साक्षात्कार- दूरभाष साक्षात्कार भी प्राथमिक सामग्री संकलन का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। दूरभाष साक्षात्कार द्वारा अनुसन्धानकर्ता पहले दूरभाष करने वाले को अपने उद्देश्य बताकर उससे सहयोग की याचना करता है तथा उसे आश्वासन देता है कि उसके द्वारा दी गई सूचना का प्रयोग केवल अनुसन्धान हेतु ही किया जाएगा। यदि सूचनादाता इससे आश्वस्त हो जाता है तो इस प्रविधि द्वारा प्राप्त प्राथमिक सामग्री भी अत्यन्त विश्वसनीय होती है।

(iii) रेडियो एवं टेलीविजन पर प्रसारित परिचर्चाएँ- आज का युग जनसंचार का युग है। दैनिक क्रियाकलापों में प्रयोग किए जाने वाले जनसम्पर्क या जनसंचार के साधन के रूप में आज रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार पत्रों का प्रमुख स्थान हैं। देशभर के अनेक मध्यवर्गीय परिवारों में लोग प्रायः बिस्तर से उठते ही सबसे पहले रेडियो या टेलीविजन चालू करते हैं अथवा प्रातःकालीन समाचार पढ़ते हैं। उन्हीं परिवारों के बच्चे सर्वप्रथम अपने मोबाइल फोन पर यह देखने के लिए नजर डालते हैं कि कोई 'मिस्ड काल' तो नहीं आई है। जनसंचार का अर्थ लाखों-करोड़ों व्यक्तियों को एक-साथ सन्देश पहुँचाना है। पहले एक थी। दो-तिहाई घरों में रेडियो समाचारों एवं मनोरंजन का प्रमुख साधन था। समय था जब जनसंचार के माध्यम के रूप में रेडियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका टेलीविजन एवं प्रिण्ट मीडिया के महत्त्व में वृद्धि के कारण ऐसा लगने लगा है कि रेडियो खत्म होता जा रहा है। उदारीकरण के बाद 2002 ई० में भारत में गैर-सरकारी स्वामित्व वाले एफ० एम० रेडियो स्टेशनों की स्थापना से रेडियो पुनः मनोरंजन के कार्यक्रमों का प्रमुख साधन बन गया है। बहत-से एफ० एम० चैनल अपने श्रोताओं को लुभाए रखने के लिए किसी विशेष प्रकार के लोकप्रिय संगीत में अपनी विशेषता रखते हैं। ऐसे एक एफ० एम० चैनल का दावा है कि वह दिन भर 'हिट गानों' को ही प्रसारित करता है। आजकल टेलीविजन ने नई सूचना एवं संचार

क्रान्ति को जन्म दे दिया है। इसे 'जादुई डिब्बा' तथा 'आँखों को अपने से चिपकाने वाला' कहा गया है। यह छोटे पर्दे पर चलचित्र ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक प्रभावशाली है। रेडयो एवं टेलीविजन पर सम सामयिक परिचर्चाएँ प्रसारित की जाती हैं। यह परिचर्चाएँ भी प्राथमिक सामग्री का महत्त्वपूर्ण अप्रत्यक्ष स्रोत मानी जाती हैं।

8.7 द्वितीयक सामग्री

द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरे के प्रयोग अथवा अनुसन्धान से प्राप्त करता है अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है इसलिए इसे कई बार प्रलेखीय सामग्री अथवा ऐतिहासिक सामग्री भी कह दिया जाता है तथा इसके स्रोतों को प्रलेखीय स्रोत (Documentary sources) अथवा ऐतिहासिक स्रोत (Historical sources) भी कहते हैं। पीटर एच० मन (Peter H. Mann) के अनुसार, "प्राथमिक स्रोतों को द्वितीयक स्रोतों, जिनके द्वारा द्वितीयक स्तर पर सामग्री एकत्रित की जाती है अर्थात् सामग्री का संकलन प्रथम स्तर पर न होकर अन्य लोगों की मूल सामग्री से किया जाता है, से भिन्न माना जाता है।" इसी प्रकार, कर्लिंगर (Kerlinger) ने लिखा है कि, "द्वितीयक सोत किसी एक ऐतिहासिक घटना अथवा स्थिति से अपने मूल स्रोतों से एक या अधिक चरण दूर हटे हुए होते हैं।" संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि द्वितीयक सामग्री में प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रलेख, रिपोर्ट, सांख्यिकीय विवेचन, पाण्डुलिपि, समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं, डायरी इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। लुण्डबर्ग (Lundberg) के मतानुसार शिलालेख, स्तूप, विभिन्न खुदाइयों से प्राप्त अस्थि-पंजर, भौतिक वस्तुएँ आदि ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त सामग्री भी द्वितीयक सामग्री कहलाती है।

स्वप्रगति परीक्षण

4. द्वितीयक समाग्री किसे कहते हैं?

.....

.....

.....

8.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में प्राथमिक एवं द्वितीयक, दोनों प्रकार की सामग्री एकत्रित की जाती है। द्वितीयक सामग्री का अनुसन्धान में अपना अलग महत्त्व है।

द्वितीयक सामग्री एवं द्वितीयक स्रोतों के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं:

1. पक्षपात से बचाव-द्वितीयक स्रोतों के प्रयोग में अनुसन्धानकर्ता द्वारा किसी प्रकार के पक्षपात करने की सम्भावना तथा सामग्री को अपने मूल्यों के अनुरूप तोड़-मरोड़ लेने की सम्भावना बहुत ही कम होती है।

2. भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन-द्वितीयक स्रोत एवं द्वितीयक सामग्री भूतकाल की घटनाओं के अध्ययन में भी सहायक है क्योंकि भूतकालीन घटनाओं का क्षेत्रीय अध्ययन सम्भव नहीं होता। समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र एवं मनोविज्ञान के क्षेत्रों में ऐतिहासिक सामग्री की व्यापक आवश्यकता होती है। समाजशास्त्र की इतिहास के अध्ययन से सम्बन्धित शाखा को 'ऐतिहासिक समाजशास्त्र' (Historical Sociology) कहते हैं।

3. समय एवं धन की बचत-द्वितीयक स्रोत अनुसन्धानकर्ता के समय, श्रम एवं पैसे के व्यर्थ प्रयोग से बचत करते हैं। यदि सूचनाएँ पहले से ही लिखित रूप में उपलब्ध हैं तो फिर से उनके संकलन की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

4. गोपनीय तथ्यों की प्राप्ति-द्वितीयक स्रोतों: विशेष रूप से डायरियों तथा आत्मकथाओं से ऐसे तथ्यों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिनके बारे में प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाएँ प्राप्त नहीं की जा सकतीं। यदि वैयक्तिक अध्ययन करते समय हमें सूचनादाताओं द्वारा लिखी गई डायरी या पत्र उपलब्ध हो पाते हैं तो उनसे अनेक ऐसे गोपनीय तथ्यों का पता चल सकता है जिसे अन्यथा सूचनादाता किसी भी अनुसन्धानकर्ता को सरलता से नहीं बताते।

5. असम्भव सूचनाओं का संकलन- द्वितीयक स्रोत असम्भव सूचनाओं के संकलन में सहायता प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए-सरकारी रिपोर्ट, पुलिस एवं कचहरी के रिकॉर्ड इत्यादि हमें कई बार अत्यन्त उपयोगी व दुर्लभ सूचनाएँ भी प्रदान करते हैं।

8.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि द्वितीयक स्रोत एवं सामग्री सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धानकर्ता को महत्त्वपूर्ण योगदान देती है. फिर भी इसके प्रयोग के कारण अनुसन्धान में अनेक दोष आ जाते हैं। द्वितीयक सामग्री अथवा स्रोतों के प्रमुख दोष निम्नांकित हैं:

1. पुनर्परीक्षण कठिन-द्वितीयक स्रोतों द्वारा उपलब्ध सामग्री या आँकड़ों की पुनर्परीक्षा करना सम्भव नहीं है क्योंकि इनमें जिस घटना का वर्णन है. वह अनुसन्धानकर्ता की मर्जी से पुनर्घटित नहीं हो सकती है।

2. कम विश्वसनीय-द्वितीयक स्रोत एवं सामग्री कम विश्वसनीय होती हैं क्योंकि इनकी जाँच करना सम्भव नहीं है। कर्लिंगर ने इसी सन्दर्भ में उचित ही कहा है कि द्वितीयक सोत सापेक्षिक रूप में कम विश्वसनीय होते हैं तथा एक द्वितीयक स्रोत अपने प्राथमिक स्रोत से जितने चरण अधिक दूर हटा हुआ होता है, उतनी ही उसमें अधिक तोड़-मरोड़ की सम्भावना रहती है और उसकी मौलिकता की विश्वसनीयता में तदनुसार कमी आती चली जाती है।

3. लेखक की अभिनति-सभी द्वितीयक प्रलेख लेखकों के विशिष्ट दृष्टिकोणों द्वारा प्रभावित हो सकते हैं, और इसीलिए हो सकता है कि इनसे अनुसन्धानकर्ता को वास्तविकता का पूरा पता न चले। सामान्यतया यह प्रमाणित करना कठिन होता है कि जिस व्यक्ति के प्रलेखों को हम द्वितीयक सामग्री के रूप में प्रयोग कर रहे हैं, वह एक निष्पक्ष, ईमानदार, सुयोग्य तथा सच्चरित्र व्यक्ति था अथवा नहीं। हो सकता है कि उसने किसी पूर्वाग्रह, संवेग, भय, भाव व अभाव से, जाने या अनजाने में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया हो और उसके प्रलेखों में अनेक त्रुटियाँ हों।

4. अपर्याप्त सूचना-सामान्यतः द्वितीयक स्रोतों द्वारा उपलब्ध सूचना अपर्याप्त होती है क्योंकि इन्हें अनुसन्धान के उद्देश्य से अथवा अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा ही संकलित नहीं किया जाता है। बहुत-सी काल्पनिक बातों का भी, हो सकता है इन स्रोतों में समावेश किया गया हो।

8.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत

द्वितीयक स्रोतों में हम अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखित रूप से उपलब्ध स्रोतों या प्रलेखों को सम्मिलित करते हैं चाहे ये प्रकाशित हो गए हों या अप्रकाशित ही हों। द्वितीयक स्रोतों में मुख्य रूप से दो प्रकार के प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है:

1. व्यक्तिगत प्रलेख-जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप से लिखा गया है तथा

2. सार्वजनिक प्रलेख-जिन्हें रिकार्ड के रूप में किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठन द्वारा तैयार किया जाता है।

8.10.1 व्यक्तिगत प्रलेख

व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करके उसके द्वारा कही गई बातों का पता लगाकर ऐसे प्रलेख तैयार करता है। जीवन-इतिहास हमें महत्त्वपूर्ण सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों के बारे

में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते हैं। परन्तु इनमें लेखक अपने गुणों को बढ़ाकर लिखता है, अतः इनके प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। जॉन डोलार्ड (John Dollard) ने इस बात पर बल दिया है कि जीवन-इतिहास को लिखते समय सामाजिक अनुसन्धानकर्ता को चाहिए कि वह व्यक्ति-विशेष की संस्कृति, पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं आन्तरिक जीवन की गहराइयों में प्रवेश पा सके तथा बिना किसी प्रकार की अनावश्यक आवृत्तियों के विस्तारसहित सभी कारकों का स्पष्ट रूप से वर्णन करे। हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन इतिहास को प्रस्तुत करना तो प्रायः सरल है, परन्तु उसके जीवन के किसी एक पक्ष का अध्ययन करना अपेक्षाकृत कठिन होता है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जीवन-इतिहास पद्धति का प्रयोग सभी परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यक्तिगत प्रलेखों से तात्पर्य ऐसे प्रलेखों या लिखित सामग्री से है जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप में लिखा जाता है। जॉन मैज (John Madge) के अनुसार, "संकुचित अर्थ में, व्यक्तिगत प्रलेख किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी निजी क्रियाओं, अनुभवों तथा विश्वासों का एक स्वतः प्रथम व्यक्ति वर्णन है।" सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इनमें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप से लिखे गए प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है। व्यक्तिगत प्रलेख सामाजिक घटनाओं को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि इनसे वास्तविक तथ्यों का पता चलता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा अत्यधिक सहायता मिलती है। परन्तु इनके प्रयोग की सबसे बड़ी कमी यह है कि व्यक्तिगत प्रलेख लेखक के निजी दृष्टिकोण द्वारा प्रभावित होते हैं। आलपोर्ट (Allport) ने व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के लिए निम्नलिखित सम्भावित कारण बताए हैं :

(i) अपने किसी कार्य के औचित्य को सिद्ध करने हेतु,

(ii) अपने दोषों की स्वीकृति हेतु,

(iii) घटनाओं के क्रमबद्ध वर्णन की इच्छा को चरितार्थ करने हेतु,

(iv) साहित्यिकता का आनन्द लेने हेतु,

(v) व्यक्तिगत प्रलेखों में अनुसन्धान हेतु,

(vi) मानसिक तनाव से छुटकारा पाने हेतु.

(vii) धन प्राप्ति हेतु.

(viii) किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति हेतु,

(ix) किसी चिकित्सा सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने हेतु,

(x) अपनी योग्यताओं को प्रदर्शित करने हेतु,

(xi) किसी सिद्धान्त या 'वाद' को लोकप्रिय बनाने हेतु,

(xii) जनसेवा एवं कल्याण हेतु तथा

(xiii) अमरत्व प्राप्त करने हेतु।

व्यक्तिगत प्रलेखों में सामान्यतः जीवन-इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि प्रलेखों अथवा स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है।

इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :

1. जीवन-इतिहास- जीवन-इतिहास से तात्पर्य विस्तृत आत्मकथा से है। जॉन मैज (John Madge) के अनुसार, "सीमित अर्थ में, जीवन-इतिहास का अभिप्राय विस्तृत आत्मकथा से है। परन्तु व्यवहार में इसका सामान्य प्रयोग मोटे रूप से किसी भी जीवन सम्बन्धी सामग्री के लिए किया जाता है।" अधिकांश जीवन-इतिहास महान् व्यक्तियों द्वारा स्वयं अपने बारे में अथवा अन्य लोगों द्वारा उनके बारे में लिखे जाते हैं। जीवन-इतिहास मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं-**(क)** स्वतः लिखित आत्मकथा, जोकि व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से अपने बारे में लिखी जाती है, **(ख)** प्रेरित आत्म-लेख, जिसे व्यक्ति अपने बारे में परन्तु अन्य व्यक्तियों से प्रेरित होकर लिखता है तथा **(ग)** संकलित जीवन-इतिहास, जिसे कोई भी व्यक्ति लिख सकता है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें जीवन-इतिहास पद्धति सबसे अधिक उपयोगी है। इसका प्रयोग निम्नांकित परिस्थितियों में विशेष रूप से किया जा सकता है:

(i) गहन एवं सूक्ष्म अध्ययनों में-जीवन-इतिहास का प्रयोग किसी इकाई के गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए किया जाता है। यह गहन एवं सूक्ष्म अध्ययनों में विशेष रूप से सहायक प्रविधि है।

(ii) गुणात्मक तथ्यों के संकलन में- यदि किसी व्यक्ति के बारे में गुणात्मक आँकड़े एकत्रित करने हैं अर्थात् उसके जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित आँकड़ें एकत्रित करने हैं तो जीवन-इतिहास अधिक उपयोगी है।

(iii) परिवर्तन एवं विकास के अध्ययन में- यदि किसी व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन का अध्ययन करना है अथवा उसके विकास एवं परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना है, तो जीवन-इतिहास एक उपयोगी प्रविधि हो सकती है।

(iv) व्यक्तित्वों के अध्ययन में- यदि किसी व्यक्ति की भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं परिस्थितियों का पता लगाना है तो जीवन-इतिहास एक उपयोगी एवं श्रेष्ठ प्रविधि हो सकती है।

(v) आन्तरिक जीवन के अध्ययन में- यदि किसी व्यक्ति के आन्तरिक जीवन के बारे में आँकड़े एकत्रित करने हैं तो इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जीवन-इतिहास एक उपयुक्त प्रविधि है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन-इतिहास पद्धति का प्रयोग प्रत्येक प्रकार के अनुसन्धान में नहीं किया जा सकता है। इसका प्रयोग केवल सीमित परिस्थितियों में ही सम्भव है।

2. डायरी-डायरी एक निजी प्रलेख है। कुछ लोग अपने दैनिक जीवन की प्रमुख घटनाओं, अनुभवों तथा वर्तमान परिस्थितियों के बारे में अपनी प्रतिक्रियाओं को विस्तृत अथवा सांकेतिक रूप में डायरी में लिखते रहते हैं। क्योंकि यह गोपनीय प्रलेख है अतः इसमें लेखक वास्तविक एवं यथार्थ बातें ही लिखता है। डायरियाँ विश्वसनीय सामग्री या आँकड़ों के स्रोत हैं तथा उनसे लिखने वाले के बारे में अनेक ऐसे रहस्यों का भी पता चलता है जिन्हें सामान्य व्यक्ति नहीं जानते। यदि डायरी में संकेतों द्वारा लिखा गया है तो उनका अर्थ लगाना कठिन हो सकता है तथा साथ ही डायरी उपलब्ध हो पाना भी एक कठिन कार्य है।

3. पत्र-व्यक्तियों द्वारा लिखे गए निजी पत्र भी उनके बारे में महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते हैं। पत्रों द्वारा प्राप्त सामग्री अधिक विश्वसनीय होती है क्योंकि इन्हें व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक लिखता है तथा साथ ही गोपनीय बातों का भी इनसे पता चल जाता है। पारिवारिक तनाव या वैवाहिक जीवन के अध्ययन में पत्र काफी उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं। पत्रों का उपलब्ध हो पाना एक कठिन कार्य है तथा साथ ही यदि एक ही पक्ष के पत्उपलब्ध हों या बीच के कुछ पत्र न मिलें तो द्वितीयक सामग्री में क्रमबद्धता नहीं रहती।

4. संस्मरण-संस्मरण ऐतिहासिक सामग्री के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। यात्राओं, जीवन की घटनाओं अथवा महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों के बारे में लिखे गए विवरण संस्मरण कहलाते हैं। संस्मरणों द्वारा यद्यपि कई बार बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हो जाती है फिर भी इनमें सामान्यतः क्रमबद्धता का अभाव पाया जाता है और साथ ही संस्मरण अति महत्त्वपूर्ण घटनाओं के बारे में ही उपलब्ध होते हैं।

यद्यपि जीवन-इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण जैसे व्यक्तिगत प्रलेख व्यक्तित्व के गहन, सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन में अति उपयोगी होते हैं, फिर भी इसका सामाजिक अनुसन्धानों में सीमित पैमाने पर ही प्रयोग किया जाता है।

ऐसे प्रलेखों के प्रमुख दोष या अवगुण निम्नलिखित हैं :

1. अस्पष्ट तथा अवैज्ञानिक- जीवन-इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि स्रोत असंगठित, अनियन्त्रित एवं अस्पष्ट होने के कारण अवैज्ञानिक माने जाते हैं क्योंकि इसमें व्यक्तित्व का चयन करने में नियमों का पालन नहीं किया जाता है। साथ ही, अध्ययन हेतु चयनित व्यक्तित्वों पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण रखने का प्रयास नहीं किया जाता है। इनमें वस्तुनिष्ठता का भी अभाव पाया जाता है।

2. सीमित अध्ययन-जीवन-इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि का सबसे बड़ा दोष इनके द्वारा केवल एक अथवा सीमित व्यक्तित्वों का ही अध्ययन हो पाना भी है।

3. दोषपूर्ण सामान्यीकरण-पहले तो जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि को आधार मानकर किए जाने वाले अध्ययन सामान्यीकरण में सहायक ही नहीं हैं क्योंकि इससे केवल एक अथवा कुछ व्यक्तित्वों का ही अध्ययन किया जाता है, तथा दूसरे यदि सामान्यीकरण किया भी जाता है तो इकाईयों का प्रतिनिधित्व न होने के कारण जो सामान्यीकरण किया भी जाता है वह दोषपूर्ण होता है। गुड एवं हैट (Goode and Hatt) ने जीवन-इतिहास एवं वैयक्तिक अध्ययन सम्बन्धी इसी दोष को स्वेच्छानुसार तदर्थ सैद्धान्तीकरण (Adhoc theorizing) करना कहा है।

4. पक्षपात-जीवन- इतिहास पद्धति में व्यक्तित्व के सभी पक्षों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा यह अध्ययन कालक्रम के अनुसार (दीर्घकालिक) होता है, अतः कभी-कभी अनुसन्धानकर्ता को सूचनादाता से हमदर्दी हो जाने की सम्भावना हो जाती है। इससे पक्षपात की सम्भावना काफी बढ़ जाती है। यदि ऐसा है तो रिपोर्ट लिखने में भी अनुसन्धानकर्ता तथ्यों को सूचनादाता के पक्ष में तोड़-मरोड़ कर लिख सकता है जिससे हो सकता है कि वास्तविकता का पता ही न चले।

5. अप्रमाणित तथ्य-जीवन-इतिहास द्वारा संकलित तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच करना एक कठिन कार्य है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका दोहरा व्यक्तित्व होता है, अर्थात् दूसरे उनके बारे में जो जानते हैं, वे वास्तव में वैसे नहीं होते। ऐसी परिस्थिति में हो सकता है कि दूसरों द्वारा उनके बारे में बताई गई सूचनाएँ वास्तविक न हों। यदि ऐसे व्यक्ति ने अपना जीवन-इतिहास स्वयं लिखा है तो वह भ्रामक भी हो सकता है।

6. अत्यधिक आत्म-विश्वास- जीवन-इतिहास प्रविधि के प्रयोग में क्योंकि अनुसन्धानकर्ता व्यक्ति के बारे में गहराई से अध्ययन करता है तथा उसे प्रभावित करने वाले सभी कारकों का पता लगाता है, इसलिए उसमें झूठा आत्म-विश्वास पैदा हो जाता है कि वह उस व्यक्ति को पूरी तरह से समझ गया है तथा बार-बार उसे यही महसूस होता है कि वह समस्या की गहराई में पहुँच गया है। यह आत्म-विश्वास अनुसन्धानकर्ता के अध्ययन को प्रभावित करता है।

उपर्युक्त दोषों के बावजूद, जीवन-इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि। अध्ययन इकाई के सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। मनोचिकित्सा में इनका विशेष महत्त्व है। इन दोषों का यदि हम मूल्यांकन करें तो यह भी स्पष्ट होता है कि सभी दोष इन पद्धतियों के ही नहीं हैं, अपितु कुछ दोष इसे प्रयोग करने वाले अनुसन्धानकर्ता के भी हैं जिन्हें कुछ सावधानियों द्वारा दूर किया जा सकता है।

8.10.2 सार्वजनिक प्रलेख

सार्वजनिक प्रलेखों में ऐसे प्रकाशित अथवा अप्रकाशित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जोकि किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाते हैं। कुछ प्रलेखों को तो इन संगठनों द्वारा प्रकाशित करवा दिया जाता है। परन्तु कुछ को गोपनीय रखने के लिए अप्रकाशित ही रखा जाता है। अप्रकाशित प्रलेख मिलना एक कठिन कार्य है।

सार्वजनिक प्रलेख अधिकतर सरकारी रिपोटों के रूप में होते हैं। परन्तु अनेक प्रलेखों को उपलब्ध कर पाना एक कठिन कार्य होता है तथा अनेक प्रलेख घटना का केवल ऊपरी वर्णन ही प्रस्तुत करते हैं।

प्रकाशित प्रलेखों में मुख्य रूप से सार्वजनिक संगठनों की रिपोर्ट, समाचारपत्र एवं पत्र-पत्रिकाएँ, प्रकाशित आँकड़े तथा पुस्तक-सूचियाँ सम्मिलित की जाती हैं।

इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

1. सार्वजनिक संगठनों की रिपोर्ट-अनेक सार्वजनिक संगठन अपना औचित्य सिद्ध करने अथवा पिछले वर्षों में हुई प्रगति के बारे में समय-समय पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करवाते रहते हैं जिनसे इन संगठनों के बारे में काफी सूचनाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संगठनों, लोकसभा, राज्यसभा की कार्यवाही की रिपोर्ट तथा अन्य सरकारी दस्तावेज कई बार महत्त्वपूर्ण सूचनाओं के स्रोत होते हैं।

2. समाचारपत्र एवं पत्र-पत्रिकाएँ- समाचारपत्र तथा पत्र-पत्रिकाएँ भी द्वितीयक सामग्री के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं जिनसे सामाजिक घटनाओं, सामाजिक परिस्थितियों तथा सरकार की नीतियों इत्यादि के बारे में आँकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं।

3. प्रकाशित आँकड़े-सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न प्रकार के आँकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। सरकारी गजेटियर, जनगणना रिपोर्ट, देश की जनसंख्या, उत्पादन, आयात-निर्यात के बारे में प्रकाशित आँकड़ों का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान में विशेष महत्त्व रखता है। केन्द्र तथा राज्य सरकारें समय-समय पर राष्ट्र या प्रदेश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का समय-समय पर सर्वेक्षण एवं अनुसन्धान कराती रहती हैं और उन्हें जनसाधारण के उपयोग हेतु विभिन्न माध्यमों से प्रकाशित कराती रहती हैं। इनमें महत्त्वपूर्ण आँकड़ों का समावेश होता है जोकि अनुसन्धान में उपयोगी सिद्ध होते हैं।

4. पुस्तक-सूचियाँ- पुस्तक-सूचियाँ भी विषय से सम्बन्धित सर्वेक्षणों या समस्या से सम्बन्धित विभिन्न स्रोतों का ज्ञान देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अप्रकाशित प्रलेखों में मुख्य रूप से निम्नलिखित स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है :

(i) सरकारी प्रलेख,

(ii) दुर्लभ हस्तलेख,

(iii) शोध प्रतिवेदन

(iv) अप्रकाशित लोक-साहित्य, लोकगीत तथा ऐतिहासिक महत्त्व के केन्द्रों पर लिखे हुष्ट श्लोक, सूक्तियाँ या शिलालेख इत्यादि।

किसी भी अनुसन्धान में प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रलेखों का प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना आवश्यक है। इनका प्रयोग करने से पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इनमें सम्मिलित सामग्री कहाँ तक विश्वसनीय है तथा सामग्री के संकलन हेतु किन स्रोतों का प्रयोग किया गया है। साथ ही, समग्र या निदर्शन की इकाईयों, सामग्री संकलित करने वालों की योग्यताओं तथा सामग्री की परिशुद्धता को बनाए रखने के प्रयासों के बारे में ज्ञात होना भी आवश्यक है। कॉनर (Connor) ने इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि, "सामग्री प्रमुख रूप से अन्य स्रोतों से संकलित सामग्री, अत्यधिक सावधानी से उपयोग में लानी चाहिए, नहीं तो वह अनुसन्धानकर्ता को गर्त में ढकेल सकती है।" बाउले (Bowley) ने प्रकाशित प्रलेखों के सन्दर्भ में यह चेतावनी दी है कि, "प्रकाशित सामग्री को बिना मूल अर्थ एवं उसकी सीमाएँ ज्ञात किए जैसे-का-तैसा प्रयोग में लाना खतरे से खाली नहीं है। अतः यह हमेशा आवश्यक है कि उन पर आधारित तर्कों की आलोचना कर ली जाए।"

8.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर

सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धान समस्या की प्रकृति के आधार पर प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का संकलन किया जाता है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं :

1. संकलन के आधार पर अन्तर-प्राथमिक सामग्री का संकलन स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री प्रलेखों के रूप में उपलब्ध होती है। प्राथमिक सामग्री का संकलन अध्ययन-क्षेत्र में जाकर किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री प्रलेखों के रूप में पुस्तकालय में उपलब्ध होती है।

2. मौलिकता तथा विश्वसनीयता के आधार पर अन्तर- प्राथमिक सामग्री द्वितीयक सामग्री की अपेक्षा अधिक मौलिक एवं विश्वसनीय होती है क्योंकि इसका स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा क्षेत्र अध्ययन (आनुभविक अध्ययन) के आधार पर संकलन किया जाता है।

3. स्रोत के आधार पर अन्तर- प्राथमिक सामग्री का संकलन अवलोकन, साक्षात्कार तथा अनुसूची एवं प्रश्नवली द्वारा किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री का संकलन लिखित प्रलेखों से अन्तर्वस्तु विश्लेषण द्वारा किया जाता है।

4. धन तथा समय के आधार पर अन्तर- प्राथमिक सामग्री के संकलन में धन तथा समय अधिक लगता है, जबकि द्वितीयक सामग्री के संकलन में कम।

5. पुनर्परीक्षण के आधार पर अन्तर- प्राथमिक सामग्री के बारे में यदि किसी प्रकार का सन्देह हो तो इसे पुनर्परीक्षण द्वारा दूर किया जा सकता है। सामान्यतः द्वितीयक सामग्री की जाँच करना सम्भव नहीं है।

6. सूचनाओं की पर्याप्तता के आधार पर अन्तर - प्राथमिक सामग्री का संकलन अनुसन्धानकर्ता द्वारा समस्या के विभिन्न पहलुओं को सामने रखकर किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री के लिए हमें प्रलेखों पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रलेखों में उपलब्ध सूचनाएँ अपर्याप्त होती हैं क्योंकि इन्हें अनुसन्धानकर्ता के उद्देश्य के अनुरूप तैयार नहीं किया जाता।

संक्षेप में, प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में पाए जाने वाले प्रमुख अन्तर निम्न प्रकार हैं :

क्रमांक	अंतर का आधार	प्राथमिक सामग्री	द्वितीयक सामग्री
1	संकलन	स्वयं अनुसंधानकर्ता द्वारा अध्ययन क्षेत्र में जाकर	लिखित स्रोतों से
2	मौलिकता तथा विश्वसनीयता	अधिक मौलिक एवं अधिक विश्वसनीय	कम मौलिक एवं कम विश्वसनीय
3	स्रोत	अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि	अन्तर्वस्तु विश्लेषण
4	धन तथा समय	अधिक धन एवं समय	कम धन और समय
5	पुनः परीक्षण	संभव	असंभव (कठिन)
6	सूचनाओं की पर्याप्तता	पर्याप्त	अपर्याप्त

पीटर एच० मन का कहना है कि यदि हम जॉन मैज (John Madge) द्वारा रिकॉर्ड (Record) तथा रिपोर्ट (Report) के अन्तर को प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों के सन्दर्भ में देखें तो प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों में अन्तर और अधिक स्पष्ट हो सकता है।

इसे उन्होंने निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है:

प्राथमिक	द्वितीयक
लेखक द्वारा सामयिक संकलित	प्राथमिक समकालीन स्रोतों की नकल
उदाहरण : कचहरी के रिकॉर्ड।	उदाहरण : सहायकों के क्षेत्र-कार्य पर आधारित
हैन्सर्ड।	शोध रिपोर्ट।
जनसंख्या की जनगणना।	वास्तविक प्रलेखों पर आधारित
समाचारपत्र रिपोर्ट (?)	ऐतिहासिक अध्ययन।
सम्पर्क।	जनगणना आँकड़ों पर आश्रित
पत्र।	सांख्यिकीय अनुसन्धान
टेप रिकार्डिंग।	अन्य लोगों के पत्राचार पर आश्रित
फिल्म।	अनुसन्धान
'मैं इसे अभी लिख रहा हूँ	'उसने इसे घटनास्थल पर ही लिखा'
घटना घटित होने के पश्चात् लेखक द्वारा संकलित	प्राथमिक पूर्व व्यापी स्रोतों की नकल
उदाहरण : व्यक्तिगत डायरी।	उदाहरण : डायरियों अथवा जीवन इतिहासों
संस्था के निरीक्षण के पश्चात् लिखी गई रिपोर्ट।	पर आश्रित अनुसन्धान।
'मैंने इसे घटना के बाद लिखा'	'उसने इसे घटना के बाद लिखा'

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में न केवल स्रोतों की दृष्टि से अन्तर होता है, अपितु मौलिकता एवं विश्वसनीयता में भी अन्तर होता है।

8.12 सार-संक्षेप

सामाजिक अनुसन्धान का अर्थ सामाजिक घटनाओं अथवा तथ्यों के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना, प्राप्त ज्ञान में वृद्धि करना अथवा जिन सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्माण किया जा चुका है, उनमें किसी भी प्रकार का संशोधन करना है।

सामाजिक अनुसन्धान में मुख्यतः प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का प्रयोग किया जाता है।

सामाजिक अनुसन्धान में विविध प्रकार की विधियों एवं प्रविधियों द्वारा सामग्री एकत्रित की जाती है।

प्राथमिक सामग्री उस सामग्री, आँकड़ों या सूचनाओं को कहते हैं जोकि अनुसन्धानकर्ता (अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा) स्वयं प्राप्त की जाती है अर्थात् प्रथम स्तर (First hand) पर एकत्रित सामग्री ही प्राथमिक सामग्री कहलाती है।

सामाजिक अनुसन्धान में हमारा प्रयास यथासम्भव प्राथमिक सामग्री को एकत्रित करना है क्योंकि प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री या आँकड़े अधिक विश्वसनीय होते हैं।

द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरे के प्रयोग अथवा अनुसन्धान से प्राप्त करता है अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता।

सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धान समस्या की प्रकृति के आधार पर प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का संकलन किया जाता है।

8.13 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्त्वपूर्ण चरण सामग्री अथवा आँकड़े एकत्रित करना है क्योंकि इस सामग्री के आधार पर ही नवीन ज्ञान की प्राप्ति या पहले से प्राप्त ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। सामग्री के संकलन में जितनी अधिक सावधानी रखी जाती है, निष्कर्ष उतने ही अधिक विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक होते हैं।

2. एक समाजशास्त्री अनुसन्धान सम्बन्धी सामग्री का संकलन दो प्रमुख स्रोतों से करता है-सामग्री के प्राथमिक स्रोत या क्षेत्रीय स्रोत तथा सामग्री के द्वितीयक स्रोत या ऐतिहासिक स्रोत। सामग्री या आँकड़ों के प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राथमिक सामग्री एकत्रित की जाती है, जबकि ऐतिहासिक स्रोतों द्वारा द्वितीयक सामग्री या ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की जाती हैं। प्राथमिक स्रोत वे साधन हैं

जो घटना, व्यक्ति या संस्था के विषय में प्रथम साक्षी का कार्य करते हैं। द्वितीयक स्रोत वे साधन हैं जो अनुसन्धानकर्ता के लिए प्रथम साक्षी नहीं है क्योंकि इनमें उसका स्रोत से सम्बन्धित घटना, व्यक्ति या संस्था से तात्कालिक सम्बन्ध नहीं होता।

3. प्राथमिक सामग्री में वे मौलिक सुचनाएँ सम्मिलित की जाती हैं जोकि एक अनुसन्धानकर्ता स्वयं अध्ययन-क्षेत्र में जाकर अपनी अध्ययन समस्या की विवेचना हेतु निदर्शन द्वारा चयनित सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची या प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है। प्राथमिक सामग्री को प्राथमिक इस अर्थ में कहा जाता है क्योंकि इसे अनुसन्धानकर्ता अपने अध्ययन उपकरणों द्वारा प्रथम बार स्वयं एकत्रित करता है। इसलिए प्राथमिक सामग्री संकलित करने के दो प्रमुख स्रोत हो सकते हैं-प्रथम, सूचनादाताओं से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएँ तथा द्वितीय, क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष अवलोकन।

4. द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरे के प्रयोग अथवा अनुसन्धान से प्राप्त करता है अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है इसलिए इसे कई बार प्रलेखीय सामग्री अथवा ऐतिहासिक सामग्री भी कह दिया जाता है तथा इसके स्रोतों को प्रलेखीय स्रोत (Documentary sources) अथवा ऐतिहासिक स्रोत (Historical sources) भी कहते हैं।

8.14 अभ्यास-प्रश्न

1. प्राथमिक सामग्री किसे कहते हैं? इसके प्रमुख स्रोत बताइए।

2. द्वितीयक सामग्री किसे कहते हैं? इसके प्रमुख स्रोत कौन-कौन से हैं?

3. प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

4. प्राथमिक सामग्री क्या है? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।

5. द्वितीयक सामग्री क्या है? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।

6. सामाजिक अनुसन्धान में व्यक्तिगत प्रलेखों के प्रयोग पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

7. (अ) सार्वजनिक प्रलेख

   (ब) प्राथमिक सामग्री के प्रत्यक्ष स्रोत

   (स) प्राथमिक सामग्री के अप्रत्यक्ष स्रोत

(द) जीवन इतिहास।

8.15 पारिभाषिक शब्दावली

प्राथमिक सामग्री प्राथमिक सामग्री उस सामग्री (आँकड़ों या सूचनाओं) को कहते हैं जोकि अनुसन्धानकर्ता (अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा) स्वयं प्राप्त की जाती है।

द्वितीयक सामग्री-द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरों द्वारा किए गए अनुसन्धान से प्राप्त करता है, अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है।

जीवन इतिहास-जीवन इतिहास शब्द का प्रयोग विस्तृत आत्मकथा अथवा किसी अन्य अन्वेषक द्वारा व्यक्ति-विशेष के बारे में लिखी गई जीवन सम्बन्धी आत्मकथा या विवरण के लिए किया जाता है।

सार्वजनिक प्रलेख-सार्वजनिक प्रलेखों में ऐसे प्रकाशित अथवा अप्रकाशित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जोकि किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाते हैं।

जनसंचार-जनसंचार से अभिप्राय संचार के उन माध्यमों से है जो किसी बात को एक ही समय पर लाखों-करोड़ों व्यक्तियों तक पहुँचाने की क्षमता रखते हैं। रेडियो, समाचार-पत्र, फिल्में, टेलीविजन आदि इसके प्रमुख माध्यम माने जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Allport, Gordon W., The Use of Personal Documents in Psychological Science, New York: Social Science Research Council, 1951.
- Bogardus, E. S., Introduction to Sociology, New York: Charles Scribner's Sons, 1922.
- Bowley, A. L., An Elementary Manual of Statistics, London: Macdonald and Evans, 1910.

- Connor, L. R., Statistics in Theory and Practice, London: Sir Isaac Pitman & Sons, 1964.
- Dollard, John, Criteria for the Life History with Analyses of Six Notable Documents, New York: P. Smith, 1949,
- Kerlinger, F. N., Foundations of Behavioural Research, New York: Holt, Rinehart, and Winston, 1979.
- Lundberg, G. A., Social Research, New York: Longmans Green and Co., 1951.
- Madge, John, The Tools of Social Science, New York: Longmans Green and Co., 1953.
- Mann, Peter H., Methods of Sociological Enquiry, Oxford: Blackwell, 1968.
- Palmer, V. M., Field Studies in Sociology, Chicago: Chicago University Press, 1928.
- Yang, Hsin Pao, Fact-finding with Rural People, Rome Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1955.

इकाई- 9 **अवलोकन**

Oservation

इकाई की रूपरेखा

9.0 अध्ययन के उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अवलोकन का अर्थ तथा परिभाषा

9.2.1 अवलोकन की विशेषताएँ

9.2.2 अवलोकन के प्रकार

9.3 अनियंत्रित अवलोकन

9.3.1 सहभागी अवलोकन का अर्थ एवं परिभाषा

9.3.2 सहभागी अवलोकन के गुण एवं सीमाएं

9.3.3 असहभागी अवलोकन का अर्थ एवं परिभाषा

9.3.4 असहभागी अवलोकन के गुण एवं सीमाएं

9.3.5 सहभागी अवलोकन तथा असहभागी अवलोकन में अन्तर

9.3.6 अर्द्धसहभागी अवलोकन

9.4 अनियंत्रित अवलोकन के गुण एवं सीमाएं

9.5 नियंत्रित अवलोकन

9.5.1 नियंत्रित अवलोकन के प्रकार

9.5.2 नियंत्रित अवलोकन तथा अनियंत्रित अवलोकन में अन्तर

9.6 सामूहिक अवलोकन

9.7 अवलोकन के गुण एवं सीमाएं

9.8 सार-संक्षेप

9.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.10 अभ्यास-प्रश्न

9.11 परिभाषिक शब्दावली

संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान की सर्वाधिक प्रचलित और प्राच्य प्रविधि अवलोकन के नाम से जानी जाती है। यह मानव द्वारा सहज ही में की जाने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत वह अपने आस-पास के पर्यावरण में घटित होने वाली क्रियाओं एवम् घटनाओं का सूक्ष्म या स्थूल अवलोकन करता रहता है। यह सभी ज्ञान-विज्ञान के प्रस्फुटन का एक महत्वपूर्ण आधार है। उदाहरण स्वरूप, न्यूटन के द्वारा गुरुत्वाकर्षण का नियम और मैडम क्यूरी द्वारा रेडियोधर्मिता के सिद्धान्त को अवलोकन विधि के द्वारा ही अन्वेषित किया गया। न केवल भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में अपितु सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में भी अवलोकन विधि पर्याप्त रूप से प्रचलित रही है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं का अध्ययन अनिवार्य रूप से अवलोकन की सहायता से किया जाता है। ऐसी प्रत्येक परिस्थिति जिसके मनुष्य व्यवहार करता है एवम् सामुदायिक समस्याओं, व्यवहारों एवम् घटनाओं के अध्ययन हेतु भी अवलोकन विधि महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा;

- अवलोकन की परिभाषा देना,
- अवलोकन की विशेषताओं की चर्चा करना,
- अवलोकन के प्रकारों तथा उनके गुण-दोष को बताना,
- अवलोकन के प्रकारों में अंतर की चर्चा करना।

9.2 अवलोकन का अर्थ तथा परिभाषा

अवलोकन शब्द अंग्रेजी शब्द आब्जरवेशन (observation) का पर्याय है। शाब्दिक दृष्टि से इसका अर्थ है निरीक्षण करना, देखना, विचार करना। यह 'आब्जर्व' शब्द से बना हुआ है जिसका अर्थ परीक्षा करना, ध्यान देना आदि है। इस प्रकार इसका सीधा अर्थ है आँखों से देखना। सामान्य शब्दों में अवलोकन का तात्पर्य है कि किसी विशेष विषय से संबंधित घटनाओं को व्यवस्थित रूप से देखना तथा घटनाओं के कार्य कारण संबंध को समझाना। किन्तु सामाजिक अनुसंधान की एक व्यवस्थित पद्धति के रूप में अवलोकन का अपना एक पृथक अर्थ है।

प्रो0 गुडे एवं हॉट के अनुसार, ''विज्ञान अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा उसे सत्यापन के लिए अन्ततः आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही पुनः लौटना पड़ता है।''

पी० वी० यंग के अनुसार, "घटनाओं को स्वतः घटित होने के समय आँखों द्वारा एक किसी व्यक्ति द्वारा सुविचारित रूप से अध्ययन करने को अवलोकन कहते हैं। " उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि अवलोकन की प्रक्रिया में नेत्रों का मुख्य रूप से प्रयोग होता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से इस बात की पुष्टि होती है कि, अनुसंधान-सामग्री संग्रह करते समय प्राथमिक सूचनाओं को एकत्र करने हेतु अवलोकन प्रविधि एक प्रत्यक्ष और मुख्य विधि है। अवलोकन प्रणाली के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता घटनाओं को प्रत्यक्षतः नेत्रों की सहायता से देखता है, कानों से श्रवण करता है और जो कुछ भी ग्रहण करता है, उस समस्त सामग्री का संचयन करता है। इस प्रकार दृष्य एवम् श्रव्य, दोनों प्रक्रियाओं द्वारा अवलोकनकर्ता प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष, दोनों ही प्रकार से अवलोकन की क्रिया कर सकता है। पर यह आवष्यक है कि सभी स्थितियों में अवलोकन की प्रक्रिया का व्यवस्थित रीति से किया जाना अनिवार्य है।

9.2.1 अवलोकन की विशेषताएं

अवलोकन की विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं के आधार पर इसकी निम्नलिखित विशेषताओं को रेखां कित किया जा सकता है:

1) मानव इन्द्रियों का प्रयोग- मानव की पाँच इन्द्रियों में से नेत्रों, कान एवम् वाणी को व्यवस्थित रूप से अवलोकन की क्रिया में प्रयोग किया जाता है परन्तु इनमें से एक मानव-इन्द्री अवलोकन की प्रक्रिया में विषेष रूप से महŸवपूर्ण और आवश्यक होती है, वह है मानव-नेत्र। नेत्रों के माध्यम से ही वह घटित होने वाली घटना को देखता है और उनको लिखकर या अन्य माध्यम से सुरक्षित कर संचयित कर लेता है।

2) प्राथमिक सामग्री का संकलन- अवलोकन के अन्तर्गत सूचनाओं को प्राथमिक रूप से संग्रहीत करने हेतु अनुसंधानकर्ता स्वयं घटना के घटित होने वाले स्थल पर उपस्थित रहकर अवलोकन द्वारा स्थिति का आकलन करता है।

3) कार्य-कारण सम्बन्ध का पता लगाना- अवलोकन से साधारणतया यह अर्थ लगाया जाता है कि घटनाओं को केवल अवलोकनकर्ता द्वारा नेत्रों से देखा जाना। परन्तु अवलोकन को वैज्ञानिक अर्थ में पारिभाषित किया जाए तो यह केवल घटनाओं का निरीक्षण-मात्र न होकर घटित घटना के मध्य विद्यमान कार्य-परिणाम के सम्बन्ध को ज्ञात करना है। अवलोकन में अनुसंधानकर्ता द्वारा स्वयं परिस्थिति या समस्या का अवलोकन इस प्रकार किया जाता है कि उसे घटना के कार्य-कारण सम्बन्धों का उचित ज्ञान हो जाए।

4) व्यावहारिक एवम् अनुभवाश्रित अध्ययन- अवलोकन का आधार कपोल-कल्पना न होकर अवलोकनकर्ता द्वारा किया गया प्रत्यक्ष अवलोकन है जोकि अनुभवजन्य होता है। सामाजिक अनुसंधान

में समस्या या समुदाय में से जिसके भी अवलोकन में अनुभव का आश्रय लिया जाता है, वह अनुसंधान हेतु हितकारी सिद्ध होता है।

5) विचारपूर्वक- बिना किसी निश्चित सोच के अवलोकन उपयोगी नहीं होता अपितु पहले समस्या या घटना से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर विचार करना , विविध दृष्टिकोणों से उस पर चिन्तन करना अवलोकन को सशक्त करता है।

6) सूक्ष्मता- घटना या परिस्थिति को प्रत्यक्ष रूप से घटित होता देखने के परिणामस्वरूप अध्ययनकर्ता को उसका सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त होता है, जोकि अवलोकन विधि की विषेषता है।

7) सामूहिक व्यवहार का अध्ययन- अन्य प्रविधियों की तुलना में केवल अवलोकन विधि ही एकमात्र ऐसी प्रविधि है जो सामूहिक व्यवहार के अध्ययन हेतु सहायक सिद्ध होती है। सामूहिक व्यवहारों की प्रकृति ऐसी होती है कि वह अकस्मात् उत्पन्न होते हैं और उनकी आवृति पुनः हो अथवा न हो, यह कहना अत्यन्त कठिन होता है। अवलोकन विधि के द्वारा अध्ययनकर्ता स्वयं देखकर सामूहिक व्यवहार के वैशिष्ट्य को जान सकता है।

8) निष्पक्षता- अवलोकन विधि के अन्तर्गत घटना का अवलोकन अध्ययनकर्ता द्वारा बिना किसी पूर्वाग्रह या कानों सुनी बात पर विष्वास करके नहीं किया जा सकता है अपितु अपने नेत्रों की सहायता से स्वयं घटना को देखकर समुचित जाँच-परख करता है।

9) प्रत्यक्ष विधि-अवलोकन विधि में अध्ययनकर्ता प्रत्यक्षतः घटना का अवलोकन करता है और तदनुसार घटना से सम्बन्धित व्यक्तियों से बातचीत कर सूक्ष्म निरीक्षण करके उनके विचार और घटना के प्रति अभिव्यक्त प्रतिक्रिया को समझने का प्रयास और उनकी उपयुक्त जाँच-परख के द्वारा प्राप्त तथ्यों को एकत्र करता है।

9.2.2 अवलोकन के प्रकार

समाज में घटित होने वाली घटनाओं की विविधता को दृष्टिगत रखते हुए अवलोकन को केवल एक विधि के माध्यम से क्रियान्वित किया जा सकता है। सामाजिक घटनाओं की जटिलता को समझने हेतु अवलोकन के अनेक प्रकारों का निर्माण हुआ, जिनको निम्न प्रकार प्रदर्षित किया जा सकता है:

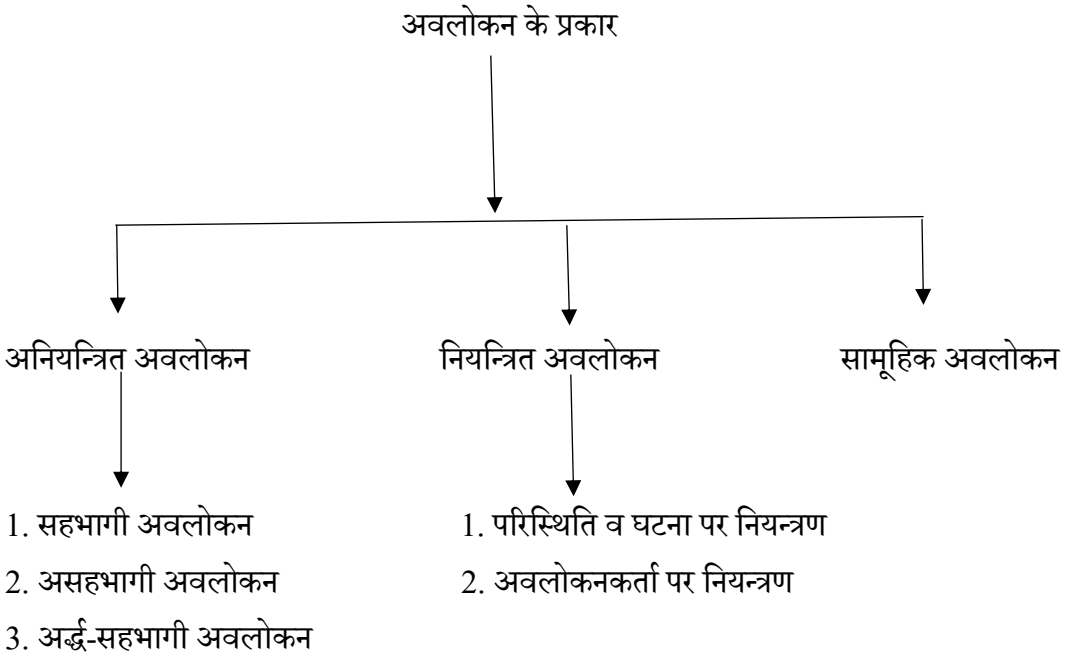

स्वप्रगती प्रश्न-:

1- अवलोकन का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी परिभाषा दीजिए |

.....

.....

.....

9.3 अनियन्त्रित अवलोकन का अर्थ एवं परिभाषा

जब अवलोकन इस प्रकार किया जाए कि अध्ययन-विषय या अनुसंधानकर्ता पर अवलोकन की प्रक्रियान्तर्गत कोई नियन्त्रण करने का प्रयास न किया जाए, तब इसे अनियन्त्रित अवलोकन के नाम से सम्बोधित किया जाता है। घटनाओं को उनके प्राकृतिक एवम् यथार्थ स्वरूप में अध्ययन करना इस प्रविधि का अभिप्रेत होता है। यह अनौपचारिक रूप से नियोजित और साधारण संरचना युक्त होता है। गुडे एवम् हाट ने इसे साधारण अवलोकन की संज्ञा प्रदान की।

जहोदा एवम् कुक द्वारा इसे असंरचित अवलोकन कहा गया है। पी वी यंग के अनुसार अनियन्त्रित अवलोकन में हम वास्तविक जीवन से सम्बन्धित परिस्थितियों की सतर्कतापूर्वक जाँच करते हैं। इस

अवलोकन में वास्तविकता उत्पन्न करने वाले यन्त्रों को प्रयुक्त किया जाता है और निरीक्षित घटना की जाँच करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता।

उक्त परिभाषा से अनियन्त्रित अवलोकन की तीन विशेषताएं स्पष्ट होती हैं:

(1) अनुसंधानकर्ता या अध्ययनकर्ता पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रखा जाता।
(2) वह परिस्थितियों या घटनाओं का प्राकृतिक रूप से अध्ययन करता है।
(3) इस विधि में अनुसंधानकर्ता द्वारा घटनाओं की शुद्धता को अन्वेषित करने का प्रयत्न नहीं किया जाता।
अनियन्त्रित अवलोकन की प्रकृतिगत विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुए इसे मुख्यतया निम्न स्वरूपों में विभाजित किया गया है:

स्वप्रगती प्रश्न-:

2- अनियंत्रित अवलोकन का अर्थ बताइए तथा उसे परिभाषित कीजिए |

.....

.....

.....

9.3.1 सहभागी अवलोकन

अवलोकन की इस प्रणाली के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता पहले स्वयं अवलोकन हेतु चयनित समूह का एक सदस्य बन जाता है, तत्पश्चात् समूह के सदस्य रूप में ही सबके साथ मिलकर रहते हुए उस समुदाय अथवा समूह की दिन-प्रतिदिन के व्यवहारों और अन्य कार्यों, व्यवस्थाओं एवम् क्रियाकलापों में सक्रिय प्रतिभागिता करता है और साथ ही उनका निरीक्षण करते हुए अध्ययनकार्य की सामग्री संकलित करता है। उस समूह या समुदाय के सदस्यों को अध्ययनकर्ता का वास्तविक उद्देश्य ज्ञात नहीं होता।

अर्थ एवं परिभाषा:

सहभागी अवलोकन को कई समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त किया गया है। प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री **एम. एन. श्रीनिवास** द्वारा मैसूर में संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन करने हेतु इस विधि

को माध्यम बनाया गया। इसी क्रम में तंजौर गांव के ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ग प्रस्थिति और शक्ति को आधार मानते हुए सामाजिक असमानता का आन्द्रे बेतई द्वारा अध्ययन इस विधि का प्रयोग करते हुए किया गया। इसके अतिरिक्त जॉन हॉवर्ड द्वारा कैदियों, लीप्ले तथा बूथ द्वारा श्रमिक परिवारों और नेल्स एण्डर्सन द्वारा होबो समुदाय के व्यक्तियों पर किए गए अध्ययनों में भी सहभागी अवलोकन विधि की सहायता ली गई। सर्वप्रथम लिण्डमैन द्वारा सन् 1924 में अपनी पुस्तक 'सोशियल डिस्कवरी' में सहभागी अवलोकन शब्द को प्रयुक्त किया गया।

गुडे एवम् हाट ने सहभागी अवलोकन को इस प्रकार स्पष्ट किया है, ''इस कार्य प्रणाली का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि अनुसंधानकर्ता अपने को समूह के सदस्य के रूप में स्वीकृत हो जाने योग्य बना लेता है।''

हाल्ट के अनुसार, ''सहयोगी अवलोकन वह विधि है जिसमें अन्वेषक अध्ययन किये जाने वाले परिवेश का एक अंग बन जाता है।''

लुण्डबर्ग के अनुसार, ''अवलोकनकर्ता अवलोकित समूह के प्रति यथासंभव पूर्णतया घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है, अर्थात् वह समुदाय में बस जाता है तथा उस समूह के दैनिक जीवन में भाग लेता है।''

उपरोक्त परिभाषाएं इस तथ्य को रेखांकित करती हैं कि सहभागी अवलोकन में अवलोकन करने वाला व्यक्ति चयनित समूह का एक भाग बनकर उसमें वास करते हुए तथ्यों को एकत्र करता है।

9.3.2 सहभागी अवलोकन के गुण

(1) वास्तविक व्यवहार का अध्ययन- सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता समूह के सदस्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है और उनके साथ घनिष्ठ रूप से संबन्धित हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप समूह के सदस्य अवलोकनकर्ता के समक्ष प्राकृतिक रूप से व्यवहार करते हैं। उनके मध्य कोई औपचारिकता न होने के कारण अध्ययनकर्ता घटनाओं और व्यवहारों का वास्तविक व यथार्थ अध्ययन करने में सफलता प्राप्त करता है।

(2) प्रत्यक्ष अध्ययन- इस प्रविधि द्वारा अवलोकनकर्ता चयनित समूह या समुदाय का सदस्य बनकर समूह में अस्थायी तौर पर बस जाता है। सदस्य के रूप में ही वह समूह की समस्त गतिविधियों में प्रतिभागिता करता है। समूह के सदस्यों के दिन-प्रतिदिन के व्यवहारों, सांस्कृतिक विशेषताओं तथा कार्यों को सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकित करते हुए प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा तथ्यों का संचयन करता है।

(3) अधिक विश्वसनीयता- अवलोकनकर्ता द्वारा समूह का सदस्य बनकर प्रत्यक्ष रूप से समूह के क्रियाकलापों का अवलोकन करके सूचनाओं व तथ्यों का संकलन करता है। इस कारण उसे जो तथ्य प्राप्त होते हैं उनकी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता, वह अधिक विश्वास योग्य होते हैं और उनको परिवर्तित कर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(4) सूक्ष्म एवम् गहन सूचनाएं- इस प्रणाली के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता द्वारा समूह में घटित प्रत्येक सूक्ष्मतम घटना या व्यवहार की गतिविधियों का गहनतापूर्वक अध्ययन किया जाना सम्भव होता है क्योंकि वह स्वयं समूह में सदस्य बनकर निवास कर उनके दैनन्दिन कार्यों को प्रत्यक्षतः देखता है।

(5) विस्तृत सूचनाएं- अन्य विधियों की तुलना में सहभागी अवलोकन द्वारा जो तथ्य संकलित किए जाते हैं वह यथार्थ व वास्तविक होने के कारण अधिक विश्वास करने योग्य होते हैं क्योंकि सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता द्वारा एक दीर्घ अवधि तक समूह में अवलोकन कार्य किया जाता है। अवलोकनकर्ता द्वारा सुदीर्घ कालावधि में अवलोकन द्वारा जिन तथ्यों का संकलन किया जाता है वह एक विस्तृत काल-खण्ड में लिए गए साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सामग्री की तुलना में अधिक विस्तार लिए होता है।

(6) सत्यापनशीलता- सहभागी अवलोकन के माध्यम से एकत्रित किए आंकड़ों व अध्ययन-सामग्री को आवश्यकता होने पर किसी समय पर भी पुनः परीक्षित किया जा सकना सम्भव है। इस प्रविधि में अवलोकनकर्ता द्वारा स्वयं समूह/समुदाय के क्रियाकलापों में प्रत्यक्षरूपेण प्रतिभागिता किये जाने के कारण पूर्व में आई परिस्थितियों के पुनः आगमन पर तथ्यों का पुनरीक्षण एवम् आकलन किया जा सकता है।

सीमाएं-

अनेक गुणों के होते हुए भी सहभागी अवलोकन दोषमुक्त नहीं है। इसके प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं:

(1) वस्तुपरकता की कमी- अवलोकनकर्ता द्वारा समूह का सदस्य बन जाने पर उसकी समूह के प्रति घनिष्ठ भावनाओं एवम् आत्मीय सम्बन्धों की उत्पत्ति हो जाती है और समूह में सक्रिय भागीदारी में वृद्धि हो जाने के कारण यह संभावना भी होती है कि, अवलोकनकर्ता मात्र साक्षी न बनकर उनसे भावात्मक सम्बन्ध स्थापित कर ले।

(2) धीमा अध्ययन- इस प्रविधि में समूह के व्यक्तियों से आत्मीय सम्बन्ध विकसित करने में अधिक समय व्यय करने की आवश्यकता होती है, जिस कारण अवलोकनकर्ता द्वारा अध्ययन-कार्य करने की गति विलम्बित होती है।

(3) अत्यधिक व्ययपूर्ण- सहभागी अवलोकन में अत्यधिक विलम्बित गति से अध्ययन किए जाने के कारण इसमें व्यय भी अधिक होता है जोकि, अन्य प्रविधियों यथा प्रश्नावली एवम् अनुसूची की तुलना में इसे अधिक व्ययपूर्ण प्रणाली के रूप में स्थापित करता है।

(4) सीमित क्षेत्र का अध्ययन- इस प्रणाली में अध्ययन हेतु चयनित क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं हो सकता है। क्योंकि, अवलोकनकर्ता को चयनित समूह या समुदाय के समस्त समुदाय के समस्त सदस्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाकर सूचना-सामग्री को एकत्र करना होता है और यह विधि समय और धन की दृष्टि से अधिक व्ययपूर्ण है।

(5) समुचित प्रतिनिधित्व की कमी- इस प्रणाली का प्रयोग अनेक परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता। सहभागी अवलोकन में अनुसंधानकर्ता अध्ययन समूह के जीवन में पूर्णरूप से भाग लेता है। व्यावहारिक रूप से किसी भी व्यक्ति द्वारा समूह के दैनिक जीवन में पूर्ण रूप से घुलना-मिलना संभव नहीं होता। इसके साथ ही कुछ गोपनीय बातें होती हैं जिनमें सहभागिता असंभव है।

(6) समूह के व्यवहारों में परिवर्तन- सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता सर्वप्रथम समूह का सदस्य बन जाता है ताकि वह उसके क्रियाकलापों का अध्ययन स्वाभाविक परिस्थितियों में करे। परन्तु कभी-कभी अवलोकनकर्ता समूह में किसी महत्वपूर्ण पद पर स्थापित हो जाता है और वह समूह के व्यवहार पर प्रभाव डालने लगता है जिसके कारण उसके व्यवहार में कभी-कभी परिवर्तन आ जाता है, यथा- यदि समूह में कभी अवलोकनकर्ता को किसी कारणवश सरपंच या कोई अन्य उच्च पद प्रदान कर दिया जाता है तब ऐसी परिस्थिति में अवलोकनकर्ता समूह के अन्य सदस्यों पर अपने व्यक्तित्व एवम् गुणों का प्रभाव डालकर उनके प्राकृतिक व्यवहारों को पहले की अपेक्षा परिवर्तित कर देता है जिसके परिणामस्वरूप चयनित समूह के व्यवहारों की स्वाभाविकता का अन्त हो जाता है जोकि अध्ययन को और जटिल बना देता है।

(7) आलेखन की समस्या- इस प्रविधि में अवलोकनकर्ता को समूह की गतिविधियों को और घटनाओं को देखकर उन्हें लिखित रूप में भी सुरक्षित करना होता है, परन्तु वह स्वच्छन्द होकर समूह के अन्य सदस्यों के सामने उन्हें लेखबद्ध नहीं कर सकता है क्योंकि ऐसा करने पर वह अवलोकनकर्ता के प्रति शंकित हो सकते हैं। यदि अवलोकनकर्ता उस परिस्थिति या घटना के व्यतीत होने के उपरान्त उसे लिखने का कार्य करता है तो इस क्रिया में कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों की विस्मृति हो जाने अथवा छूट जाने की आशंका रहती है।

9.3.3 असहभागी अवलोकन

असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत चयनित अध्ययन-समूह का स्थायी सदस्य न बनकर अवलोकनकर्ता समूह के बीच केवल उपस्थित रहकर उनकी गतिविधियों में प्रतिभाग लेता है। वह समूह में दीर्घ अवधि तक

निवास न करके केवल अवलोकन करता है। वह उनके क्रियाकलापों को मौन रहकर देखता है और गहनतापूर्वक तथ्यों के विषय में जानकारी प्राप्त करता है। अवलोकनकर्ता यह अवलोकन उन्हें बिना सूचित किए घटनाओं के घटित होने के समय उपस्थित होकर करता है और उनके व्यवहारों का अध्ययन कर सूचनाओं को संकलित कर लेता है। ऐसी अनेक परिस्थितियाँ सामाजिक जीवन में घटित होती हैं जोकि, सहभागी अवलोकन द्वारा ज्ञात नहीं की जा सकतीं अपितु वहाँ अवलोकन की असहभागी प्रविधि ही सर्वथा उपयुक्त होती है। परन्तु पूर्ण रूप से असहभागी अवलोकन करना असंभव है।

9.3.4 असहभागी अवलोकन के गुण

(1) वैषयिकता- इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्ता समूह के साथ आत्मीयता को न बढ़ाते हुए तटस्थ रूप से समूह की गतिविधियों और घटनाओं को मौनदर्शक के रूप में देखता है जिसके कारण उसके अध्ययन की वैषयिकता में वृद्धि हो जाती है। अवलोकनकर्ता द्वारा केवल बाह्य रूप से निष्पक्ष होकर अवलोकन करने के कारण उसकी उपस्थिति से समूह के व्यक्तियों के व्यवहार भी प्रभावित नहीं होते।

(2) विश्वसनीयता- असहभागी अवलोकन के अर्न्तगत अवलोकनकर्ता घटनाएं जिस क्रम में घटित होती हैं, उन्हें उसी क्रम में लिखित रूप में सुरक्षित करता जाता है। इसके परिणामस्वरूप वह जिन सूचनाओं को संकलित करता है वह अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय होती हैं।

(3) खर्चीली- इस प्रविधि में अवलोकनकर्ता को अवलोकन करने हेतु अधिक धन का व्यय नहीं करना पड़ता है क्योंकि अध्ययनकर्ता द्वारा यह अध्ययन सामान्य रूप से किया जाता है।

(4) अधिक सहयोग- असहभागी अवलोकन में यह अधिक सम्भावित होता है कि अवलोकनकर्ता को समूह का सहयोग अधिक मात्रा में प्राप्त हो। क्योंकि, अवलोकनकर्ता समूह का सदस्य न बनकर केवल उपस्थिति मात्र से अवलोकन करता है जिस कारण अवलोकनकर्ता के विचारों से उस समूह या समुदाय के सदस्यों को किसी तरह की बाधा की आशंका नहीं रहती।

सीमाएं

अनेक गुणों के होते हुए भी असहभागी अवलोकन दोषमुक्त नहीं है। इसके प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं:

1. अवलोनकर्ता का दृष्टिकोण: असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता घटनाओं की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से करता है क्योंकि वह समूह के जीवन में भाग लिए बिना एक तटस्थ दर्शक रूप में घटनाओं का

अवलोकन करता है। इसका परिणाम यह होता है कि वास्तविकता समाप्त हो जाती है। अध्ययनकर्ता का दृष्टिकोण भी वस्तुनिष्ठ अध्ययन में बाधक होता है।

2. विशुद्ध असहभागिता असम्भव: गुडे और हाट ने लिखा है कि पूर्ण असहभागिता सम्भव नहीं है क्योकि घटनाओं , परिस्थितियों एवं व्यवहार के अवलोकन में स्वयं अवलोकनकर्ता भी किसी न किसी रूप में भागीदार बन जाता है।

3. अस्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन: अवलोकनकर्ता जब असहभागी ढंग से समूह का अध्ययन करता है और निरन्तर समूह से दूर रहता है तो उसके प्रति समूह के सदस्यों के मन में शंका उत्पन्न हो जाती है। अवलोकनकर्ता की उपस्थिति में समूह के लोग बनावटी व्यवहार करने लगते हैं और अध्ययन अस्वाभाविक और दोषपूर्ण हो जाता है।

4. गहन अध्ययनों में अनुपयुक्त: असहभागी अवलोकन द्वारा गहन अध्ययन नहीं किए जा सकते क्योंकि कुछ अत्यधिक गुप्त और महत्वपूर्ण सूचनाओं के लिए समूह का सहभागी बनना भी आवश्यक होता है।

9.3.5 सहभागी तथा असहभागी अवलोकन में अन्तर

(1) प्रकृति के आधार पर- सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अध्ययन हेतु चयनित समूह या समुदाय का सदस्य बनकर उसमें निवास करते हुए अध्ययन करता है, जबकि असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता आवश्यकतानुरूप चयनित समूह के पास जाकर बाह्य रूप से एक दर्शक की तरह तटस्थतापूर्वक अवलोकन करता है।

(2) सहभागिता के आधार पर- सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता अध्ययन-कार्य करने हेतु पहले चयनित समूह/समुदाय की सदस्यता प्राप्त कर उनकी भावनाओं का साझीदार बन जाता है, वह समूह की समस्त सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक गतिविधियों, संस्कारों व उत्सवों में भी प्रतिभाग करता है। इसके विपरीत असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता समूह की गतिविधियों से तटस्थ रहकर , चुपचाप दर्शक रूप में उनका निरीक्षण करता है।

(3) गहनता के आधार पर- सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता द्वारा समूह में सदस्य के रूप में निवास करन के कारण वह समूह के जीवन को गहनता से समझकर उनके सूक्ष्मतम एवम् गहन आन्तरिक पक्षों का अध्ययन कर सकता है। इसके विपरीत असहभागी अवलोकन के अर्न्तगत अवलोकनकर्ता केवल समूह के मध्य उपस्थित रहकर बाह्य रूप से उनकी गतिविधियों का अवलोकन

करता है, उनके आन्तरिक पक्षों से अपरिचित होने के कारण जो छुपे हुए पक्ष हैं, वह उसके लिए छुपे ही रह जाते हैं।

(4) वस्तुनिष्ठता के आधार पर- असहभागी अवलोकन में तुलनात्मक रूप से सहभागी अवलोकन से अधिक वस्तुनिष्ठता व वैज्ञानिकता विद्यमान होती है क्योंकि, इसमें व्यक्ति के पक्षपातपूर्ण व पूर्वाग्रह युक्त होने की सम्भावना अत्यल्प रूप में होती है।

(5) सत्यापन के आधार पर- सहभागी अवलोकन के अर्न्तगत समूह की गतिविधियों और अनेक सामूहिक घटनाओं में अवलोकनकर्ता द्वारा सदस्य रूप में पुनः-पुनः प्रतिभाग किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसके समक्ष यह अवसर कई बार आता है जिसमें, वह प्राप्त अध्ययन-सामग्री की सत्यता को पुनः परख सके। जबकि असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता के समक्ष इतने अवसर उपलब्ध नहीं होते हैं, अपितु उसके समूह में सीमित आगमन के कारण उसको सूचना-सामग्री को सत्यापित करने हेतु अधिक अवसर नहीं प्राप्त होते हैं।

(6) समय एवम् धन के आधार पर- सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता को दीर्घ अवधि तक या कुछ वर्ष तक चयनित समुदाय में निवास करना पड़ता है जिस कारण यह प्रविधि बहुत खर्चीली और अधिक समय का व्यय करवाने वाली है। इसके विपरीत असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता का समय एवम् धन कम व्यय होता है क्योंकि इस प्रविधि में अध्ययन हेतु अवलोकनकर्ता का समूह में दीर्घ अन्तराल में आगमन होता है।

(7) समूह के व्यवहार के आधार पर- सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता समूह का सदस्य एवम् आत्मीय हो जाता है जिस कारण उसके सम्मुख समूह के सदस्य जो व्यवहार एवम् प्रतिक्रियाएं अभिव्यक्त करते हैं उनमें स्वाभाविकता होती है। इसके विपरीत असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता समूह के व्यक्तियों हेतु अपरिचित होता है और वह उसे बाहरी व्यक्ति मानकर उसके समक्ष जो व्यवहार करते हैं वह बनावटी होता है , स्वाभाविक नहीं।

(8) अध्ययन- प्रविधियों के आधार पर-सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता को अवलोकन-कार्ड व अनुसूची का प्रयोग करने की सुविधा नहीं होती और न वह साक्षात्कार प्रणाली की सहायता से सुव्यवस्थित तरीके से सूचना-सामग्री का संकलन कर सकता है जबकि असहभागी अवलोकन इस दृष्टि से बहुत सुविधाजनक होता है क्योंकि इसमें वह अनुसूची व अवलोकन-कार्ड इत्यादि को अध्ययन हेतु माध्यम बना सकता है।

9.3.6 अर्द्ध सहभागी अवलोकन

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि, पूर्णतया सहभागी अथवा असहभागी अवलोकन करना सम्भव नहीं है। इसकी सीमाओं को देखते हुए गुडे एवम् हाट ने अर्द्ध सहभागी अवलोकन का सुझाव सामने रखा जोकि दोनों प्रविधियों की सीमाओं के बीच स्थित हो और जिसमें उपरोक्त दोनों प्रविधियों की विशेषताऐं विद्यमान हों।

अर्द्ध सहभागी आन्दोलन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता उस समूह की दिन-प्रतिदिन की कुछ क्रियाओं का अंग बनता है, जिनका चयन अध्ययन हेतु किया गया हो। परन्तु समूह के विशेष सांस्कृतिक उत्सवों, संस्कारों, घटनाओं और समारोहों में भाग न लेकर वह दूर से ही उनका अवलोकन कर अध्ययन करता है। यह अवलोकन सहभागी व असहभागी दोनों प्रकार के अवलोकनों के गुणों से समन्वित होता है और दोनों के लाभ प्रदान कर सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. अर्द्धसहभागी अवलोकन की प्रक्रिया समझाइए।

.....

.....

.....

9.4 अनियन्त्रित अवलोकन के गुण

अनियन्त्रित अवलोकन का कार्य सामाजिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को किसी न किसी रूप में प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को एक व्यवस्था में बद्ध कर अध्ययन करने हेतु पथ प्रशस्त करता है। इसके निम्नलिखित गुण हैं:

(1) समाज की प्रकृति गतिशील होने के कारण वह मनुष्य के व्यवहार को भी गतिशील बनाता है। इस प्रकार का व्यवहार-परिवर्तन का अध्ययन करने हेतु अनियन्त्रित अवलोकन अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है।

(2) अनियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्ता द्वारा घटनाओं को उनके यथार्थ रूप से हटकर स्वाभाविक रूप से देखना सम्भव होने के कारण यह अपेक्षाकृत आसान और स्वाभाविकतापूर्ण होता है।

(3) अनियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता के व्यवहारों पर कोई नियन्त्रण न होने एवम् अध्ययन हेतु प्रस्तुत परिस्थितियाँ भी पूर्व-निर्धारित न होने के कारण इस प्रकार किये गए अवलोकन की वस्तुनिष्ठता में वृद्धि हो जाती है।

(4) अनियन्त्रित अवलोकन प्रविधि में अवलोकनकर्ता द्वारा अध्ययन सामग्री को किसी प्रकार से प्रभावित कर सकना सम्भव नहीं होता है।

सीमाएं

अनियन्त्रित अवलोकन में कई गुणों के साथ इसकी कुछ सीमाएं भी हैं जो इस प्रकार हैं-

(1) इस प्रकार के अवलोकन में अध्ययनकर्ता को नियन्त्रित कर पाना इतना सरल नहीं होता है जिसके कारण वह स्वेच्छाचारी हो जाता है और अवलोकन द्वारा प्राप्त अध्ययन-सामग्री भी पूर्णतः विश्वास योग्य नहीं होती है।

(2) अनियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता नियन्त्रण से बाहर हो जाने के कारण यह भी होता है कि वह अध्ययन हेतु अनुपयुक्त व असंगत सूचनाओं का संग्रह कर लेता है।

(3) अनियन्त्रित अवलोकन में सामान्यतया अवलोकनकर्ता सूचनाओं को अवलोकन के पश्चात लेखबद्ध करता है जिसके परिणामस्वरूप इसके लिखित तथ्यों में कभी-कभी कई त्रुटियाँ रह जाती हैं।

(4) इस प्रकार के अवलोकन में घटनाओं या समस्या का बाह्य रूप से अवलोकन करने के कारण उसकी गहन आन्तरिक जानकारी नहीं होती है और ऐसे निरीक्षण के जो परिणाम निकलते हैं, वह दोषयुक्त होते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

4. अनियंत्रित अवलोकन की सीमाएं स्पष्ट किजिए।

.....

.....

.....

9.5 नियन्त्रित अवलोकन

जैसे-जैसे सामाजिक विज्ञानों का विकास होता गया, वैसे-वैसे सामाजिक क्षेत्रों से सम्बन्धित शोध-कार्यों की विभिन्न प्रणालियाँ भी शनैः-शनैः विकास की दिशा में अग्रसर होने लगीं। आधुनिक समय में कई ऐसी

प्रणालियाँ विकसित हो गई हैं जिनके माध्यम से सामाजिक घटनाओं को नियन्त्रित कर अध्ययन करना सम्भव है। यह सत्य है कि नियन्त्रित अवलोकन का प्रारम्भ ही अनियन्त्रित अवलोकन के दोषों को दूर करने के के लिए किया गया है।

नियन्त्रित अवलोकन प्रविधि के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता के साथ-साथ अवलोकन करने वाली सामाजिक परिस्थितियों को भी नियन्त्रित करके सामग्री को संचयित करना सम्भव है। इस प्रकार के अवलोकन में पूर्व में सुनिश्चित एवम् सुनियोजित योजनाओं के द्वारा तथ्यों को एकत्र किया जा सकता है। यह प्रविधि पूर्व नियोजित अवलोकन, संरचित अवलोकन या व्यवस्थित अवलोकन इत्यादि नामों से भी जानी जाती है। नियन्त्रित अवलोकन प्रणाली में निम्न बिन्दु स्पष्ट रूप से उल्लिखित किये जा सकते हैं:

(1) जिन इकाईयों का अवलोकन किया जाना है उनका स्पष्टतया पारिभाषिकीकरण किया जाता है।

(2) तथ्यों का चुनाव करना

(3) सूचियों को लिखित रूप में सुरक्षित करना

(4) जिन यन्त्रों को अवलोकन हेतु प्रयुक्त करना हो, उनको नियन्त्रित करना

नियन्त्रित अवलोकन को दो प्रकार से किया जा सकता है:

(1) जब यह परिस्थिति व घटना पर नियन्त्रण रखकर किया जाए।

(2) जब यह अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण रखकर किया जाए।

(1) घटनाओं पर नियन्त्रण- इस प्रणाली में जिस घटना का अवलोकन किया जाना है, उसे नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार के नियन्त्रण का आषय यह है कि जिन घटनाओं का अध्ययन किया जाना हो उन्हें इतना नियन्त्रित कर लिया जाए जिससे कि उन्हें जब भी आवश्यक प्रतीत हो, उसी समय संशोधित या परिवर्तित कर अध्ययन हेतु प्रयुक्त किया जा सके। उदाहरणस्परूप एक भौतिक वैज्ञानिक अपने प्रयोगों के अन्तर्गत भौतिक विश्व की परिस्थितियों को अपनी प्रयोगशाला की नियन्त्रित दशाओं के अन्तर्गत लाकर उसको अपने अनुसंधान विषय के अध्ययन हेतु सहायक बनाता है। इसी प्रकार सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा भी सामाजिक घटनाओं को सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत नियन्त्रित कर अनुसन्धान कार्य किया जाता है, यह सामाजिक प्रयोग के नाम से भी सम्बोधित किया जा सकता है।

(2) अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण- इस प्रकार के अवलोकन में स्वयं अवलोकनकर्ता पर नियन्त्रण किया जाता है। सामाजिक घटनाओं की अस्थिर प्रकृति के कारण उन्हें नियन्त्रित किया जाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इस कारण यदि अध्ययन-कार्य में पक्षपात और व्यक्तिगत प्रभाव से दूर रहना है तो अवलोकनकर्ता पर ही नियन्त्रण लागू करना हितकारी होता है। अवलोकनकर्ता पर यह नियन्त्रण कुछ सहायक यन्त्रों तथा विधियों जिनमें साक्षात्कार, अनुसूची, फोटोग्राफी, टेप-रिकॉर्डर, नक्शे, डायरी, कैमरा एवम् फिल्म के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। इन सबकी सहायता से अवलोकनकर्ता को स्वेच्छाचारी ढंग से कार्य करने से रोका जा सकता है।

9.6.1 नियन्त्रित और अनियन्त्रित अवलोकन में अन्तर

(1) नियन्त्रित अवलोकन में जिन घटनाओं और परिस्थितियों का अध्ययन किया जाना है, उनको नियन्त्रित करके उनका अवलोकन किया जाना अपेक्षित होता है , इसके विपरीत जब घटनाओं और परिस्थितियों पर अवलोकनकर्ता अपना नियन्त्रण न रख पाए तब यह अनियन्त्रित अवलोकन कहलाता है।

(2) नियन्त्रित अवलोकन में अस्वाभाविकता एवम् कृत्रिमता का समावेश हो जाता है जबकि अनियन्त्रित अवलोकन अपनी स्वाभाविकता को बनाए रखने में समर्थ है।

(3) कार्य-क्षेत्र में भिन्नता के आधार पर भी नियन्त्रित और अनियन्त्रित अवलोकन परस्पर भिन्नता रखते हैं। नियन्त्रित अवलोकन द्वारा केवल सीमित क्षेत्र में घटित विशेष प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन किया जा सकता है। इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होता है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण समुदाय या समूह को अवलोकन का द्वारा अध्ययन किया जा सकता है।

(4) नियन्त्रित अवलोकन क्रियान्वित करते समय पहले से निश्चित योजना के आधार पर समस्त अवलोकन कार्य को सुनियोजित रूप से पूर्ण किया जाता है, जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार अवलोकन कार्य नहीं किया जाता है।

(5) नियन्त्रित अवलोकन में अध्ययन हेतु कुछ विशिष्ट उपकरण तथा साधन जैसे कि फोटोग्राफ, मानचित्र, टेप, अनुसूची आदि प्रयुक्त होते हैं। इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में अनुसंधान कार्य हेतु यन्त्रों एवम् साधनों को प्रयुक्त करना आवश्यक नहीं है।

(6) नियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता के व्यवहार को भी नियन्त्रित कर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसके अध्ययन-कार्य के पक्षपातपूर्ण होने की अत्यल्प सम्भावना होती है। इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में अनुसंधानकर्ता की प्रवत्ति पक्षपात की भावना से प्रभावित होने की प्रबल संभावना होती है जिस कारण उसकी विश्वसनीयता में भी कमी आ जाती है।

(7) नियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत अनेक घटनाओं को नियन्त्रित किया जाने के कारण न तो इसके द्वारा गुप्त तथ्यों को एकत्र करना सम्भव होता है और न घटनाओं को आन्तरिक एवम् सूक्ष्म रूप से अवलोकित किया जा सकता है। इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत किया जाने वाला अवलोकन अधिक विस्तृत, गहराई युक्त और सूक्ष्मता लिए होता है।

9.6.2 सामूहिक अवलोकन

सामूहिक अवलोकन नियन्त्रित और अनियन्त्रित दोनों प्रकार की प्रविधियों का एक मिश्रित रूप है। इस प्रणाली के अन्तर्गत किसी एक सामाजिक घटना या समस्या का अवलोकन करने हेतु अनेक अनुसंधानकर्ता ओं की सहायता ली जाती है जोकि उपरोक्त घटना के विविध पक्षों के विशेषज्ञ होते हैं।

9.7 अवलोकन के गुण

(1) सरल एवम् प्राथमिक पद्धति - प्रारम्भ से ही मनुष्य अवलोकन प्रविधि को स्वाभाविकतया प्रयुक्त करता रहा है। इसलिए यह एक प्राथमिक प्रणाली है जोकि दूसरी विधियों की तुलना में अधिक सरलतापूर्ण है क्योंकि इस प्रकार के अवलोकन को प्रयुक्त करने हेतु किसी प्रकार का विशेष प्रशिक्षण लेना आवश्यक नहीं है।

(2) परिकल्पना के निर्माण में सहायक- अनुसंधानकर्ता द्वारा अध्ययन के विषय से सम्बन्ध रखने वाली अनेक परिस्थितियों और प्राप्त तथ्यों का अवलोकन स्वयं ही किये जाने के कारण एक ओर तो उसके अनुभवों में बढ़ोत्तरी होती है और दूसरी ओर अपनी एक समझ विकसित होती है जिससे उसे अर्न्तज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके परिणामस्वरूप अध्ययनकर्ता के अन्दर विविध प्रकार की परिकल्पनाओं का निर्माण करने की क्षमता विकसित हो जाती है।

(3) यथार्थता एवम् विश्वसनीयता- अवलोकन प्रविधि के माध्यम से अनुसंधानकर्ता अन्य व्यक्तियों पर आश्रित न रहकर प्रत्येक घटना का अवलोकन अपने नेत्रों की सहायता से प्रत्यक्ष रूप में करता है और सम्बन्धित सूचनाओं को लिपिबद्ध करके सुरक्षित कर लेता है। इसलिए यह प्रविधि तुलनात्मक रूप से दूसरी विधियों से अधिक विश्वसनीय और वास्तविक होती है।

4) उपयोग में व्यापकता- अवलोकन प्रविधि अधिकांश अध्ययन के विषयों के अध्ययन हेतु उपयोगी एवम् उपयुक्त होने के कारण सामाजिक अनुसंधान हेतु प्रचलित प्रविधियों में सबसे अधिक महत्ता रखती है।

5) सत्यापन की सुविधा- अवलोकन प्रविधि के अन्तर्गत जिन तथ्यों एवम् सामग्रियों को एकत्र किया जाता है,उनकी सत्यता की प्रामाणिकता को सदैव परीक्षित किया जा सकता है। अध्ययनकर्ता के लिए यह सम्भव होता है कि वह एक ही घटना को कई बार घटते हुए देख सके। यह सुविधा अन्य प्रविधियों द्वारा प्राप्त नहीं होती है जोकि इसकी उपयोगिता का सषक्त प्रमाण है।

अवलोकन के दोष-

अवलोकन पद्धति में अनेक गुणों के होते हुए भी यह पद्धति दोषमुक्त नहीं है। इस प्रविधि की अपनी कुछ सीमाएं इस प्रकार हैं:

1. लम्बी अवधि के अध्ययन के लिए अनुपयुक्त: अवलोकन पद्धति का उपयोग सभी प्रकार की घटनाओं के अध्ययन के लिए नहीं किया जा सकता है। यह सच है कि सभी तरह के अध्ययन विषयों में इसका प्रयोग किसी न किसी सीमा तक अवश्य होता है। लम्बी अवधि तक एक विशेष क्षेत्र में इस प्रविधि का उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि अध्ययन क्षेत्र या समूह के व्यक्ति अवलोकनकर्ता को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं:

2. सीमित उपयोग: कुछ घटनाएं इस प्रकार की होती हैं जिनका निश्चित समय व स्थान नहीं है। उदाहरणार्थ, पति-पत्नी का झगड़ा। हो सकता है कि जब झगड़ा हो रहा हो, तब अवलोकनकर्ता उपस्थित न हो। ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं के अध्ययन में सहायक न होने के कारण इसके प्रयोग का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित होता है।

3. कुछ घटनाओं का अवलोकन असम्भव: अनेक प्रकार के सामाजिक अनुसंधान अमूर्त तथ्यों से संबंधित होते हैं। ये अमूर्त तथ्य व्यक्ति के विचार, भावनाएं, उद्वेग, प्रवृत्तियाँ आदि हो सकते हैं। इनका अवलोकन सभी घटनाओं के प्रेषण के लिए स्वतंत्र नहीं। अनेक प्रकार की सामाजिक घटनाएं एवं परिस्थितियां ऐसी होती हैं कि उनका अवलोकन द्वारा अध्ययन असम्भव होता है। उदाहरण के लिए, महिलाओं पर घरेलू हिंसा, प्रेम, दाम्पत्य जीवन इत्यादि का प्रत्यक्ष अवलोकन करना सम्भव नहीं होता है।

4. पिछली घटनाओं का अवलोकन सम्भव नहीं: पूर्व घटनाओं का अध्ययन अवलोकन विधि द्वारा सम्भव नहीं है क्योंकि अवलोकन पद्धति केवल वर्तमान परिस्थितियों एवं घटनाओं के अध्ययन में ही सहायक है। पिछली बातों अथवा पुरानी घटनाओं के सम्बन्ध में व्यक्तियों के कथनों तथा दस्तावेजों पर निर्भर रहता पड़ता है जो त्रुटिपूर्ण भी हो सकते हैं।

5. ज्ञानेन्द्रियों की अपर्याप्तता: अवलोकन पद्धति में हम अपने नेत्रों व कानों का प्रयोग करते हैं। ज्ञानेन्द्रियों का समुचित उपयोग न हो सकने के कारण भी अवलोकन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष दोषपूर्ण बन जाते हैं। अवलोकनकर्ता कभी-कभी वस्तुतः कम महत्वपूर्ण लेकिन महत्वपूर्ण प्रतीत होने वाली घटनाओं को देखता है और वास्तविक महत्वपूर्ण घटनाओं का अध्ययन छोड़ देता है।

6. पक्षपात की समस्या: अवलोकन में अवलोकनकर्ता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि अवलोकनकर्ता स्वयं घटनाओं को देखकर सूचनाएं एकत्र करता है। अतः इस प्रक्रिया में पक्षपात तथा पूर्वाग्रह की समस्याएँ आ सकती हैं।

9.8 सार-संक्षेप

अवलोकन वैज्ञानिक अन्वेषण की एक प्रविधि है जिससे सामाजिक तथ्यों की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त होने के साथ-साथ महत्वपूर्ण प्राथमिक सामग्री का संकलन संभव होता है। यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें नेत्रों के माध्यम से सामाजिक घटनाओं को देखा और समझा जाता है। इसके पश्चात् अवलोकन के प्रकारों तथा उनके गुण-दोषों की चर्चा भी की गयी है। यह एक ऐसी प्रविधि है जिसके माध्यम से अध्ययनों के क्षेत्र में अधिक सरल, विश्वसनीय सूचनाओं के संकलन एवं उनके सत्यापन की सुविधा भी प्राप्त होती है।

9.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. सामान्य शब्दों में अवलोकन का तात्पर्य है कि किसी विशेष विषय से संबंधित घटनाओं को व्यवस्थित रूप से देखना तथा घटनाओं के कार्य कारण संबंध को समझाना। किन्तु सामाजिक अनुसंधान की एक व्यवस्थित पद्धति के रूप में अवलोकन का अपना एक पृथक अर्थ है।

प्रो0गुडे एवं हॉट के अनुसार, ''विज्ञान अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा उसे सत्यापन के लिए अन्ततः आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही पुनः लौटना पड़ता है।''

पी० वी० यंग के अनुसार, ''घटनाओं को स्वतः घटित होने के समय आँखों द्वारा एक किसी व्यक्ति द्वारा सुविचारित रूप से अध्ययन करने को अवलोकन कहते हैं।'' उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि अवलोकन की प्रक्रिया में नेत्रों का मुख्य रूप से प्रयोग होता है।

2. जब अवलोकन इस प्रकार किया जाए कि अध्ययन-विषय या अनुसंधानकर्ता पर अवलोकन की प्रक्रियान्तर्गत कोई नियन्त्रण करने का प्रयास न किया जाए, तब इसे अनियन्त्रित अवलोकन के नाम से सम्बोधित किया जाता है। घटनाओं को उनके प्राकृतिक एवम् यथार्थ स्वरूप में अध्ययन करना इस प्रविधि का अभिप्रेत होता है। यह अनौपचारिक रूप से नियोजित और साधारण संरचना युक्त होता है। **गुडे एवम् हाट** ने इसे साधारण अवलोकन की संज्ञा प्रदान की। **जहोदा एवम् कुक** द्वारा इसे असंरचित अवलोकन कहा गया है। **पी वी यंग** के अनुसार अनियन्त्रित अवलोकन में हम वास्तविक जीवन से सम्बन्धित परिस्थितियों की सतर्कतापूर्वक जाँच करते हैं। इस अवलोकन में वास्तविकता उत्पन्न करने वाले यन्त्रों को प्रयुक्त किया जाता है और निरीक्षित घटना की जाँच करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता।

3. अर्द्ध सहभागी अवलोकन: इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि, पूर्णतया सहभागी अथवा असहभागी अवलोकन करना सम्भव नहीं है। इसकी सीमाओं को देखते हुए गुडे एवम् हाट ने अर्द्ध सहभागी अवलोकन का सुझाव सामने रखा जोकि दोनों प्रविधियों की सीमाओं के बीच स्थित हो और जिसमें उपरोक्त दोनों प्रविधियों की विशेषताऐं विद्यमान हों।

अर्द्ध सहभागी आन्दोलन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता उस समूह की दिन-प्रतिदिन की कुछ क्रियाओं का अंग बनता है, जिनका चयन अध्ययन हेतु किया गया हो। परन्तु समूह के विशेष सांस्कृतिक उत्सवों, संस्कारों, घटनाओं और समारोहों में भाग न लेकर वह दूर से ही उनका अवलोकन कर अध्ययन करता है। यह अवलोकन सहभागी व असहभागी दोनों प्रकार के अवलोकनों के गुणों से समन्वित होता है और दोनों के लाभ प्रदान कर सकता है।

4. अनियन्त्रित अवलोकन में कई गुणों के साथ इसकी कुछ सीमाएं भी हैं जो इस प्रकार हैं-

(1) इस प्रकार के अवलोकन में अध्ययनकर्ता को नियन्त्रित कर पाना इतना सरल नहीं होता है जिसके कारण वह स्वेच्छाचारी हो जाता है और अवलोकन द्वारा प्राप्त अध्ययन-सामग्री भी पूर्णतः विश्वास योग्य नहीं होती है।

(2) अनियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत अवलोकनकर्ता नियन्त्रण से बाहर हो जाने के कारण यह भी होता है कि वह अध्ययन हेतु अनुपयुक्त व असंगत सूचनाओं का संग्रह कर लेता है।

(3) अनियन्त्रित अवलोकन में सामान्यतया अवलोकनकर्ता सूचनाओं को अवलोकन के पष्चात् लेखबद्ध करता है जिसके परिणामस्वरूप इसके लिखित तथ्यों में कभी-कभी कई त्रुटियाँ रह जाती हैं।

(4) इस प्रकार के अवलोकन में घटनाओं या समस्या का बाह्य रूप से अवलोकन करने के कारण उसकी गहन आन्तरिक जानकारी नहीं होती है और ऐसे निरीक्षण के जो परिणाम निकलते हैं, वह दोषयुक्त होते हैं।

9.10 अभ्यास-प्रश्न

1.अवलोकन की परिभाषा दीजिए तथा अवलोकन के प्रकारों की विवेचना कीजिए।

2. सहभागी अवलोकन की परिभाषा दीजिए। सहभागी तथा असहभागी अवलोकन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

3. नियंत्रित अवलोकन क्या है ? नियंत्रित अवलोकन की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित समझाइये।

4. अनियंत्रित अवलोकन का क्या अर्थ है ? सामाजिक शोध में अनियंत्रित अवलोकन पद्धति के गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

5. नियंत्रित अवलोकन की परिभाषा दीजिए। नियंत्रित अवलोकन तथा अनियंत्रित अवलोकन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

9.11 परिभाषिक शब्दावली

वस्तुनिष्ठा- घटनाएं जिस रूप में घटित होती हैं, उनका उसी रूप से अध्ययन करना। अथवा किसी घटना का पक्षपातरहित होकर अध्ययन करना।

परिकल्पना- ऐसा कार्यकारी तर्क-वाक्य, पूर्व विचार ,कल्पनात्मक धारणा है जिसे अनुसंधानकर्ता अनुसंधान की प्रकृति के आधार पर पहले ही निर्मित कर देता है।

अभिनति- जब किसी घटना को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत न करके उसे बाह्य प्रभावों के रंग में प्रस्तुत किया जाता है तो ऐसी क्रिया को अभिनति कहा जाता है।

इकाई- तत्वों का ऐसा समूह है जिससे अपेक्षित सांख्यिकीय सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं

संदर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिवेदी व शुक्ला. रिसर्च मैथ्डोलॉजी. कालेज बुक डिपो .जयपुर.
- राय, पारस नाथ. 2004.अनुसंधान परिचय. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल. आगरा।
- राम आहूजा. 2005. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान. रावत पब्लिकेशन्स. दिल्ली.
- ज्योति वर्मा. 2007. सामाजिक सर्वेक्षण. डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस. नई दिल्ली।
- जैन एम. बी. रिसर्च मैथडोलॉजी. रिसर्च पब्लिकेशन. जयपुर।

इकाई 10 **साक्षात्कार**

Interview

इकाई की रुपरेखा

10.0 अध्ययन के उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 साक्षात्कार: अर्थ और परिभाषा

10.3 साक्षात्कार के उद्देश्य

10.4 साक्षात्कार की विशेषताएं

10.5 साक्षात्कार के प्रकार

10.5.1 संरचना के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार

10.5.2 मानकीकरण के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार

10.5.3 संख्या के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार

10.5.4 साक्षात्कार के अन्य प्रकार

10.6 साक्षात्कार की प्रक्रिया

10.6.1 साक्षात्कार से पूर्व की प्रक्रिया

10.6.2 साक्षात्कार के दौरान की प्रक्रिया

10.6.3 साक्षात्कार के उपरान्त की प्रक्रिया

10.7 साक्षात्कार के दौरान ध्यान देने वाली बातें

10.8 साक्षात्कार के गुण और सीमाएं

10.8.1 साक्षात्कार के गुण

10.8.2 साक्षात्कार की सीमाएं

10.9 सार-संक्षेप

10.10 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.11 अभ्यास-प्रश्न

10.12 पारिभाषिक शब्दावली

10.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 प्रस्तावना

मानव जाति के विकास के साथ ही उसके लिए अपने अस्तित्व और पहचान को बनाये रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया। सभ्यता के विकास के साथ-साथ व्यक्ति का सामाजिक दायरा बढ़ा और सामाजिक पहचान बनी। व्यक्ति ने अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए नये-नये तरीकों को खोजा और उनका प्रयोग किया। किसी समाज की दूसरे समाज के साथ पहचान और मेल-जोल, इसके साथ ही एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के साथ पहचान और मेल-जोल किस प्रकार हो, इसके लिए वार्तालाप और प्रश्नों के माध्यम से जानना, एक महत्वपूर्ण क्रिया रही होगी।

ज्यों-ज्यों व्यक्ति उन्नति करता चला गया उसका सामाजिक दायरा भी बढ़ता चला गया और वह एक व्यवस्थित परिवेश में अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दायरों को मजबूत करता चला गया। किन्तु अपनी पहचान को बनाये रखने और उसको जानने की जिज्ञासा ने उसे चेतनशील बनाये रखा और उसके लिए तरीकों की खोज और उनका प्रयोग जारी रहा। आधुनिक समाज में व्यक्ति के जानने की जिज्ञासा ''शोध'' और ''शोध पद्धति'' के रूप में सामने आयी। शोध कार्य की अनेक पद्धतियां हैं, जिनमें 'साक्षात्कार' एक महत्वपूर्ण पद्धति है। इस इकाई में आप साक्षात्कार का अर्थ, उसके उद्देश्य, प्रकार और साक्षात्कार कैसे किया जाता है, उसकी प्रक्रिया के संबंध में और उसके गुण और सीमाओं के विषय में जान पायेंगे।

10.1 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप:-

- साक्षात्कार के अर्थ और परिभाषा को जान पायेंगे।

- साक्षात्कार के उद्देश्यों तथा विधियों के विषय में जान पायेंगे।
- साक्षात्कार के प्रकार और इसके गुण, दोषों के विषय में जान पायेंगे।

10.2 साक्षात्कार अर्थ और परिभाषा

साक्षात्कार का सामान्य अर्थ किसी व्यक्ति, स्थान या घटना के विषय में जानने के लिए संबंधित जानकार व्यक्ति से आमने-सामने बैठ कर वार्तालाप करके जानकारी एकत्र करना है। ऐसा नहीं है कि साक्षात्कार पद्धति का प्रयोग मात्र शोध कार्य के लिए ही होता है। पदों की नियुक्ति के लिए, आवेदनकर्ता का भी साक्षात्कार होता है। साक्षात्कार करने की पद्धतियाँ अलग-अलग हो सकती हैं। लेकिन इस इकाई में हम शोध कार्य के लिए प्रयोग होने वाली साक्षात्कार पद्धति के विषय में ही चर्चा करेंगे, लेकिन इनके अंतर को समझने के लिए अन्य क्षेत्रों में प्रयोग होने वाले साक्षात्कार पद्धतियों के विषय में भी चर्चा करने का प्रयास करेंगे।

शोध कार्य की पद्धतियों में साक्षात्कार पद्धति का एक महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में मनुष्य की इच्छाओं, भावनाओं तथा विभिन्न पहलुओं पर उसके विचारों का अध्ययन करने के लिए साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण पद्धति है। इसमें साक्षात्कार लेने वाला और साक्षात्कार देने वाला, दोनों एक दूसरे के आमने-सामने बैठकर वार्तालाप के माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारी एकत्र करते हैं। साक्षात्कार पद्धति का प्रयोग सामाजिक विज्ञान के अनुसंधानों में ही सम्भव है। प्राकृतिक अनुसंधानों/विज्ञान विषय के अनुसंधानों में साक्षात्कार पद्धति की आवश्यकता नहीं के बराबर ही होती है।

वी0एम0 पामर ने साक्षात्कार को स्पष्ट करते हुए कहा है "साक्षात्कार दो व्यक्तियों के बीच एक सामाजिक स्थिति की रचना करता है, इसमें प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों व्यक्तियों को परस्पर उत्तर प्रति उत्तर देने पड़ते हैं।"

इसी प्रकार **एम0एन0 वसु** के शब्दों में "साक्षात्कार, व्यक्तियों के आमने-सामने का कुछ बातों पर मिलना या एकत्र होना, कहा जा सकता है।"

गुडे तथा हॉट ने साक्षात्कार को मूल रूप में एक सामाजिक प्रक्रिया माना है।

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि साक्षात्कार, दो या दो से अधिक व्यक्तियों का वार्तालाप या निकट सम्पर्क होता है। इसमें साक्षात्कार करने वाले और साक्षात्कार देने वाले में आमने-सामने के प्राथमिक सम्बन्ध स्थापित होते है तथा आपसी विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारियाँ एकत्र की जाती हैं।

10.3 साक्षात्कार के उद्देश्य

शोध की पद्धतियों में साक्षात्कार पद्धति अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामाजिक विज्ञान के विषयों के शोधकार्यों में साक्षात्कार पद्धति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शोध कार्य में साक्षात्कार कुछ उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। जो इस प्रकार हैं:

1. साक्षात्कार का उद्देश्य शोध से संबंधित महत्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित करना है जिसमें साक्षात्कार लेने वाला और साक्षात्कार देने वाला दोनों प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क स्थापित करते हैं और एक-दूसरे के आमने-सामने बैठकर खुली एवं स्पष्ट बातें करते हैं। इसमें उत्तर देने वाले व्यक्ति के ज्ञान एवं अनुभवों को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कारकर्ता शोध के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करते हैं।

2. साक्षात्कार का उद्देश्य व्यक्ति/उत्तरदाता के ज्ञान व अनुभवों के आधार पर वे महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करना है जो शोध कार्य में सहायक हों।

3. साक्षात्कार के माध्यम से हम तथ्यों और आंकडों की वैधता की जॉच कर सकते हैं।

4. साक्षात्कार पद्धति का उद्देश्य शोध में गुणवत्ता लाना भी है।

10.4 साक्षात्कार की विशेषताएं

साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को साक्षात्कार के संबंध में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए तभी वह साक्षात्कार के माध्यम से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पायेगा। साक्षात्कार के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए ही साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति स्वयं को साक्षात्कार के लिए अनुकूल माहौल में ढाल पायेगा। साक्षात्कार की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

1. साक्षात्कार पद्धति के अन्तर्गत साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति प्रश्नों के रूप में ही अपनी बातों को रखता है और साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति उत्तर के माध्यम से अपनी बातों को रखता है।

2. साक्षात्कार पद्धति के अन्तर्गत साक्षात्कारकर्ता जब उत्तरदाता से साक्षात्कार करता है तो उत्तरदाता दो रूपों में हो सकता है। पहला तो ये कि उत्तरदाता शोध विषय से सीधे तौर पर जुड़ा हो सकता है यानि कि हमारे शोध का विषय वह व्यक्ति ही हो। उस स्थिति में हम उत्तरदाता से उसके व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य पहलुओं पर प्रश्न/बात करेंगे। दूसरा ये कि यदि उत्तरदाता शोध विषय से एक अनुभवी, विषय-विषेषज्ञ के तौर पर जुड़ा हो तो उस स्थिति में हम उत्तरदाता से शोध विषय से संबंधित प्रश्नों पर बात करेंगे।

3. साक्षात्कार की हर स्थिति में साक्षात्कारकर्ता के पास उत्तरदाता के लिए लिखित रूप में प्रश्न होने चाहिए। प्रश्नों के लिखित रूप में होने से साक्षात्कारकर्ता अपने शोध मार्ग से भटकेगा नहीं और वह शोध के लिए महत्वपूर्ण तथ्यों को एकत्र कर पायेगा।

4. साक्षात्कार के माध्यम से हम अपने शोध के लिए उत्तरदाता से उन सभी पहलुओं पर बात करते हैं जो हमारे शोध के लिए महत्वपूर्ण हों। इसके साथ ही उत्तरदाता के माध्यम से नये-नये तथ्य उजागर होते हैं, जो शोध के लिए बड़ी महत्वपूर्ण सामग्री हो जाती है।

10.5 साक्षात्कार के प्रकार

शोध कार्य के लिए साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण पद्धति है, विशेषतः सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र के शोध कार्य में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

10.5.1 संरचना के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार

1. संरचित साक्षात्कार (Structured interview):- संरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता के पास प्रश्नों का एक लिखित रूप होता है, जिसे प्रश्नावली कहा जाता है। इस प्रश्नावली में शोध से संबंधित प्रश्न पहले से तय होते हैं। इसमें निश्चित प्रश्नों का एक समूह होता है तथा साक्षात्कार की एक समय-सीमा तय होती है। संरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता प्रश्न करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं होता है, वह प्रश्नों के लिखित समूह 'प्रश्नावली' से ही उत्तरदाता से प्रश्न कर सकता है और उत्तर भी पहले से ही तय होता है। साक्षात्कार का यह रूप परिमाणात्मक शोध ;फनंदजपजंजपअम त्मेमंतबीद्ध में प्रयुक्त होता है।

2. असंरचित साक्षात्कार (Un-structured interview):- असंरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है। इसमें प्रश्नों का कोई विशेष क्रम नहीं होता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कार कर्ता प्रश्नों के समूह में बंधा हुआ नहीं होता है, इसमें साक्षात्कारकर्ता अपनी आवश्यकता के अनुरूप प्रश्न बना लेता है। प्रश्न और समय की कोई समय सीमा निश्चित नहीं होती। साक्षात्कार का यह रूप गुणात्मक शोध (फनंसपजंजपअम त्मेमंतबब) में प्रयोग होता है।

3. अर्ध-संरचित साक्षात्कार (Sami-structured Interview):- अर्ध-संरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता के पास संरचित और असंरचित दोनों प्रकार के प्रश्न होते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार के शोध कार्य में किया जाता है।

10.5.2 मानकीकरण के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार

1. मानकीकृत साक्षात्कार (Standardised Interview):- साक्षात्कार के इस रुप में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर मानकीकृत होता है क्योंकि उत्तरदाता को दिये गये विकल्पों में से ही उत्तर देना होता है। इस तरह के साक्षात्कार में उत्तरदाता एक तरह से उत्तरों के विकल्पों में बंधा होता है, वह उत्तर देने के लिए स्वतंत्र नहीं होता। जैसे- हाँ या ना, सहमत या असहमत, मालूम या नहीं मालूम या कुछ कह नहीं सकते। इस तरह का साक्षात्कार परिमाणात्मक शोध (फनंदजपजंजपअम त्मेमंतबी) में उपयोग होता है।

2. अमानकीकृत साक्षात्कार (Unstandardised Interview):- अमानकीकृत साक्षात्कार में उत्तरदाता उत्तर देने के लिए विकल्पों में बंधा हुआ नहीं होता है। यह उत्तरदाता पर निर्भर करता है कि वह उत्तर किस रूप में देता है। यूँ कहा जाय कि उत्तरदाता उत्तर देने के लिए स्वतंत्र होता है। इस तरह की साक्षात्कार पद्धति का प्रयोग गुणात्मक शोध(फनंसपजंजपअम त्मेमंतबब) में होता है।

3. अर्ध मानकीकृत साक्षात्कार (Sami-Standradised Interview):- अर्ध-मानकीकृत साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता प्रश्न करने के लिए और उत्तरदाता उत्तर देने के लिए स्वतंत्र होता है। इसमें न तो प्रश्न विकल्प के रूप में बंधे होते हैं और न उत्तर ही। साक्षात्कार का यह रूप परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार के शोध में प्रयोग होता है।

10.5.3 संख्या के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार

1. वैयक्तिक साक्षात्कार (Individual interview): - वैयक्तिक साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता एक समय में एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार लेता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता आमने-सामने बैठकर वार्तालाप करते हैं। इस तरह के साक्षात्कार में उत्तरदाता से गंभीर प्रश्नों पर सटीक उत्तर मिलने की अधिक सम्भावना रहती है। इस तरह के साक्षात्कार में उत्तरदाता उत्तर देने के प्रति अधिक संवेदनशील और सहज रहता है।

2. सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview): - सामूहिक साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों का, समूह का, साक्षात्कार लेता है। इस तरह का समूह जो साक्षात्कारकर्ता के प्रश्नों से संबंधित हो। समूह छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। समूह इतना बड़ा भी न हो कि साक्षात्कारकर्ता सभी से उत्तर प्राप्त न कर सके या किसी प्रश्न पर सभी की राय न ले सके।

10.5.4 साक्षात्कार के अन्य प्रकार

1. सामान्य और गहन साक्षात्कार (General & Intensive Interview) :- शोध कार्य में आम तौर पर ऐसा नहीं होता कि आंकड़े एकत्र करने के लिए शोध का कोई प्रकार दूसरे प्रकार से श्रेष्ठ है या हीन है। किन्तु कई बार आकड़े एकत्र करने की पद्धति सामान्य इस अर्थ में होती हैं कि वह शोध कार्य में सहायक

के रूप में या अतिरिक्त जानकारी के रूप में सामने आती है, जिसे सतही स्तर की जानकारी कहा जा सकता है। शोध कार्य के लिए कहीं-कहीं पर यह जानकारी महत्वपूर्ण भी हो जाती है, इसलिए सामान्य साक्षात्कार किया जाता है। शोध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कारकर्ता द्वारा उत्तरदाता का गहन साक्षात्कार लिया जाता है। गहन साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता अपने प्रश्नों को उत्तरदाता के सामने अनेक प्रकार से प्रस्तुत करता है, जिसमें वह उत्तरदाता से अपने प्रश्न के हर पहलू पर सटीक और तथ्यपूर्ण उत्तर चाहता है। गहन साक्षात्कार संरचित (Scructured) नहीं होता है, इसमें शोध की गंभीरता के अनुरूप प्रश्न बनते रहते हैं।

2. केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview):- केन्द्रित साक्षात्कार विषय-विशेष पर आधारित होता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता से या उत्तरदाताओं के समूह से अपने शोध कार्य के लिए किसी घटना विशेष पर जानकारी एकत्र करता है। केन्द्रित साक्षात्कार में उत्तरदाता या उत्तरदाताओं का समूह उस घटना का प्रत्यक्षदर्शी होता है और साक्षात्कार उनके वास्तविक अनुभवों पर केन्द्रित होता है।

3. औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview):- औपचारिक साक्षात्कार निर्देशित और नियोजित साक्षात्कार होता है तथा इसमें साक्षात्कार सूची के द्वारा साक्षात्कार किया जाता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता आमने-सामने बैठ कर वार्ता करते है । साक्षात्कार सूची, प्रश्नावली से इस अर्थ में भिन्न होती है कि साक्षात्कार सूची में साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता द्वारा दिये गये उत्तरों को स्वयं लिखता है जबकि प्रश्नावली को उत्तरदाता के पास डॉक से भेजा जाता है और उत्तरदाता स्वयं उत्तर लिखता है।) साक्षात्कारकर्त्ता के पास साक्षात्कार सूची में पहले से तय किये गये प्रश्न होते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्न पूछने में स्वतंत्र नहीं होता है न तो वह नए प्रश्नों को पूछ सकता है और न नए प्रश्न साक्षात्कार सूची में जोड़ सकता है। ऐसा साक्षात्कार नियंत्रित होता है।

4. अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview): - इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार के लिए स्वतंत्र होता है। इसमें औपचारिक साक्षात्कार की तरह साक्षात्कार सूची को तैयार नहीं किया जाता। इसमें साक्षात्कारकर्ता को प्रश्न करने के लिए और उत्तरदाता को उत्तर देने के लिए बहुत स्वतंत्रता रहती है। इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग गुणात्मक शोध (Qualitative Research) में होता है।

5. दूरभाष साक्षात्कार (Telephone Interview):- वर्तमान में इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग प्रचलन में आने लगा है। किसी विषय पर उत्तरदाता से त्वरित जानकारी में यह एक कारगर विधि है। किन्तु विषय की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए क्या उत्तरदाता पूरे मनोभाव से प्रश्नों का उत्तर देता है या सतही स्तर की जानकारी देता है, इसका संदेह रहता है। किसी विषय पर जानकारी के लिए और समय को बचाने

के लिए साक्षात्कार का यह रूप उपयोगी है। इसी प्रकार वर्तमान समय में इन्टरनेट सुविधा के माध्यम से भी साक्षात्कार किया जाता है।

10.6 साक्षात्कार की प्रक्रिया

साक्षात्कार कैसे किया जाय? इसके लिए एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया का होना अनिवार्य है। यदि साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार करने के लिए मापदण्ड तय नहीं करेगा, किसी प्रक्रिया को नहीं अपनाएगा तो साक्षात्कार के सफल होने की सम्भावना नहीं रहती। साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार के पूर्व, साक्षात्कार के दौरान और साक्षात्कार के उपरान्त यानि बाद में किस प्रकार की प्रक्रिया को अपनाया जाय, इसका एक लिखित रूप साक्षात्कारकर्ता के पास होना चाहिए। साक्षात्कार की प्रक्रिया को तीन भागों में विभाजित कर समझने का प्रयास करते हैं।

10.6.1 साक्षात्कार से पूर्व की प्रक्रिया

साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करने से पूर्व क्या-क्या तैयारियां करनी हैं, इसका विशेष ध्यान रखना होता है।

1. साक्षात्कारकर्ता को अपने शोध विषय के अनुरूप उत्तरदाता की पहचान करनी होती है कि कौन सा उत्तरदाता या उत्तरदाताओं का समूह उसे महत्वपूर्ण जानकारी दे सकता है।

2. उत्तरदाता की पहचान करने के उपरान्त उससे सम्पर्क किया जाता है। सम्पर्क, टेलीफोन के माध्यम से या स्वयं मिल कर या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से किया जा सकता है। सबसे अच्छा यह है कि साक्षात्कारकर्ता स्वयं जा कर उत्तरदाता से मिले, इसका लाभ ये होगा कि वह उत्तरदाता के व्यवहार, हाव-भाव से अच्छी तरह से परिचित हो जायेगा। सीधे जा कर उत्तरदाता से साक्षात्कार करना एक सहज प्रक्रिया नहीं होगी, इसमें न तो साक्षात्कारकर्ता और न ही उत्तरदाता सहज होगा।

3. साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए समय और स्थान का चयन करना होगा।

4. साक्षात्कारकर्ता के लिए ये आवश्यक है कि वह साक्षात्कार करने से पूर्व अपने और उत्तरदाता के बीच एक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण बना ले।

5. किसी विशेष व्यक्ति से साक्षात्कार करने के लिए साक्षात्कारकर्ता को स्वयं को सहज बनाये रखना अनिवार्य है ताकि साक्षात्कार के दौरान वह किसी तरह की घबराहट या असहजता महसूस न करे।

6. साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों का एक लिखित प्रारुप तैयार कर ले।

10.6.2 साक्षात्कार के दौरान की प्रक्रिया

1. साक्षात्कार की प्रकिया प्रारम्भ करने से पहले साक्षात्कारकर्ता को उत्तरदाता का अभिनन्दन करते हुए औपचारिक रूप से अपना परिचय देना चाहिए।

2. साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता आमने-सामने बैठकर वार्ता कर रहे हों तो पूरे साक्षात्कार के दौरान ये आवश्यक है कि दोनों के बीच में एक सहज और सरल वातावरण हो।

3. साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता, दोनों को पूरे साक्षात्कार के दौरान एक-दूसरे को सहज बनाए रखने के लिए सहयोग करना चाहिए।

4. साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता द्वारा दिये गये उत्तरों को या तो लिखे या किसी इलेक्ट्रानिक माध्यम से संरक्षित करे।

5. प्रश्नों के लिखित प्रारूप को सामने रखकर साक्षात्कारकर्ता को उत्तरदाता से प्रश्न करने चाहिए।

6. शोध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कारकर्ता को उत्तरदाता से सटीक और नपे-तुले शब्दों में प्रश्न पूछने चाहिए।

10.6.3 साक्षात्कार के उपरान्त की प्रक्रिया

1. साक्षात्कार समाप्त होने पर सर्वप्रथम साक्षात्कारकर्ता को उत्तरदाता के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना चाहिए।

2. साक्षात्कार के उपरान्त साक्षात्कारकर्ता का मुख्य कार्य यह है कि वह उत्तरदाता से प्राप्त की गयी जानकारी व सूचनाओं का आकलन कर अपनी शोध आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवस्थित करे।

10.7 साक्षात्कार में ध्यान देने वाली बातें

1. उत्तरदाता द्वारा पहले प्रश्न का उत्तर पूरा करने के उपरान्त ही साक्षात्कारकर्ता को अगला प्रश्न करना चाहिए।

2. साक्षात्कारकर्ता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उत्तरदाता साक्षात्कार की प्रक्रिया से किसी प्रकार की असहजता या उबाऊपन महसूस न करे।

3. साक्षात्कारकर्ता के प्रश्नों में स्पष्टता होनी आवश्यक है। प्रश्न इस प्रकार का नहीं होना चाहिए कि उत्तरदाता को प्रश्न समझने में कठिनाई हो या वह प्रश्न समझ ही न पा रहा हो। किसी विशिष्ट व्यक्ति का साक्षात्कार लेने के दौरान साक्षात्कारकर्ता को स्वयं को सहज बनाए रखे और समय का विशेष ध्यान रखे।

4. साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार के दौरान अपने विषय से भटकना नहीं चाहिए। वह उत्तरदाता से उन्हीं प्रश्नों को पूछे जो उसके शोध कार्य के लिए आवश्यक हों।

5. उत्तरदाता से प्रश्न करने पर, प्रश्न बहुत अधिक लम्बे नहीं होने चाहिए।

6. यदि साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्ता के मन में कोई नया प्रश्न आता है तो उसे लिखकर रखना अति आवश्यक है।

10.8 साक्षात्कार के गुण और सीमाएं

समाज विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य के लिए प्रयोग होने वाली पद्धतियों में साक्षात्कार पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है। यह बात भी सही है कि प्राकृतिक विज्ञानों की तरह सामाजिक विज्ञानों में शोध कार्य के लिए न तो कोई प्रयोगशाला होती है, न परिमाणात्मक सूत्र जिन पर शोध की नींव खड़ी हो सके। समाज विज्ञान के क्षेत्र में शोधकर्ता को शोधकार्य के लिए प्राथमिक स्तर के आकड़े एकत्र करने के लिए क्षेत्र का भ्रमण और अवलोकन, लोगों से वार्तालाप और उनके साक्षात्कार इन सब पर निर्भर रहना पड़ता है। शोध पद्धतियों में प्राथमिक स्तर के आंकड़े एकत्र करने के लिए साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण पद्धति है। इसके अपने कुछ गुण और सीमाएं हैं।

10.8.1 साक्षात्कार के गुण

1. शोध कार्य के लिए साक्षात्कार इस अर्थ में उपयोगी होता है कि उसे शीघ्र और सटीक जानकारी मिल जाती है।

2. साक्षात्कार के माध्यम से साक्षात्कारकतार्, उत्तरदाता से गंभीर और महत्वपूर्ण विषयों पर अपनी जरूरतों और संतुष्टि के अनुरूप उत्तर प्राप्त कर सकता है।

3. किसी प्रश्न को उत्तरदाता द्वारा न समझ पाने की स्थिति में उत्तरदाता साक्षात्कारकर्ता से प्रश्न को स्पष्ट करा सकता है।

4. साक्षात्कार के माध्यम से साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता दोनों आमने-सामने रहते हैं जिस कारण किसी प्रकार की भाषायी या लेखनी की अस्पष्टता का सामना नहीं करना पड़ता है। क्योंकि साक्षात्कारकर्ता स्वयं उत्तरदाता द्वारा दिये गये उत्तरों को लिखता है और भाषायी अस्पष्टता इस अर्थ में कि साक्षात्कारकर्ता, उत्तरदाता की भाषा न समझ पाने पर किसी स्थानीय व्यक्ति की या द्विभाषीय व्यक्ति की सहायता ले सकता है।

5. साक्षात्कार में उत्तरदाता से व्यक्तिगत सम्पर्क होता है, जिस कारण उत्तरदाता को विश्वास में लेकर अधिक गहन जानकरी एकत्र की जाने की सम्भावना रहती है।

6. साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता के हाव-भाव या यूँ कहें कि उसके मिजाज को भांपकर अपने प्रश्नों को रखता है।

10.8.2 साक्षात्कार की सीमाएं

1. यह आवश्यक नहीं है कि उत्तरदाता हर बार साक्षात्कारकर्ता के सभी प्रश्नों की सही उत्तर दे रहा हो।

2. अपनी पहचान के उजागर होने के डर से उत्तरदाता जानकारी को छिपा भी सकता है या गलत जानकारी भी दे सकता है।

3. साक्षात्कार की प्रक्रिया प्रश्नावली के मुकाबले अधिक जटिल, खर्चीली और समय लेने वाली होती है।

4. साक्षात्कार की प्रक्रिया लम्बी होने पर उत्तरदाता अपने को थका हुआ महसूस करता है और वह जल्द से जल्द साक्षात्कार को समाप्त करने की कोशिश करता है।

5. कई बार उत्तरदाता द्वारा उत्तर स्पष्ट न देने की स्थिति में साक्षात्कारकर्ता को उसे लिपिबद्ध करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

6. साक्षात्कारकर्ता द्वारा अधिक दबाव की स्थिति में प्रश्न पूछे जाने पर उत्तरदाता का बीच में ही साक्षात्कार छोड़ कर चले जाने का डर रहता है।

7. उत्तरदाता से बहुत अधिक निजी सवाल पूछे जाने पर हो सकता है वह साक्षात्कार छोड़ दे।

10.9 सार-संक्षेप

सामाज विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य करने के लिए शोध पद्धतियों में साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण पद्धति है। साक्षात्कार दो व्यक्तियों के आमने-सामने बैठ कर वार्तालाप के माध्यम से जानकारी एकत्र करने की प्रक्रिया है। इसमें साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता के बीच एक मैत्रीपूर्ण और सहयोग पूर्ण वातावरण तैयार होता है। साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए अपनी सीमाओं का पता होता है। शोध की प्रकृति को ध्यान में रखकर साक्षात्कारकर्ता अपने शोध कार्य के लिए साक्षात्कार के प्रकारों का चयन करता है। ध्यान रहे कि साक्षात्कार का कोई भी प्रकार किसी अन्य प्रकार से कमतर या उच्चतर नहीं होता है। साक्षात्कार पद्धति के जहाँ अनेक गुण हैं हीं इसकी अपनी सीमाएँ भी है। साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए उसकी प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देना होता है।

10.10 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. वी0एम0 पामर ने साक्षात्कार को स्पष्ट करते हुए कहा है ‘‘साक्षात्कार दो व्यक्तियों के बीच एक सामाजिक स्थिति की रचना करता है, इसमें प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों व्यक्तियों को परस्पर उत्तर प्रति उत्तर देने पड़ते हैं।’’

इसी प्रकार एम0एन0 वसु के शब्दों में ‘‘साक्षात्कार, व्यक्तियों के आमने-सामने का कुछ बातों पर मिलना या एकत्र होना, कहा जा सकता है’’। गुडे तथा हॉट ने साक्षात्कार को मूल रूप में एक सामाजिक प्रक्रिया माना है।

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि साक्षात्कार, दो या दो से अधिक व्यक्तियों का वार्तालाप या निकट सम्पर्क होता है। इसमें साक्षात्कार करने वाले और साक्षात्कार देने वाले में आमने-सामने के प्राथमिक सम्बन्ध स्थापित होते है तथा आपसी विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारियाँ एकत्र की जाती हैं।

2. शोध की पद्धतियों में साक्षात्कार पद्धति अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामाजिक विज्ञान के विषयों के शोधकार्यों में साक्षात्कार पद्धति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शोध कार्य में साक्षात्कार कुछ उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। जो इस प्रकार हैं:

(1) साक्षात्कार का उद्देश्य शोध से संबंधित महत्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित करना है जिसमें साक्षात्कार लेने वाला और साक्षात्कार देने वाला दोनों प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क स्थापित करते हैं और एक-दूसरे के आमने-सामने बैठकर खुली एवं स्पष्ट बातें करते हैं। इसमें उत्तर देने वाले व्यक्ति के ज्ञान एवं अनुभवों को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कारकर्ता शोध के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करते हैं।

(2) साक्षात्कार का उद्देश्य व्यक्ति/उत्तरदाता के ज्ञान व अनुभवों के आधार पर वे महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करना है जो शोध कार्य में सहायक हों।

(3) साक्षात्कार के माध्यम से हम तथ्यों और आंकड़ांे की वैधता की जॉच कर सकते हैं।

(4) साक्षात्कार पद्धति का उद्देश्य शोध में गुणवत्ता लाना भी है।

3. मानकीकरण के आधार पर साक्षात्कार के प्रकार

(i) मानकीकृत साक्षात्कार (Standardised Interview) - साक्षात्कार के इस रुप में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर मानकीकृत होता है क्योंकि उत्तरदाता को दिये गये विकल्पों में से ही उत्तर देना होता है। इस तरह के साक्षात्कार में उत्तरदाता एक तरह से उत्तरों के विकल्पों में बंधा होता है, वह उत्तर देने के लिए स्वतंत्र नहीं होता। जैसे- हाँ या ना, सहमत या असहमत, मालूम या नहीं मालूम या कुछ कह नहीं सकते। इस तरह का साक्षात्कार परिमाणात्मक शोध (फनंदजपजंजपअम त्मेमंतबी) में उपयोग होता है।

(ii) अमानकीकृत साक्षात्कार (Unstandardised Interview) - अमानकीकृत साक्षात्कार में उत्तरदाता उत्तर देने के लिए विकल्पों में बंधा हुआ नहीं होता है। यह उत्तरदाता पर निर्भर करता है कि वह उत्तर किस रूप में देता है। यूँ कहा जाय कि उत्तरदाता उत्तर देने के लिए स्वतंत्र होता है। इस तरह की साक्षात्कार पद्धति का प्रयोग गुणात्मक शोध में होता है।

(iii) अर्ध मानकीकृत साक्षात्कार (Sami-standradised interview)- अर्ध-मानकीकृत साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता प्रश्न करने के लिए और उत्तरदाता उत्तर देने के लिए स्वतंत्र होता है। इसमें न तो प्रश्न विकल्प के रूप में बंधे होते हैं और न उत्तर ही। साक्षात्कार का यह रूप परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार के शोध में प्रयोग होता है।

4. साक्षात्कार से पूर्व की प्रक्रिया: साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करने से पूर्व क्या-क्या तैयारियां करनी हैं, इसका विशेष ध्यान रखना होता है।

i. साक्षात्कारकर्ता को अपने शोध विषय के अनुरूप उत्तरदाता की पहचान करनी होती है कि कौन सा उत्तरदाता या उत्तरदाताओं का समूह उसे महत्वपूर्ण जानकारी दे सकता है।

ii. उत्तरदाता की पहचान करने के उपरान्त उससे सम्पर्क किया जाता है। सम्पर्क, टेलीफोन के माध्यम से या स्वयं मिल कर या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से किया जा सकता है। सबसे अच्छा यह है कि साक्षात्कारकर्ता स्वयं जा कर उत्तरदाता से मिले, इसका लाभ ये होगा कि वह उत्तरदाता के व्यवहार, हाव-भाव से अच्छी तरह से परिचित हो जायेगा। सीधे जा कर उत्तरदाता से साक्षात्कार करना एक सहज प्रक्रिया नहीं होगी, इसमें न तो साक्षात्कारकर्ता और न ही उत्तरदाता सहज होगा।

iii. साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए समय और स्थान का चयन करना होगा।

iv. साक्षात्कारकर्ता के लिए ये आवश्यक है कि वह साक्षात्कार करने से पूर्व अपने और उत्तरदाता के बीच एक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण बना ले।

v. किसी विशेष व्यक्ति से साक्षात्कार करने के लिए साक्षात्कारकर्ता को स्वयं को सहज बनाये रखना अनिवार्य है ताकि साक्षात्कार के दौरान वह किसी तरह की घबराहट या असहजता महसूस न करे।

vi. साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों का एक लिखित प्रारुप तैयार कर ले।

10.11 अभ्यास- प्रश्न

1. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? इसकी परिभाषा दीजिए।

2. साक्षात्कार की प्रकिया की विस्तार से चर्चा कीजिए।

3. साक्षात्कार के प्रकारों की विवेचना कीजिए।

4. साक्षात्कार की उपयोगिता या गुणों की समीक्षा कीजिए।

4. साक्षात्कार के उद्देश्यों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

10.12 पारिभाषिक शब्दावली

1. प्राकृतिक विज्ञान- भौतिक, रसायन, जन्तु और वनस्पति विज्ञानों को प्राकृतिक विज्ञान कहते हैं

2. लिपिबद्ध करना- लिखना ।

3. उपरान्त- बाद में ।

10.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान- राम आहूजा

2. रिसर्च मैथोडालीजी- मनोज शर्मा

3. रिसर्च मैथोडालीजी (मैथड्स एंड टैकनिक्स)- सी0आर0 कोठारी

4. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान- राम आहूजा

5. रिसर्च मैथोडालॉजी- मनोज शर्मा

6. रिसर्च मैथोडालीजी (मैथड्स एंड टैकनिक्स)- सी0आर0 कोठारी

इकाई 11 **अनुसूची**

Schedule

इकाई की रूपरेखा

11.0 अध्ययन के उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11..2 अनुसची: अर्थ तथा परिभाषा

11.2.1 अनुसूची की विशेषताएं

11.2.2 अनुसूची के उद्देश्य

11.3 अनुसूची के प्रकार

11.4 अनुसूची के गुण

11.5 अनुसूची के दोष

11.6 अनुसूची द्वारा आँकड़ों का संकलन

11.7 प्रश्नावली तथा अनुसूची में अंतर

11.8 सार-संक्षेप

11.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.10 अभ्यास-प्रश्न

11.11 पारिभाषिक शब्दावली

11.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.0 प्रस्तावना

अनुसूची सूचना एकत्र करने की आधुनिक विधियों में से एक प्रमुख विधि है, जिसके अन्तर्गत उत्तरदाताओं के समक्ष कुछ चयनित प्रश्नों को प्रस्तुत किया जाता है और उनके उत्तरों के माध्यम से प्राप्त जानकारी के द्वारा अध्ययन कार्य को प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यह मुख्यतः प्राथमिक सूचनाएं एकत्र करने की एक महत्वपूर्ण प्रविधि है। यह प्राथमिक तथ्य प्राप्त करने का एक विश्वसनीय और उपयोगी माध्यम है क्योकि, अनुसूची में किसी समस्या को प्रत्यक्ष तौर पर अवलोकन करते हुए सूचनाओं का संकलन किया जाता है। अनेक आधुनिक विधियों और यन्त्रों द्वारा सूचना प्रदान करने वालों से सामग्री संग्रहीत की जाती है, अनुसूची भी एक ऐसा ही यंत्र है जो कि अपनी विश्वसनीयता के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि हैं।

11.1 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा;

- अनुसूची की परिभाषा देना,
- अनुसूची की विशेषताओं की चर्चा करना,
- अनुसूची के प्रकारों को बताना,
- अनुसूची द्वारा आँकड़ों की प्रक्रिया की चर्चा करना,
- अनुसूची तथा प्रश्नावली में अन्तर को बताना।

11.2 अर्थ और परिभाषा

अध्ययन कर्ता के द्वारा उत्तरदाताओं के समीप जाकर स्वयं सूचना एकत्र करने हेतु सर्वप्रथम एक सूची जिसमें अनेक प्रश्नों को पहले से निश्चित करने लिखित रूप में सुरक्षित कर लिया जाता है और इन प्रश्नों के उत्तर को स्वयं ही शोधकर्ता द्वारा भरा जाता है। यह साक्षात्कार का एक सरल माध्यम है जिसमें आमने-सामने बैठकर सूचना एकत्र करनी होती है और इसे सूचनादाताओं को डाक के द्वारा नहीं भेजा जाता है। इस दृष्टि से प्रश्नावली भी एक प्रकार की अनुसूची ही होती है यद्यपि दोनों के प्रयोग करने के तरीके में अन्तर निहित है। प्रश्नावली विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब सूचनाओं को विस्तृत क्षेत्र से एकत्र करना होता है, ऐसी स्थिति में प्रश्नावली को डाक के द्वारा भी भेजा जाता है। जब सूचनाएं समीप स्थित क्षेत्र से एकत्र करनी होती हैं तब अनुसूची का प्रयोग करते हुए अनुसंधानकर्ता द्वारा स्वयं उस क्षेत्र में जाकर अध्ययन से सम्बन्धित सूचना की प्राप्ति की जाती है।

गुडे तथा हाट के अनुसार, अनुसूची प्रश्नों के एक समूह के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला नाम है जो साक्षात्कार करने वाले के द्वारा अन्य व्यक्तियों से आमने-सामने की स्थिति में पूछा और पूर्ण किया जाता है।

बोगार्डस के अनुसार, संक्षिप्त प्रश्नों की रचना को अनुसूची कहते हैं जिसे सामान्यतः सर्वेक्षणकर्ता अपने पास रखता है और अपने अन्वेषण कार्य में आगे बढ़ने के साथ-साथ उसे पूर्ण करता जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूची अनेकानेक प्रश्नों से युक्त ऐसी सूची है जिसमें व्यवस्था और निश्चित क्रम आदि गुण समाहित होते हैं। उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर साक्षात्कार की प्रक्रिया के माध्यम से अध्ययनकर्ता द्वारा सूचनाओं का संकलन अनुसूची का उपयोग करके किया जाता हैं।

स्वप्रगति परीक्षण प्रश्न

1. किन्हीं दो परिभाषाओं के माध्यम से अनुसूची का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

11.2.1 अनुसूची की विशेषताएं

अनुसूची में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:

1. प्रश्नों का उचित क्रम: अनुसूची प्रश्नों की एक सूची है जिसमें क्रमबद्ध रूप से प्रश्नों को लिखा जाता है। इन सभी प्रश्नों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उनमें परस्पर अन्तःसम्बन्धित और क्रमबद्ध प्रश्नों के माध्यम से समस्या के विभिन्न पहलुओं के बारे में व्यवस्थित रूप से जानकारी प्राप्त की जाती है।

2. सरल एवं स्पष्ट प्रश्न: अनुसूची की दूसरी प्रमुख विशेषता उसमें सरल एवं स्पष्ट प्रश्नों का होना है। अनुसूची का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि जितने भी प्रश्न हों वे सरल, स्पष्ट तथा एकार्थी हों। अर्थात् जिन्हें विभिन्न सूचनादाता एक ही अर्थ में समझ सकें।

3. सीमित आकार: अनुसूची के निर्माण में प्रश्नों की संख्या कितनी होनी चाहिए, यह समस्या की प्रकृति तथा सूचनादाता पर निर्भर करता है। अनुसूची का आकार सीमित होना चाहिए। प्रश्न इतने लम्बे न हों कि उत्तरदाता ऊब जाए।

4. सही सन्देशवाहन: अनुसूची सन्देशवाहन का एक साधन है। यह इस प्रकार, प्रश्नों से युक्त होनी चाहिए कि सूचनादाता इसे समझ सकें। इसकी भाषा सरल और स्पष्ट हो तभी सूचनादाता सही अर्थों में प्रश्नों को समझ सकेंगे।

5. सही प्रत्युत्तर: एक अच्छी अनुसूची उसे कहा जाता है जिसमें प्रश्नों द्वारा जिस प्रकार की सूचनाएं अपेक्षित हों, उसी प्रकार के उत्तर प्राप्त हों। इसके द्वारा सूचनादाता सही और उपयोगी उत्तर प्रदान करते हैं।

6. क्रॉस प्रश्नों की व्यवस्था: एक अच्छी अनुसूची में समस्या से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के बारे में क्रॉस प्रश्न पूछे जाने की व्यवस्था होती है ताकि सूचनादाता द्वारा दी गयी सूचना की जांच विभिन्न प्रश्नों के आधार पर ही की जा सके।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त एक श्रेष्ठ अनुसूची में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है:

1. भौतिक स्वरूप: अनुसूची की बाह्य आकृति अर्थात् कागज, रंग-रूप तथा टंकण भी ठीक होना चाहिए जिससे अनुसूची आकर्षक लगे।

2. प्रत्यक्ष सम्पर्क: अनुसूची में अध्ययनकर्ता को स्वयं उत्तरदाता से सम्पर्क स्थापित करके अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित प्रश्नों को पूछकर उनके उत्तर प्राप्त करने पड़ते हैं।

3. अन्य प्रविधियों का प्रयोग: अनुसूची में अवलोकन तथा साक्षात्कार प्रविधियों के गुणों का समावेश होता है इसके माध्यम से अध्ययनकर्ता प्राप्त सूचनाओं की सत्यता को जानने का प्रयत्न करता है। अनुसूची के द्वारा किए जाने वाले अवलोकन और साक्षात्कार में अध्ययनकर्ता अपने विषय से अलग नहीं हट पाता।

11.2.2 अनुसूची के उद्देश्य

अनुसूची के मौलिक उद्देश्यों को सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है:

1. वैज्ञानिक अध्ययन: अनुसंधान को और अधिक प्रामाणिक और विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्धित बनाने का कार्य अनुसूची की सहायता से सरलतापूर्वक किया जा सकता है, जिसका प्रमुख कारण अनुसूची का

वैज्ञानिक अध्ययन हेतु उपयुक्त पद्धति होना हैं। अनुसूची की सहायता से सूचनादाताओं से सही जानकारी प्राप्त करना अध्ययनकर्ता के लिए इसलिए सहज होता है। क्योंकि, अनुसूची के द्वारा अध्ययनकर्ता विषयवस्तु या कार्य से सम्बन्धित क्षेत्र में जाकर व्यक्तियों से निजी सम्पर्क बनाकर निर्धारित प्रश्नों के उन संतोषजनक उत्तरों को प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्न करता है। जोकि, अनुसंधान की दृष्टि से लाभप्रद एवम् अर्थपूर्ण हों। इस प्रकार के वैज्ञानिक पद्धति से किए गए अनुसंधान में काफी हद तक प्रमाणिकता आ जाती है।

2. अनुपयोगी संकलन से बचाव: एक अनुसंधानकत्ता अपने अध्ययन कार्य में समुचित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अनुसूची का निर्माण करता है। अनुसूची का मुख्य कार्य अध्ययन से सम्बन्धित प्रश्नों का क्रमानुसार सटीक उत्तर प्राप्त करना होता हैं अनुसूची में प्रश्न पहले से ही एक क्रम मे लिख लिए जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप अध्ययनकर्ता द्वारा केवल विषय से सम्बद्ध आकँड़ों, सूचनाओं व तथ्यों का संकलन एवं संग्रहण होता है। उससे कोई गलती होने की या अल्प या अधिक मात्रा में सामग्री संकलन की सम्भावना नहीं रहती है।

3. पूर्ण अध्ययन: अनुसूची में अनुसंधान विषय से सम्बन्धित सभी तथ्यों को संपूर्ण रूप से ध्यान में रखते हुए एक व्यवस्थानुसार प्रश्नों को इस प्रकार बनाया जाता है कि विषय के गहन अध्ययन द्वारा उसका समेकित अध्ययन कर लिया जाता है। इस कारण सूचनाओं को भी पूर्णतया संकलित कर लिया जाता है और तथ्य व सूचना प्राप्त करते समय अध्ययनकर्ता को अनावश्यक रुप से विषय से सम्बन्धित प्रश्नों को स्मरण करने हेतु मस्तिष्क पर दबाव भी नहीं डालना पड़ता है।

4. संख्यात्मक आकंड़ों के संकलन में उपयोगी: अनुसूची विचारात्मक एवम् भावनात्मक जानकारी को प्राप्त करने हेतु अधिक उपयोगी नहीं है अपितु इस प्रविधि की सहायता से आँकड़ों एवम् संख्यात्मक सूचनाओं को अधिक सटीक रुप में प्राप्त किया जाता है, इस हेतु यह अधिक उपयुक्त होती है।

11.3 अनुसूची के प्रकार

अध्ययनकर्ता के द्वारा चयनित अध्ययन विषय एवम् कार्य-क्षेत्र की प्रकृति-विशेष एवम् कार्य के उद्देश्यों और लक्षित समूह में भेद होने के कारण उनके निर्मित अनुसूचियों के प्रकारों में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। उपरोक्त भिन्नताओं को दृष्टिगत रखते हुए भिन्न-भिन्न प्रकार की बनी हुई अनुसूचियों को अध्ययन की सुविधानुसार अधोलिखित भागों में बाँटा जा सकता है। लुण्डबर्ग ने अनुसूचियों को निम्नलिखित तीन मुख्य भागों में विभक्त किया है:

1-ऐसी अनुसूचियां जिनके अन्तर्गत अभिवृतियों तथा मतों का निर्धारण और उनकी माप की गई हो।

2-ऐसी अनुसूचियां जो कि वस्तुनिष्ठ तथ्यों का उल्लेख करने हेतु प्रयुक्त हों।

3-ऐसी अनुसूचियां जो सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं की स्थिति और कार्यों की जानकारी रखने से सम्बन्धित हैं।

पी0 वी0 यंग ने अनुसूचियों को पाँच भागों में विभाजित किया है:

1-अवलोकन अनुसूची

2-साक्षात्कार अनुसूची

3-मूल्यांकन अनुसूची

4-प्रलेख अनुसूची

5-संस्था सर्वेक्षण अनुसूची

उपर्युक्त अनुसूचियों का विवरण निम्न प्रकार है:

1.अवलोकन अनुसूची- अवलोकन सामाजिक अनुसंधान की एक प्रमुख पद्धति है। अनुसूची के इस प्रकार के अन्तर्गत प्रश्नों का पहले से निर्धारण नहीं किया जाता है। अवलोकन अनुसूची का मुख्य लक्ष्य अध्ययन किये जाने वाले विषय से सम्बन्धित पक्षों को अधिक स्पष्ट करना होता है। इस प्रकार की अनुसूची के अन्तर्गत प्रश्नों के उत्तर न प्राप्त कर, प्रत्यक्ष रूप में स्वयं वस्तुस्थिति का आकलन और विष्लेषण करके सूचनाओं को एकत्र कर लिया जाता है। अतः अवलोकन अनुसूची में सूचनादाताओं से पूछकर सामग्री का संग्रह न करके प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा सूचना संग्रहण कर लिया जाता है।

2.साक्षात्कार अनुसूची- इस अनुसूची के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के द्वारा सूचना एकत्र की जाती है। जब तथ्यों की विस्मृति की सम्भावना अधिक हो तथा आँकड़ों की प्रकृति गुणात्मक हो, तब ऐसी स्थिति में साक्षात्कार अनुसूची को प्रयुक्त किया जाता है। यह अनुसूची साक्षात्कार के लिए प्रयोग की जाती हैं। सामाजिक अनुसंधानों में यह पद्धति विशेष रूप से प्रचलन में है। साक्षात्कार अनुसूची को बनाते समय अध्ययन विषय के समस्त संभावित पक्षों को समन्वित करते हुए तत्सम्बन्धी प्रश्नों को इसमें इस प्रकार समाविष्ट कर लिया जाता है कि सभी प्रकार के आँकड़े स्पष्ट रूप में प्राप्त हो सकें। इसमें प्रश्नों का निर्धारण करने के पश्चात् प्रत्येक प्रश्न के समक्ष रिक्त स्थान होता है जिसकी पूर्ति साक्षात्कारकत्र्ता के द्वारा स्वयं सुव्यवस्थित रीति से की जाती है। तथ्यों को वर्गीकृत करने और उनका सारणीयन करने हेतु यह विधि सर्वाधिक लाभप्रद सिद्ध होती है, यही इसका सबसे बड़ा गुण हैं।

3.मूल्यांकन अनुसूची- जब अनुसूची को मुख्य आधार बनाकर मूल्यांकन, गुण निर्धारण तथा उसकी तुलनात्मक समता को निर्धारित किया जाता है तब मूल्यांकन अनुसूची प्रयुक्त होती है। जब अध्ययन कार्य का विषय क्षेत्र अभिवृति, मत, प्रथा, फैशन इत्यादि के अन्तर्गत आता हो तब मूल्यांकन अनुसूची सफलतापूर्वक प्रयोग में लाई जाती है।

4.प्रलेख अनुसूची- प्रलेख अनुसूची के अन्तर्गत ऐसी अनुसूची निर्मित करते हैं जिसे व्यक्तिगत जीवन अध्ययन पद्धति की सहायता से सामाजिक अनुसंधान में प्रयोग किया जाता है। प्रलेख अनुसूची अन्य अनुसूचियों से कुछ भिन्न होती है, क्योकि, इसमें अन्य अनुसूचियों की भाँति आँकड़े या सूचनाएं प्राप्त करने हेतु प्रश्न बनाने का प्रावधान नहीं होता है अपितु अनेकानेक प्रलेख अनुसूचियों का उपयोग अधिकतर ऐतिहासिक, विकासात्मक तथा सर्वेक्षण प्रकार के अनुसंधानों में सामग्री प्राप्ति हेतु किया जाता है। पत्रों, अभिलेखों, पुस्तकों, पुस्तिकाओं एवं पत्रिकाओं के अध्ययन द्वारा प्राप्त सूचनाओं, सामग्री और आँकड़ों के आधार पर सूचनाओं का संग्रहण कर लिया जाता है।

5.संस्था सर्वेक्षण अनुसूची - विभिन्न संस्थाओं यथा धर्म, परिवार विवाह, शिक्षा आदि के विविध पक्षों को मूल्यांकित करने हेतु संस्था सर्वेक्षण अनुसूची को प्रयुक्त किया जाता है। इसके नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन अनुसूचियों के माध्यम से किसी संस्था विशेष का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया जाता है, वह संस्था सर्वेक्षण अनुसूची कहलाती है। जितने जटिल प्रकार की संस्था को सर्वेक्षण हेतु चयनित किया जाएगा उसके निमित्त निर्मित अनुसूची को भी तुलनात्मक रूप से विस्तृत आकारयुक्त बनाया जाता है।

मूल्यांकन अनुसूची के अन्तर्गत अध्ययन हेतु चयनित समस्या अथवा घटना को निर्धारित करने वाले चरों या कारकों के मूल्य को सुनिश्चित या उनको मूल्यांकित किए जाने का कार्य संपादित किया जाता है। यथा परिवार नियोजन, सामुदायिक विकास और विद्यालय संगम इत्यादि के सम्बन्ध में समाज के व्यक्तियों का मत व दृष्टिकोण जानने और समझने हेतु इस अनुसूची को आसानी से प्रयोग किया जाना सम्भव है।

11.4 अनुसूची के गुण अथवा लाभ

1.प्रत्यक्ष सम्पर्क- अनुसंधानकर्ता एवं सूचनादाता के मध्य प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की दिशा में अनुसूची लाभदायी है क्योंकि इस प्रकार के सम्पर्क द्वारा जो सूचना सामग्री प्राप्त होती है वह प्राथमिक सामग्री होती है तथा वह काफी हद तक यथार्थ के निकट होती है।

2. यथार्थ और ठोस सूचनाएं- वास्तविक और सटीक सूचनाओं की प्राप्ति होना अनुसूची प्रविधि की मुख्य विशेषता है। जब अध्ययनकर्ता सूचनादाताओं से व्यक्तिगत एवं सीधा सम्वाद स्थापित कर अध्ययन क्षेत्र के अवलोकन के द्वारा सूचनाकदाता के निकट सहज वातावरण की सृष्टि कर लेता है तब वह अल्प प्रयास द्वारा या स्वयमेव ही यथार्थपरक और ठोस सूचना प्रदान कर देता है।

3. अधिक प्रत्युत्तर- इस प्रविधि में अनुसंधानकर्ता और सूचनादाता एक दूसरे के समक्ष बैठकर प्रक्रिया को प्रवाहमान करते हैं अनुसंधानकर्ता द्वारा सूचनादाता से प्रश्न पूछे जाने पर सूचनादाता उनका उत्तर देते हैं और यदि यह सम्वाद सम्पर्क उपयुक्त और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में हुआ है तब ऐसी स्थिति में एक ओर तो प्रक्रिया सरलतापूर्वक पूर्ण होती है और दूसरी और प्रश्नों के प्रत्युत्तरों की संख्या में वृद्धि की आशा अधिक होती है।

4. अस्पष्ट प्रश्नों की व्याख्या सम्भव: अनुसूची विधि के द्वारा प्रश्न उत्तर की प्रक्रियान्तर्गत यदि सूचना प्रदान करने वाले व्यक्ति को कोई प्रश्न सही तरीके से समझ में न आ पाए तब वह अनुसंधानकर्ता से उसको सुस्पष्ट करने हेतु कह सकता है जिसके फलस्वरुप प्रत्युत्तर मिलने की संभावना में भी वृद्धि हो जाती है।

5. अध्ययन में लोच का गुण- अनुसूची में अध्ययन कार्य से सम्बन्धित स्वरूप पहले से ही निर्धारित व निश्चित होता हैं तथापि उनको परिवर्तित या संशोधित किया जाना प्रतिबंधित नहीं होता हैं। इनमें लोच का गुण विद्यमान रहता हैं। अनुसूची में पूर्व-निर्धारित प्रश्नों को पूछते समय यदि अनुसंधानककर्ता को ऐसा प्रतीत होता है कि उसे प्रश्नों में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है अथवा कुछ नवीन प्रकार के प्रश्नों के समावेश से उसका अध्ययन कार्य लाभान्वित हो सकता है और उसकी उपयोगिता में वृद्धि हो सकती है तब वह अध्ययन जारी रखते हुए अनुसूची में आवश्यकतानुसार परिशोधन व संशोधन कर सकता है, यह उसके लोच के गुण के कारण ही सम्भव हो सकता है।

6. सारणीयन में सहायक- अनुसूची में प्रश्नों को श्रेणीबद्ध तरीके से और एक विशेष क्रमानुसार बाँट कर रखा जाता है जिससे अध्ययन में भी सरलता रहती है और अनुसूची के प्रश्न उत्तरानुसार उसको सारणीकृत करने में भी सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार सारणीयन होने से उत्तरदाताओं से प्राप्त उत्तरों को सांख्यिकीय सूत्रों के अन्तर्गत भी प्रयोग किया जाना सम्भव हो जाता है।

7- नि:संकोच सूचनाओं की प्राप्ति- अनुसंधान कार्य के समय जब सूचनादाताओं से प्रश्न उत्तर किए जाते हैं तब कई बार ऐसी परिस्थिति भी उपस्थित होती है जब सूचनादाता कई प्रश्नों के उत्तर देने की इच्छा नहीं रखते। ऐसे अवसरों पर अनुसंधानकर्ता द्वारा सूचनादाताओं से स्थापित व्यक्तिगत एवं घनिष्ठ सम्पर्क सम्वाद विकसित करके अध्ययनकर्ता सूचनादाता का मानसिक अनुकूलन करके उसके अन्तर्मन में छिपी शंकाओं

का निराकरण करके मुक्त सम्वाद स्थापित करने में उसे सहयोग प्रदान करता है। इसके द्वारा उपयुक्त सूचनाओं के संग्रह में भी सहायता प्राप्त होती है।

स्वप्रगति परीक्षण

2. अनुसूची के कोई पांच गुण बताइए।

.....

.....

.....

.....

11.5 अनुसूची के दोष

1. सीमित क्षेत्र का अध्ययन- जब उत्तरदाताओं की संख्या अल्प हो अथवा वह एक सीमित क्षेत्र में सिमटे हों तभी अनुसूची प्रविधि का लाभ उठाया जा सकता है, अन्यथा सूचनादाताओं के विशाल परिधि में फैले होने के कारण सभी से निजी व घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना एक दुष्कर कार्य होता है और ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्ता द्वारा स्वयं ही अनुसूची को पूरित करने का कार्य किया जाने के कारण वह अध्ययन करने में समर्थ नहीं हो सकता है। इस कारण अनुसंधानकर्ता एक सीमित क्षेत्र में या सीमित संख्या में सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाओं को संग्रहीत करता है।

2. उत्तरदाताओं से सम्पर्क की समस्या - इस प्रविधि में अध्ययनकर्ता जिस अध्ययन-विशेष हेतु अनुसंधान कार्य करता है उसके अन्तर्गत उसे सभी सूचनादाताओं के निवास गृह का ज्ञान होना तथा उनसे व्यक्तिगत परिचय स्थापित करना एक मूलभूत आवश्यकता होती है। अनुसूची को पूरित करने हेतु उसे उत्तरदाताओं के पास उपलब्ध समयानुसार उनसे सूचनाऐं एकत्र करनी होती हैं। ऐसे में सूचनादाताओं की कार्य/व्यावसायिक व्यस्तता के कारण उसे सम्पर्क स्थापित करने मे कठिनाई का सामना भी करना पड़ता हैं।

3. सार्वभौमिक प्रश्नों की समस्या: सूचनादाताओं के मध्य विद्यमान शैक्षिक-आर्थिक तथा सामाजिक स्तर की विविधताओं एवं पारस्परिक विभिन्नताओं के कारण अनुसूची में सभी प्रश्न एक समान सम्मिलित नहीं किए जा सकते हैं। सूचनादाताओं के पारस्परिक अन्तर को दृष्टिगत रखते हुए सभी से ऐसे सामान्य प्रश्न नहीं पूछे जा सकते, जिन्हें सभी व्यक्ति समझें और उत्तर देने में समर्थ हों। प्रश्न निर्माण में उनकी भिन्नताओं

को ध्यान में रखना आवश्यक है। अतः अनुसूची में सार्वभौमिक प्रश्नों को बनाकर सूचीबद्ध करना श्रमसाध्य कार्य होता है।

4.धन एवं समय का अपव्यय- अनुसूची प्रविधि का प्रयोग करने हेतु अध्ययनकर्ता को अध्ययन क्षेत्र में बार-बार जाना पड़ता है, सूचनादाताओं से समय एवं स्थान का निर्धारण करने के लिए पुनः-पुनः सम्पर्क स्थापित करके साक्षात्कार हेतु समय व स्थान नियत करना पड़ता है। सही उत्तर प्राप्त करने व प्रश्न समझाने हेतु बार-बार मिलकर उत्तरदाताओं से पूछ-पूछ कर सामग्री का संचयन करना पड़ता है, जिस कारण समय और धन का अनावश्यक रूप से अपव्यय होता है।

5. पक्षपात- इस प्रविधि में सूचनादाता व अनुसंधानकर्ता, दोनों के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क विकसित हो जाने के कारण कई बार सूचनादाता साक्षात्कार लेने वाले अध्ययनकर्ता की भाषा और शैली से विशेष प्रभावित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप सूचनादाता उसे जो सूचनायें प्रदान करता है, उनके पक्षपातपूर्ण होने की प्रबल सम्भावना हो जाती है।

6. साक्षात्कारकर्ता के चयन एवं प्रशिक्षण में कठिनाई- शोध हेतु चयनित विस्तृत क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं के निजी सम्पर्क स्थापित करना और समय व धन को लगाकर बिना किसी पूर्वाग्रह से प्रभावित होकर यथार्थपरक एवं ठोस जानकारी को प्राप्त करने हेतु प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का मिलना अनुसंधानकर्ता के लिए एक चुनौती से कम नहीं होता। ऐसे कुशल कार्यककर्ताओं के अभाव में शोध-कार्य का समुचित संचालन कठिन प्रतीत होता है।

स्वप्रगति परीक्षण

2. अनुसूची के किन्ही दो दोषों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

11.6 अनुसूची द्वारा आँकड़ों का संकलन

अनुसूची का मुख्य कार्य आँकड़े एकत्रित करना है। मात्र अनुसूची का निर्माण कर लेने से सामाजिक अनुसंधान से सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह ठीक नहीं है। अनुसूची में साक्षात्कार प्रविधि के गुणों का समावेश

होता है। इस कारण अनुसूची की सफलता साक्षात्कार पर निर्भर करती है। अनुसूची द्वारा आँकड़े प्राप्ति को प्रक्रिया की निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है:

1. तथ्य सामग्री का संकलन: तथ्य सामग्री के संकलन के लिए अध्ययनकर्ता या कार्यकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए अध्ययन क्षेत्र में भेज दिया जाता है। वह सूचनादाताओं से सूचना प्राप्त करके अनुसूची को भरने का कार्य करता है, लेकिन इसके लिए निम्न प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है:

(क) उत्तरदाता से सम्पर्क: अनुसूची का प्रारम्भिक उपयोग करने के लिए उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करना होता है। उत्तरदाता से अध्ययनकर्ता का प्रथम सम्पर्क अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि प्रारम्भ में अध्ययनकर्ता, सूचनादाता को प्रभावित नहीं कर पाया तो उससे सूचना प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। अतः कार्यकर्ता सूचनादाता को प्रभावशाली ढंग से अपना परिचय देकर, अध्ययन उद्देश्य को स्पष्ट करना चाहिए। इसके लिए वह अपनी मधुर वाणी और स्वभाव से सूचनादाता का हृदय जीत ले, यह आवश्यक है।

(ख) साक्षात्कार: सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात् साक्षात्कार का कार्य प्रारम्भ किया जाता है। साक्षात्कारकर्ता को प्रारम्भ में कुछ सामान्य घटनाओं पर चर्चा करके उत्तरदाता की रूचि को जाग्रत करना चाहिए। तत्पश्चात प्रश्नों को पूछना प्रारम्भ करना चाहिए। प्रश्नों को पूछते वक्त यह ध्यान देना आवश्यक है कि प्रश्नों की बौछार एकदम नहीं लगा देनी चाहिये। साक्षात्कार के समय हंसी-मजाक या इधर-उधर की बातें भी करनी चाहिए ताकि उत्तरदाता की अभिरुचि बनी रहे और वह साक्षात्कार को बोझ न समझकर रुचिपूर्ण भेंट समझे।

(ग) उत्तरदाताओं का चयन: अनुसूची द्वारा तथ्यों के संकलन का प्रथम चरण है- उत्तरदाताओं का चयन करना जिनसे सूचना एकत्रित करनी है। सूचनादाताओं का चयन निदर्शन प्रणाली द्वारा किया जाता है। इनका चयन करते समय उनके सही नाम और पते की जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है।

2. अनुसूची का पूर्व परीक्षण- सूचनादाताओं का चयन करने के पश्चात् इनमें से कुछ उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करके अनुसूची का पूर्व परीक्षण किया जाता है। इसमें सूचनादाता जिन प्रश्नों को समझ नहीं पाते या भिन्न अर्थों में समझते हैं, उन्हें ठीक करके अनुसूची का निर्माण किया जाता है।

3. कार्यकर्ताओं का चयन एवं प्रशिक्षण: जहां कुछ व्यक्तियों का साक्षात्कार करना होता है, वहां अध्ययनकर्ता स्वयं जाकर उनसे सूचनाएं प्राप्त कर उन्हें अनुसूची में भर सकता है। यदि सूचनादाताओं की संख्या अधिक हो या क्षेत्र विस्तृत हो तो अनुसंधानकर्ता अन्य कार्यकत्र्ताओं का चयन कर सकता है। इन कार्यकर्ताओं के चयन में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। ईमानदार, परिश्रमी, निष्पक्ष, योग्य और अनुभवी कार्यकर्ताओं का चयन करना चाहिए। कार्यकर्ताओं के चयन के पश्चात् उनको प्रशिक्षण देना

भी आवश्यक होता है। प्रशिक्षण देते समय कार्यकर्ताओं को अध्ययन के विषय, उसकी प्रकृति, अध्ययन के क्षेत्र और उसके उद्देश्यों के बारे में जानकारी, कौन-सी सूचनाओं को प्राथमिकता देनी है आदि बातों का पूरा ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए।

4. सूचना प्राप्त करना- सही उत्तर प्राप्त करना ही अध्ययनकर्ता का मौलिक उद्देश्य होता है, लेकिन साक्षात्कार के समय सबसे बड़ी समस्या यह पैदा होती है कि सूचनादाता से किस प्रकार विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त की जाएँ। सही सूचनाओं की प्राप्ति के लिए अध्ययनकर्ता को अनुसूची में से एक-एक करके प्रश्न कर सूचना प्राप्त करनी चाहिए। सूचनादाता द्वारा अध्ययनकर्ता को टालने या मुख्य विषय से हट जाने की स्थिति में साक्षात्कार के बीच में अन्य बाते करना, बंद कर देना चाहिए। सूचनादाताओं को प्रश्नों की स्पष्ट व्याख्या करके उनके अर्थ को समझा देना चाहिए।

5. अनुसूचियों की जांच: सर्वप्रथम कार्यकर्ताओं द्वारा भेजी गई अनुसूचियों की जांच की जाती है। इसके लिए प्रत्येक अनुसंधानकर्ता द्वारा भरी गई अनुसूचियों का चुनाव निदर्शन विधि के द्वारा करना चाहिए। यदि उत्तरों में भिन्नता पायी जाए तो उनको रद्द कर देना चाहिए। ऐसी अनुसूचियों में आंकड़ों का संकलन गलत मानना चाहिए अतः पुनः साक्षात्कार द्वारा तथ्यों का संकलन करना चाहिए।

6. अनुसूची का सम्पादन: अनुसूचियों की जांच करने के पश्चात् उनके सम्पादन का कार्य निम्न चरणों में किया जाता है:

(क) अनुसूचियों को व्यवस्थित करना: इस व्यवस्था को निम्न भागों में विभाजित किया जाता है:

1- प्रत्येक कार्यकर्ता की अनुसूची के लिए अलग फाइल तैयार करना।

2- प्रत्येक फाइल को क्रम देकर उन्हें व्यवस्थित करना।

3- प्रत्येक फाइल में अलग-अलग चिट लगाकर कार्यकर्ता का नाम, कुल उत्तरदाताओं की संख्या, क्षेत्र का नाम तथा उत्तर देने वाले व्यक्तियों की संख्या का उल्लेख करना चाहिए।

(ख) प्रविष्टियों की जांच: सम्पादन का दूसरा चरण अनुसूची में भरी गई सूचनाओं की जांच करना है। इसके लिए निम्नलिखित कार्यों को शामिल किया जा सकता है:

1. यह देखना कि कोई खाना नहीं भरा गया हो या गलत खाने में उत्तर दिया गया हो तो उनके कारण को पता लगाकर त्रुटि को दूर करना।

2. यदि अनुसूची में कोई गलती है तो अध्ययनकर्ता स्वयं गलती को ठीक कर सकता है अथवा अनुसूची को कार्यकर्ताओं को लौटा दिया जाता है जिससे वह पुनः उत्तरदाता से मिलकर सही सूचना प्राप्त करता है।

3. गन्दी अनुसूचियां: अनेक सावधानियों के पश्चात् भी अनेक अनुसूचियां गन्दी और खराब हो जाती हैं, ऐसी गन्दी अनुसूचियों को अध्ययनकर्ता अलग कर देता है जो पढ़ने योग्य न हों। ऐसी सभी अनुसूचियों केा सम्बन्धित कार्यकर्ताओं के पास वापस भेज दिया जाता है ताकि यथार्थ सूचना प्राप्त हो सके।

4. संकेत: अनुसंधानकर्ता, संकेत या कोड नम्बर द्वारा सारणीयन का कार्य सरल बनाता है। वह सभी उत्तरों का निश्चित भागों में वर्गीकरण कर देता है। प्रत्येक वर्ग को संकेत संख्या प्रदान की जाती है।

11.7 प्रश्नावली व अनुसूची में अन्तर

अनुसूची और प्रश्नावली दोनों में साक्षात्कार एवं व्यक्तिगत सम्पर्क का समान महत्व है। यद्यपि प्रश्नावली में यह सम्पर्क दूर का भी हो सकता है जो कि अनुसूची में सम्भव नहीं है तथापि बाह्य तौर पर दोनों के मध्य कोई स्पष्ट भिन्नता परिलक्षित होना असंभव सा प्रतीत होता है।

क्र.सं.	अनुसूची	प्रश्नावली
1	अनुसूची प्रश्नों की वह सूची है जिसका उपयोग अध्ययनकर्ता द्वारा क्षेत्र में जाकर स्वयं किया जाता है।	प्रश्नावली प्रश्नों की वह सूची है जो उत्तरदाताओं के पास डाक द्वारा प्रेषित की जाती है
2	इससे उत्तरदाताओं तथा अनुसंधानकर्ता के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित होता है	इससे अप्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित होता है
3	अनुसूची का उपयोग सीमित अध्ययन क्षेत्र में तथ्यों के संग्रह के लिए किया जाता है।	प्रश्नावली द्वारा दूर-दूर फैले या विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए बहुत बड़ी संख्या वाले उत्तरदाताओं से सूचनाएं एकत्रित की जाती है।
4	अनुसूची के प्रयोग करने में साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग किया जाता है।	प्रश्नावली में उत्तरदाता से प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने की स्थिति में साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग नहीं हो पाता।
5	अनुसूची का प्रयोग प्रत्येक स्तर के व्यक्तियों में किया जाता है।	प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित व्यक्तियों में किया जाता है।
6	अनुसूची पद्धति के माध्यम से प्रतिनिधि निदर्शन का चुनाव किया जाता है वह वैधानिक होता है।	प्रश्नावली के माध्यम से जो निदर्शन चुना जाता है वह पक्षपातपूर्ण होता है।

7	अनुसूची पद्धति के माध्यम से प्रत्युत्तर की कोई समस्या नहीं होती।	प्रश्नावली पद्धति में प्रत्युत्तर की सम्भावना कम होती है।
8	अनुसूची प्रविधि एक महँगी प्रविधि है।	इसके उपयोग में समय और धन दोनों अधिक लगते हैं। प्रश्नावली प्रविधि में समय और धन दोनों कम लगते है।
9	अनुसूची के अन्तर्गत उत्तरदाता और अध्ययनकर्ता के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क होने के कारण गोपनीय सूचनाओं का संकलन कर सकना बहुत कठिन होता है।	प्रश्नावली के द्वारा सूचनाएं देने में उत्तरदाता स्वयं को स्वतंत्र महसूस करते हैं, अतः वह गोपनीय सूचनाएं भी दे सकते हैं।

11.8 सार-संक्षेप

इस इकाई में हमने सबसे पहले अनुसूची का अर्थ स्पष्ट किया है। इसके बाद उसकी विशेषताओं और उद्देश्यों की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया गया है कि अनुसूची तथ्यों का संग्रह करने की वह महत्वपूर्ण प्रविधि है जिसकी सहायता से कुछ निर्धारित प्रश्नों के द्वारा उत्तरदाताओं से प्राथमिक सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं। इसके पश्चात अनुसूची के प्रकारों की चर्चा करते हुए इसके गुण-दोष की विवेचना की गयी है। अनुसूची निर्माण के पश्चात् आकड़ों के संकलन की प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया गया है। अंत में अनुसूची और प्रश्नावली में अतंर की चर्चा करने पर स्पष्ट होता है कि प्राथमिक सूचना के संचयन हेतु अनुसूची एवं प्रश्नावली, दोनों ही महत्वपूर्ण उपकरण की भूमिका निभाते हैं।

11.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. गुडे तथा हाट के अनुसार, अनुसूची प्रश्नों के एक समूह के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला नाम है जो साक्षात्कार करने वाले के द्वारा अन्य व्यक्तियों से आमने-सामने की स्थिति में पूछा और पूर्ण किया जाता है।

बोगार्डस के अनुसार, संक्षिप्त प्रश्नों की रचना को अनुसूची कहते हैं जिसे सामान्यतः सर्वेक्षणकर्ता अपने पास रखता है और अपने अन्वेषण कार्य में आगे बढ़ने के साथ-साथ उसे पूर्ण करता जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूची अनेकानेक प्रश्नों से युक्त ऐसी सूची है जिसमें व्यवस्था और निश्चित क्रम आदि गुण समाहित होते हैं। उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर साक्षात्कार की प्रक्रिया के माध्यम से अध्ययनककर्ता द्वारा सूचनाओं का संकलन अनुसूची का उपयोग करके किया जाता हैं।

2. अनुसूची के गुण अथवा लाभ

(क) प्रत्यक्ष सम्पर्क- अनुसंधानकर्ता एवं सूचनादाता के मध्य प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की दिशा में अनुसूची लाभदायी है क्योंकि इस प्रकार के सम्पर्क द्वारा जो सूचना सामग्री प्राप्त होती है वह प्राथमिक सामग्री होती है तथा वह काफी हद तक यथार्थ के निकट होती है।

(ख) यथार्थ और ठोस सूचनाएं- वास्तविक और सटीक सूचनाओं की प्राप्ति होना अनुसूची प्रविधि की मुख्य विशेषता है। जब अध्ययनकर्ता सूचनादाताओं से व्यक्तिगत एवं सीधा सम्वाद स्थापित कर अध्ययन क्षेत्र के अवलोकन के द्वारा सूचनाकर्ता के निकट सहज वातावरण की सृष्टि कर लेता है तब वह अल्प प्रयास द्वारा या स्वयमेव ही यथार्थपरक और ठोस सूचना प्रदान कर देता है।

(ग) अधिक प्रत्युत्तर- इस प्रविधि में अनुसंधानकर्ता और सूचनादाता एक दूसरे के समक्ष बैठकर प्रक्रिया को प्रवाहमान करते हैं अनुसंधानकर्ता द्वारा सूचनादाता से प्रश्न पूछे जाने पर सूचनादाता उनका उत्तर देते हैं और यदि यह सम्वाद सम्पर्क उपयुक्त और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में हुआ है तब ऐसी स्थिति में एक ओर तो प्रक्रिया सरलतापूर्वक पूर्ण होती है और दूसरी और प्रश्नों के प्रत्युत्तरों की संख्या में वृद्धि की आशा अधिक होती है।

(घ) अस्पष्ट प्रष्नों की व्याख्या सम्भव- अनुसूची विधि के द्वारा प्रश्न उत्तर की प्रक्रियान्तर्गत यदि सूचना प्रदान करने वाले व्यक्ति को कोई प्रश्न सही तरीके से समझ में न आ पाए तब वह अनुसंधानकर्ता से उसको सुस्पष्ट करने हेतु कह सकता है जिसके फलस्वरुप प्रत्युत्तर मिलने की संभावना में भी वृद्धि हो जाती है।

(ड़) अध्ययन में लोच का गुण- अनुसूची में अध्ययन कार्य से सम्बन्धित स्वरूप पहले से ही निर्धारित व निश्चित होता हैं तथापि उनको परिवर्तित या संशोधित किया जाना प्रतिबंधित नहीं होता हैं। इनमें लोच का गुण विद्यमान रहता हैं। अनुसूची में पूर्व-निर्धारित प्रश्नों को पूछते समय यदि अनुसंधानकर्ता को ऐसा प्रतीत होता है कि उसे प्रश्नों में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है अथवा कुछ नवीन प्रकार के प्रश्नों के समावेश से उसका अध्ययन कार्य लाभान्वित हो सकता है और उसकी उपयोगिता में वृद्धि हो सकती है तब वह अध्ययन जारी रखते हुए अनुसूची में आवश्यकतानुसार परिशोधन व संशोधन कर सकता है, यह उसके लोच के गुण के कारण ही सम्भव हो सकता है।

3. अनुसूची के दोष:

(1) सीमित क्षेत्र का अध्ययन- जब उत्तरदाताओं की संख्या अल्प हो अथवा वह एक सीमित क्षेत्र में सिमटे हों तभी अनुसूची प्रविधि का लाभ उठाया जा सकता है, अन्यथा सूचनादाताओं के विशाल परिधि में फैले होने के कारण सभी से निजी व घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना एक दुष्कर कार्य होता है और ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्ता द्वारा स्वयं ही अनुसूची को पूरित करने का कार्य किया जाने के कारण वह अध्ययन करने में समर्थ नहीं हो सकता है। इस कारण अनुसंधानकर्ता एक सीमित क्षेत्र में या सीमित संख्या में सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाओं को संग्रहीत करता है।

(2) उत्तरदाताओं से सम्पर्क की समस्या - इस प्रविधि में अध्ययनकर्ता जिस अध्ययन-विशेष हेतु अनुसंधान कार्य करता है उसके अन्तर्गत उसे सभी सूचनादाताओं के निवास गृह का ज्ञान होना तथा उनसे व्यक्तिगत परिचय स्थापित करना एक मूलभूत आवश्यकता होती है। अनुसूची को पूरित करने हेतु उसे उत्तरदाताओं के पास उपलब्ध समयानुसार उनसे सूचनाऐं एकत्र करनी होती हैं। ऐसे में सूचनादाताओं की कार्य/व्यावसायिक व्यस्तता के कारण उसे सम्पर्क स्थापित करने मे कठिनाई का सामना भी करना पड़ता हैं।

11.10 अभ्यास-प्रश्न

1. अनुसूची से आप क्या समझते हैं? अनुसूची के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।

2. अनुसूची तथा प्रश्नावली में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

3. अनुसूची की विशेषताओं को समझाइये।

4. अनुसूची द्वारा तथ्यों के संकलन की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

11.11 पारिभाषिक शब्दावली

प्रश्नावली- प्रश्नों की वह क्रमबद्ध तालिका जो विषय-वस्तु के संबंध में सूचनाएं एकत्रित करने में योग देती है।

साक्षात्कार- यह सामाजिक अन्तःक्रिया की एक प्रक्रिया है, जिसमें अध्ययनकर्ता तथा सूचनादाता के बीच आमने-सामने की स्थिति में सम्पर्क होता है जो परस्पर सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायक होता है।

अवलोकन- विधि है जिसमें दृष्टि आधार सामग्री संग्रह में एक प्रमुख साधन होती है।

11.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. त्रिवेदी व शुक्ला. रिसर्च मैथ्डोलॉजी. कालेज बुक डिपो. जयपुर।

2. राय, पारस नाथ. 2004. अनुसंधान परिचय. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल. आगरा।

3. ज्योति वर्मा. 2007. सामाजिक सर्वेक्षण. डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस. नई दिल्ली।

4. जैन एम. बी. रिसर्च मैथडोलॉजी. रिसर्च पब्लिकेशन. जयपुर।

5. गुडे एंड हाट. 1983. मैथड्स इन सोशियल रिसर्च. मैकग्रू हिल इंटरनेशनल.ऑकलैण्ड।

6. राम आहूजा. 2005. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान. रावत पब्लिकेशन्स. दिल्ली।

7. Singh, K. (1983**).** Techinques of Method of Social Survey Research and Statistics, Prakashan Kendra, Lucknow.

8. Best J. W. (1959). Research in Education. Prentice-Hall Inc. Englewood Cliffs, New Jercy.

इकाई- 12 **प्रशनावली**

Questionaire

इकाई की रूपरेखा

12.0 अध्ययन के उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12..2 प्रश्नावली अर्थ तथा परिभाषा

12..2.1 प्रश्नावली की विशेषताएं

12.3 प्रश्नावली के प्रकार

12.4 प्रश्नावली का निर्माण

12.5 प्रश्नावली के गुण

12..6 प्रश्नावली के दोष

12.7 प्रश्नावली की विश्वसनीयता

12.7.1 प्रश्नावली की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक

12.7.2 प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जांच

12.8 सार-संक्षेप

12.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.10 अभ्यास-प्रश्न

12.11 परिभाषिक शब्दावली

12.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.0 प्रस्तावना

प्रश्नावली विधि अनुसंधान कार्य करते समय आँकड़ों का संकलन करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है, जिसका प्रयोग अनुसन्धानकर्ता द्वारा सामाजिक अनुसन्धान करते समय सूचना एकत्र करने हेतु किया जाता है। जब सामाजिक अनुसन्धान करते समय ऐसे अध्ययन क्षेत्र को चयनित किया जाता है जिसकी प्रकृति व्यापक होती है तब ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्ता हेतु यह सम्भव नहीं होता कि वह विस्तृत क्षेत्र में जाकर अनेक व्यक्तियों से व्यक्तिगत और आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर सके। ऐसी स्थिति में प्रश्नावली ही वह प्रविधि है जिसके माध्यम से उत्तरदाताओं से प्राथमिक सामग्री का संकलन किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम प्रश्नावली प्रविधि की प्रकृति, प्रारूप, प्रयोग की विधि और रचना का अध्ययन करेंगे।

12.1 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा;

- प्रश्नावली की परिभाषा देना,
- प्रश्नावली की विशेषताओं की चर्चा करना,
- प्रश्नावली के प्रकारों को बताना,
- तथ्य संकलन के पश्चात् प्रश्नावली की जांच व कारकों की चर्चा करना।

12.2 प्रश्नावली का अर्थ और परिभाषा

जब अनेक प्रकार के प्रश्नों को एक निश्चित क्रम से सूचीबद्ध कर दिया जाता है तब यह विधि प्रश्नावली कही जाती है। इसके अन्तर्गत अध्ययन विषय से सम्बद्ध विभिन्न पहलुओं के विषय में पूर्व निर्धारित/निर्मित प्रश्नों को सम्मिलित कर अनुसंधान किया जाता है। अनुसंधानित विषय के समस्त पक्षों को समेटकर सम्बन्धित विषय की वांछित सूचनाएँ व आँकड़े एकत्र करने में प्रश्नावली बहुत सहायक होती है। प्रश्नावली विधि का प्रयोग अनुसंधानकर्ता द्वारा अन्वेषित विषय से सम्बन्धित प्रश्नों की सूची को डाक द्वारा उत्तरदाताओं को प्रेषित करके किया जाता है। शोधित विषय के महत्व को उत्तरदाताओं को समझाने हेतु एक व्याख्या पत्र भी डाक द्वारा उत्तरदाताओं को भेजा जाता है। प्रश्नावली के माध्यम से संचालित विषय को समझते हुए उत्तरदाताओं द्वारा स्वयं पढ़कर, समझकर उसके प्रश्नों के उत्तर को पूरित कर डाक द्वारा पुनः अनुसंधानकर्ता को भेजा जाता है। अध्ययनकर्ता डाक द्वारा प्राप्त प्रश्नावली एवं उस पर आधारित उत्तरों से प्राप्त सूचनाओं

को व्याख्यायित एवं विश्लेषित कर अनुसंधानित विषय से सम्बन्धित निष्कर्ष निकालता है। अतः अनुसंधान की गुणवत्ता प्रश्नावली के प्रश्नों एवम् प्राप्त उत्तरों की गुणवत्ता पर बहुत कुछ निर्भर करती है।

गुडे तथा हाट के अनुसार, ''प्रश्नावली एक प्रकार का उत्तर प्राप्ति का साधन है जिसका स्वरूप ऐसा होता है कि उत्तरदाता उसकी पूर्ति स्वयं करता है।''

लुण्डवर्ग के अनुसार, ''मूलतः प्रश्नावली प्रेरणाओं का एक समूह है, जिसे शिक्षित लोगों के सम्मुख उन प्रेरणाओं के अन्तर्गत उनके मौखिक व्यवहारों का अवलोकन करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।''

बोगार्डस के अनुसार, ''प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए दी गई प्रश्नों की एक तालिका है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं का सार यह है कि, प्रश्नावली विषय से सम्बन्धित आँकड़ों व तथ्यों को एकत्र करने हेतु एक प्रभावशाली माध्यम है जो अनुसंधानकर्ता एवं उत्तरदाताओं के मध्य प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत सम्बंधों के आधार पर न बनकर सुदूरवर्ती क्षेत्रों में स्थित उत्तरदाताओं के द्वारा प्रश्नावली को भरकर अनुसंधानकर्ता को प्रेषित करने के द्वारा क्रियान्वित होती है। उत्तरदताओं द्वारा प्रदत्त उत्तरों के आधार पर व्यवस्थापन की प्रक्रिया एवम आँकड़ों पर आधारित सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है।

स्वप्रगति परीक्षण-

1. प्रश्नावली प्रविधि का अर्थ एवं उपयोग स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

12.2.1 विशेषताएँ

1. प्रश्नों की सूची: - प्रश्नों की सूची जिसमें एक निश्चित व्यवस्था एवम् क्रमवार तरीके से शोधित विषय से सम्बन्धित सामग्री एवं सूचनाओं की प्राप्ति हेतु विषय के विविध पक्षों को समाविष्ट करते हुए निर्मित प्रश्नों को रखा जाता है, प्रश्नावली कहलाती है।

2. विस्तृत क्षेत्रफल में उपयोग:- सामाजिक अनुसंधानों में आँकड़े व सूचनाएं एकत्र करने हेतु प्रयुक्त की जाने वाली अन्य शोध प्रविधियों व यंत्रों का प्रयोग एक सीमित क्षेत्र की सूचनाओं को प्राप्त करने हेतु अधिक उपयोगी होता है जबकि प्रश्नावली सामाजिक अनुसंधान की एक ऐसी शोध प्रविधि है जो विस्तृत क्षेत्र में फैले व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर उनसे सूचनाओं का संग्रहण करती है। क्योंकि, अनुसंधानकर्ता एवम् उत्तरदाता के मध्य विद्यमान दूरी के कारण प्रत्येक व्यक्ति के समीप जाकर साक्षात्कार करके उनके विचार जानना व आँकड़ों को एकत्र करना अत्यन्त कठिनाई युक्त एवं श्रमसाध्य हो सकता है।

3. केवल शिक्षित व्यक्तियों के लिए:- प्रश्नावली विधि की सहायता से आँकड़े व सूचनाओं को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सूचनादाता व्यक्ति शिक्षित हों। क्योंकि, शिक्षित होने पर ही वह प्रश्नों के निहितार्थ एवम् शोध के उद्देश्य को समझकर उत्तर देने में सक्षम हो सकेंगे। अनुसंधानकत्ता एवम् उत्तरदाता के मध्य कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित न हो पाने के कारण यह केवल शिक्षित उत्तरदाताओं तक सीमित रहती है।

4. डाक द्वारा पे्रषित:- प्रश्नावली विधि में प्रश्नों की क्रमबद्ध सूची निर्मित कर उसे डाक द्वारा उत्तरदाताओं को प्रेषित किया जाता है।

5. भाषा सरल और स्पष्ट:- प्रश्नावली में प्रश्नों के भाषा-संयोजन को इतना स्पष्ट, सरल और सहज रखा जाता है जिससे कि प्रत्येक उत्तरदाता को प्रश्न का सही अर्थ सरलतापूर्वक समझ में आ जाए और वह प्रश्न के मर्म को समझकर समुचित उत्तर को प्रश्न के सम्मुख अंकित कर सके।

12.3 प्रश्नावली के प्रकार

लुण्डबर्ग ने प्रश्नवली को मुख्यतः दो प्रकारों में विभाजित किया है:

1. तथ्य संबन्धी प्रश्नावली: - जिस प्रश्नावली के निर्माण का मुख्य उद्देश्य किसी समूह विशेष की सामाजिक-आर्थिक पक्षों से सम्बन्धित सूचना-सामग्री व तथ्यों का संकलन करना होता है, वह तथ्य सम्बन्धी प्रश्नावली कहलाती है।

2. मत और मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली: - जिस प्रश्नावली का लक्ष्य किसी विषय विशेष पर उत्तरदाताओं के अंतर्मन में विद्यमान विचारों, रुचियों अथवा अभिवृत्तियों को ज्ञात करना होता है वह मत और मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली कहलाती है।

पी. वी. यंग ने भी प्रश्नावली के दो प्रकारों को उल्लिखित किया है:-

1. संरचित प्रश्नावली:- जब शोधकार्य में प्रयुक्त करने हेतु प्रश्नावली को पहले से ही निर्मित कर लिया जाता है तब इसे संरचित प्रश्नावली कहते हैं। इस प्रकार की प्रश्नावली में अधिकांशतया किसी प्रकार के परिवर्तन की संभावना नहीं रहती है। संरचित प्रश्नावली विशाल क्षेत्र में फैले व्यक्तियों से उत्तर प्राप्त कर प्राथमिक तथ्यों व आँकड़ों को एकत्र करने के पश्चात् संग्रहीत तथ्यों का पुनर्विश्लेषण करने में उपयोगी होती है। इसमें संकलित प्रश्नों की प्रकृति स्पष्ट, पूर्व-निर्धारित और एक विशेष क्रमानुसार होती है जिसके परिणामस्वरूप प्रश्नावली प्रत्येक उत्तरदाता के लिए बोधगम्य और एकसमान होती है।

2.असंरचित प्रश्नावली: - असंरचित प्रश्नावली के अन्तगर्त अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्र करने हेतु पूर्व निर्धारित प्रश्नों को समाविष्ट नहीं किया जाता है अपितु अनुसंधानित विषय का केवल उल्लेख कर उसे स्पष्ट कर दिया जाता है। अनुसंधान कार्य करते समय यह अनुसंधानकत्र्ता एवं उत्तरदाताओं को अपेक्षित सूचनाओं को एकत्र करने हेतु मार्ग-निदर्शन का कार्य करती है।

3. खुली प्रश्नावली:- खुली प्रश्नावली के अन्तर्गत सूचनादाता व्यक्ति को इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है कि वह प्रश्नों को पढ़कर उनके सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत विचारों को अपने शब्दों में प्रकट कर सके। खुली प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न के पश्चात् रिक्त स्थान दिया गया होता है जिससे कि, उत्तरदाता व्यक्ति उस रिक्त स्थान की पूर्ति अपने विचारानुसार करने हेतु स्वतंत्र होता है।

उदाहरण- आपके विचार से भ्रष्टाचार कैसे समाप्त किया जा सकती है ?

.....

.....

4. प्रतिबन्धित/बन्द प्रश्नावली: - बन्द प्रश्नावली में खुली प्रश्नावली के विपरीत प्रत्येक प्रश्न के सम्मुख प्रश्न से संबन्धित कुछ सम्भावित उत्तरों को पहले से ही निर्धारित करके अंकित कर दिया जाता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि, उत्तरदाता को अपना व्यक्तिगत मत अपने शब्दानुसार व्यक्त न करके दिए गए सम्भावित उत्तरों में से एक चुनकर अपने मत को प्रकट करना होता है। अर्थात् सूचनादाता द्वारा प्रदत्त सूचना नियन्त्रित होती है, मुक्त नहीं।

उदाहरण- परिवार के सदस्यों द्वारा सहयोग किस रूप में दिया जाता है-

(i) उत्पादन कार्यों में

(ii) बाजार में

(iii) गृह कार्यों में

(iv) बच्चों की देखभाल में

(v) कोई अन्य

प्राप्त आकड़ों को सांख्यिकीय दृष्टि से विश्लेषित करने एवम् अनुसंधानकर्ता की उददेश्य-पूर्ति में सहायक होने के कारण यह प्रश्नावली अनुसंधान कार्य हेतु सुविधाजनक होती है।

5. चित्रमय प्रश्नावली: - चित्रमय प्रश्नावली के अन्तर्गत सीधे प्रश्न न देकर प्रश्नों को विषयानुसार चित्र रूप में ढालकर क्रमबद्ध रूप में सूची में दिया जाता है। उत्तरदाता को विषय के लिए मौखिक या वाचिक रूप में निर्देश देकर दिए गए चित्रों में से अपना उत्तर चयनित करना होता है। इस प्रविधि का प्रयोग विशेष रूप से बालकों और अल्प-शिक्षित व्यक्तियों से सूचना प्राप्ति हेतु किया जाता है।

6. मिश्रित प्रश्नावली: - मिश्रित प्रश्नावली के अन्तर्गत एक ही प्रकार के प्रश्नों के स्थान पर अनेक प्रकृति के प्रश्नों का समावेश किया जाता है। यथा- कुछ प्रश्नों का उत्तर अपने मतानुसार दिया जाता है और कुछ प्रश्नों का उत्तर कुछ सम्भावित उत्तरों में से किसी एक को चयनित करके करना होता है। बन्द और खुली, दोनों प्रकार की प्रश्नावलियों के समन्वय से मिश्रित प्रश्नावली का निर्माण होता है।

स्वप्रगति परीक्षण-

2. लुण्डवर्ग एवं पी. वी. यंग के अनुसार प्रश्नावली के प्रकारों लिखिए।

.....

.....

.....

12.4 प्रश्नावली का निर्माण

प्रश्नावली का निर्माण करने के लिए कुछ तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है जो इस प्रकार हैं:

1- वांछित सूचनाओं का निर्धारण:- प्रश्नावली निर्माण करते समय सबसे पहले चरण पर अनुसंधानित विषय को सही-सही समझाना, उसे सुस्पष्ट करना और विषय विश्लेषण करना वांछित होता है। इस प्रकार विषय को पूर्णरूपेण समझकर उपयुक्त प्रश्न निर्माण करने में सहायता प्राप्त होती है और साथ ही यह स्पष्ट हो जाता है कि, शोध विषय के किन-किन पक्षों का संधान करना है और किन तथ्यों को प्रकाश में लाना है? विषय को स्पष्ट करने के पश्चात् द्वितीय चरण में यह स्पष्ट किया जाता है कि अनुसंधानित विषय के समुचित

अन्वेषण हेतु कौन-सा क्षेत्र विशेष और किस प्रकृति के उत्तरदाताओं को चयनित कर सूचनाओं को एकत्र करना है।

2- प्रश्नावली के प्रकार का निर्धारण:- प्रश्नावली बनाते समय यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि अनुसंधान-विषय के अन्तर्गत किस प्रकार की सूचनाओं का संग्रहण करना है और उन सूचनाओं को प्राप्त करने हेतु किस प्रकार की प्रश्नावली का निर्माण करना है जिससे कि उपयुक्त परिणाम प्राप्त हो सके।

3-प्रश्नों का निर्माण:- प्रश्नावली बनाने में जो चरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है वह है उसमें समाविष्ट प्रश्नों का निर्माण। प्रश्नों का निर्माण करते समय अध्ययनकर्ता को इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है कि निर्मित प्रश्नों का स्वरूप ऐसा हो कि, उनके द्वारा प्राप्त सूचनाएं अधिकाधिक रूप से तथ्यापरक और गहन प्रकृति की हों।

प्रश्नावली में प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार करना होता है जिससे वह अधिक से अधिक यथार्थ और गहन सूचनायें प्राप्त कर सके। प्रश्नावली में प्रश्नों का निर्माण करते समय इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सावधानियों के आधार पर प्रश्नों का निर्माण किया जा सकता है:

I. प्रश्नों की भाषा बहुत सरल और स्पष्ट होनी चाहिए जिससे सूचनादाता प्रश्नों को आसानी से समझ जाये तथा उनका उत्तर अधिक से अधिक संक्षेप में दिया जा सके।
II. प्रश्नावली में जिन प्रश्नों को सम्मिलित किया जाय वे विषय से सीधे तौर पर सम्बन्धित हों सभी प्रश्न एक क्रम में भी होने चाहिये जिससे कि प्रश्नावली में आंतरिक सम्बद्धता आ जाये। इससे उत्तरदाता विषय पर व्यवस्थित रूप से विचार करके उनके समुचित प्रकार से उत्तर दे सकता है।
III. प्रश्नावली में यदि किन्हीं तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो उनके पारिभाषिक अर्थ को स्पष्ट रूप से पाद टिप्पणी ;विवजदवजमद्ध में परिभाषित कर देना चाहिए।
IV. प्रश्नावली का आकार सीमित होना चाहिए, अर्थात ऐसे प्रश्नों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए जिनसे सम्बन्धित सूचनायें अन्य साधनों से प्राप्त की जा सकें।
V. प्रश्नावली में किसी भी प्रश्न में किसी व्यक्ति विशेष के नाम का सम्बोधन नहीं होना चाहिए।
VI. प्रश्न काल्पनिक परिस्थितियों से सम्बन्धित नहीं होने चाहिए। उदाहरण- यदि आप राष्ट्रपति बन जायें तो भ्रष्टाचार को खत्म कर सकेंगे? यह एक गलत व अवैज्ञानिक प्रश्न है।
VII. कुछ ऐसे प्रश्न होते हैं जिनके विषय में उत्तर प्राप्त करना कठिन होता है। अर्थात् व्यक्तिगत आरोप से सम्बन्धित प्रश्न नहीं होने चाहिए।
VIII. लम्बे तथा जटिल प्रश्नों से बचना चाहिए ताकि उत्तरदाता प्रश्न को जल्दी से पढ़ सके और उसका अर्थ समझकर बिना किसी कठिनाई के उत्तर के विषय में सोच सके।

4. प्रश्नावली में संशोधन - प्रश्नावली के लिए प्रश्नों का निर्माण कर लेने के पश्चात् पहले अनुसंधानकर्ता को स्वयं प्रश्नों का मूल्यांकन कर लेना चाहिए। इस स्तर पर यदि कोई प्रश्न अनुपयोगी या दोषपूर्ण लगता है

तो प्रश्नावली में से उसे निकाल देना चाहिए या उसमें संशोधन कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् विषय से सम्बन्धित विशेषज्ञों से प्रश्नावली के बारे में राय लेनी चाहिए। इस परामर्श के बाद प्रश्नों में सुधार, कमी अथवा विस्तार किया जा सकता है।

5. प्रश्नावली का पूर्व परीक्षण - विशेषज्ञों से विचार-विमर्श करके प्रश्नावली को संशोधित कर लेने के पश्चात् अध्ययन के समग्र में से चुने हुए कुछ सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करके प्रश्नावली का पूर्व परीक्षण करना अनिवार्य होता है। पूर्व परीक्षण कर लेने से यह ज्ञात हो जाता है कि प्रश्नावली को भरने में उत्तरदाताओं को प्रश्न कहां तक समझ आते हैं तथा उत्तर कैसे प्राप्त होते हैं और कठिनाइयां क्या आती हैं। इस परीक्षण के पश्चात् उन प्रश्नों को निकाल देना चाहिए जिनका उत्तर प्राप्त नहीं हो सके। निर्देश में आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन करके प्रश्नावली को उपयोगी बनाया जा सकता है।

6. बाह्य आकृति - प्रश्नावली का भौतिक स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। बाह्य आकृति के अन्तर्गत प्रश्नावली का आकार, कागज का रंग-रूप तथा उसकी छपाई इतनी आकर्षक हो कि उत्तरदाताओं से अधिक से अधिक उत्तर प्राप्त किये जा सकें। प्रश्नावली को उपयोगी बनाने के लिए उसके आकार पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। प्रश्नावली का आकार न तो अधिक बड़ा हो और न छोटा। साधारणतया 8‘‘ ग 10’’ के आकार की प्रश्नावली उपयुक्त समझी जाती है। प्रश्नावली में कागज का प्रयोग अच्छी किस्म का हो तथा उसका रंग आकर्षक होना चाहिए क्योंकि प्रश्नावली डाक द्वारा उत्तरदाताओं को प्रेषित की जाती है। इससे उसके फटने की सम्भावना कम हो जाती है तथा आकर्षक रंग के कारण प्रश्नावलियों से अधिक संख्या में उत्तर प्राप्त हो सके। प्रश्नावली की छपाई पूर्णतया त्रुटिरहित होनी चाहिए, सभी शीर्षक पूर्णतया स्पष्ट होने चाहिए जिससे उत्तरदाता सहज रूप से प्रश्नावली को भरने के लिए तैयार हो जायें।

7. सहगामी पत्र- पूर्व परीक्षण करने के पश्चात् प्रश्नावली को अन्तिम रूप देकर प्रत्येक प्रश्नावली के साथ एक व्यक्तिगत पत्र संलग्न कर दिया जाता है। पत्र का शीर्षक अत्यन्त आकर्षक होना चाहिये, ताकि सूचनादाता उससे प्रभावित हो, इस पत्र में सूचनादाता से प्रश्नावली भरकर निश्चित अवधि में लौटाने की प्रार्थना भी करनी चाहिए। पत्र में अनुसंधानकर्ता या उसके संगठन का नाम, उद्देश्य तथा उन अन्य व्यक्तियों के नामों का संकेत भी कर देना चाहिए जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनुसंधान से सम्बन्धित हैं। साथ ही सूचनादाताओं से प्राप्त उत्तरों को सार्वजनिक न करने का विश्वास दिलाना चाहिए। पत्र के अन्त में सूचनादाता को अपेक्षित सहयोग के लिए धन्यवाद लिख देना चाहिए।

8. अनुगामी पत्र- सूचनादाताओं के द्वारा प्रायः बहुत कम प्रश्नावलियां लौटाई जाती हैं, अतः प्रश्नावली भेजने के पश्चात् निश्चित समय तक प्रश्नावली की प्रतीक्षा करने के उपरान्त पुनः सूचनादाताओं को प्रश्नावली लौटाने की प्रार्थना एक पत्र के माध्यम से की जाती है जिसे अनुगामी पत्र कहा जाता है। अनुगामी पत्र कितने समय के अन्तर से भेजना चाहिए, यह निर्णय सूचनादाताओं की प्रकृति तथा प्रश्नावलियों के लौटाने की दर

के आधार पर किया जाता है। प्रायः पन्द्रह दिन पश्चात् पहला अनुगामी पत्र भेजना चाहिये। इसके पश्चात सप्ताह की अवधि से अनुगामी पत्र भेजे जाने चाहिए।

12.5 प्रश्नावली के गुण या लाभ

1. विशाल अध्ययनः- अनुसूची और साक्षात्कार प्रविधियों के अन्तर्गत समय, धन और व्यक्तिगत क्षमता आदि के सीमित होने के कारण अध्ययनकर्ता द्वारा उत्तरदाताओं से निजी और सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करते हुए सीमित क्षेत्र में अन्वेषण कार्य किया जाता है। जबकि, प्रश्नावली के द्वारा विस्तृत क्षेत्र में स्थित बहुसंख्य व्यक्तियों से अल्प समय और अल्प व्यय में सुविधाजनक तरीके से अध्ययन किया जाता है।

2. कम व्ययः- प्रश्नावली प्रविधि के द्वारा अध्ययन कार्य करने हेतु जहाँ एक ओर क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं की सहायता आवश्यक नहीं होती है, वहीं दूसरी ओर उत्तरदाताओं के विशाल क्षेत्र से होने के कारण व्यक्तिगत सम्वाद-सम्पर्क विकसित करने की भी आवश्यकता नहीं होती है जिस कारण अनुसंधान कार्य में व्यय पर भी अंकुश लगता है।

3. समय की बचतः- इस प्रविधि का सबसे बड़ा लाभ इसके क्रियान्वित होने में लगने वाला अल्प समय है। इसकी विशेषता ही यही है कि अनुसंधानकत्र्ता द्वारा प्रश्नावली का निर्माण करने के पश्चात् उसे चयनित क्षेत्र के सूचनादाताओं को प्रेषित कर दिया जाता है और उत्तरदाता शीघ्रातिशीघ्र प्रश्नावली पूरित करके सूचनाओं को अनुसंधानकर्ता के पास भेज देते हैं। इन दोनों के मध्य निजी सम्पर्क स्थापित नहीं होने के कारण यह प्रणाली कम समय लेती है।

4. पुनरावृति सूचनाएंः- एकाधिक बार तथ्यों को संग्रह करने में भी प्रश्नावली सहायक होती है। कुछ अध्ययन किए जाने वाले विषयों की प्रकृति ऐसी भी होती है कि उनमें निर्धारित समय के बाद भी कई बार सूचनाओं को प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में अनुसंधाकर्ता द्वारा उत्तरदाताओं के पास पुनः प्रश्नावली की प्रतियों को पूर्ण करने हेतु प्रेषित किया जाता है।

5. स्वतन्त्र एवम् निष्पक्ष सूचनाः- इस प्रविधि के अन्तर्गत डाक द्वारा प्रश्नावली प्रेषित किए जाने के कारण अनुसंधानकर्ता को उत्तरदाताओं से निजी सम्पर्क और परिचय बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसका एक लाभ यह होता है कि, उत्तरदाताओं का मत व राय निष्पक्ष रहती है, वह अध्ययनकर्ता से प्रभावित नहीं होता है, अपने विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्त करता है। वह अपने उत्तर निःसंकोच होकर देता है। इस प्रकार यह निष्पक्ष राय विश्वसनीय निष्कर्षों की प्राप्ति हेतु अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है।

6. तटस्थ अध्ययनः- अनुसंधानकर्ता द्वारा प्रश्नावली के द्वारा किए जा रहे अध्ययन कार्य में उसके और सूचनादाता के मध्य कोई व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाने के कारण वह पूवाग्रहों से ग्रसित नहीं हो पाता है और अनुसंधानकर्ता तटस्थ रूप से अध्ययन करने में समर्थ हो पाता है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. प्रश्नावली के कोई दो गुण या लाभ बताइए।

.....

.....

.....

.....

12.6 प्रश्नावली के दोष अथवा सीमाएं

प्रश्नावली में कई विशेषताएं होते हुए भी कुछ दोष भी प्राप्त होते हैं। ये निम्नलिखित हैंः

1. बहुत कम प्रश्नावलियों का लौट कर आनाः- प्रश्नावली प्रविधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि अनुसंधानकर्ता द्वारा जितनी संख्या में प्रश्नावलियां प्रेषित की जाती हैं उनमें से लौटकर आने वाली प्रश्नावलियों की संख्या में कमी देखने को मिलती है। कार्य में व्यस्तता के कारण उत्तरदाता व्यक्ति प्रश्नावलियों को लौटाने या शीघ्र प्रेषण हेतु उत्सुक नहीं रहते हैं।

2. गहन अध्ययन में अनुपयुक्तः- प्रश्नावली प्रणाली का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जबकि किसी सामाजिक घटना या समस्या को सामान्य रूप से विश्लेषित या अध्ययन करना हो। क्योंकि, इसके द्वारा सहायक सामग्री व आँकडों को प्राप्त करना ही सहज होता है। परन्तु जब व्यक्ति के आन्तरिक मनोभावों, अभिवृयों, प्रकृति व मूल्यपरक प्रवृत्तियों को गहनतापूर्वक विश्लेषित करना होता है तो अन्य प्रविधियाँ जैसे साक्षात्कार आदि, प्रश्नावली की तुलना में अधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं।

3. अपूर्ण सूचनाएंः- प्रश्नावली में उततरदाता दिए गए प्रश्नों का उत्तर अपनी इच्छानुसार भरता है। कभी-कभी वह प्रश्नों का अर्थ उचित रूप में नहीं समझ पाता है तो कभी किसी प्रश्न को वह टालना चाहता है और उसका उत्तर देना आवश्यक नहीं समझता। प्रश्नावली में प्रश्न एक ही बार लिखा होता है तथा उसको स्पष्ट करना भी सम्भव नहीं होता। इन सब कारणों से प्रभावित होने के कारण उत्तरदाता प्रश्नों को ठीक से समझे

बिना ही उत्तर देकर प्रश्नावली भेज देते हैं। इस प्रकार दिए गए उत्तरों से प्राप्त सूचनाओं का अधूरा और असत्य होना संभवा होता है।

4. अशिक्षित व्यक्तियों के लिए अनुपयुक्तः- प्रश्नावली प्रविधि में उत्तरदाताओं को प्रश्नों के निहितार्थ को समझकर उनका उत्तर देना होता है। इस कारण प्रश्नावली विधि द्वारा अध्ययन प्रक्रिया को क्रियान्वित करने हेतु शिक्षित व्यक्तियों का होना आवश्यक है। समाज में कई ऐसी घटनाएं और परिस्थितियाँ घटित होती हैं जिनसे सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्र करने हेतु शिक्षित व अशिक्षित, दोनों प्रकार के व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। प्रश्नावली विधि केवल शिक्षित व्यक्तियों से सूचना संग्रहण हेतु उपयोगी होने के कारण अशिक्षित व्यक्तियों के विचार अनदेखे-अनसुने रह जाते हंै जिसके परिणामस्वरूप अनुसंधान कार्य के सभी पक्षों पर उपयुक्त प्रकाश नहीं पड़ता है और ऐसे प्राप्त शोध सामग्री के आधार पर निर्मित निष्कर्ष भी अपूर्ण होते हैं।

5.अस्पष्ट लेखः- प्रश्नावली को कई उत्तरदाताओं को प्रेषित किए जाने के कारण वह अनेक प्रकार के व्यक्तियों की लेखनी का केन्द्र बन जाती है। कई सूचनादाताओं के द्वारा अस्पष्ट रूप से सूचना लिखे जाने के कारण कभी-कभी उत्तरों से प्राप्त महत्वपूर्ण सूचनाओं में निहित तथ्यों को सुस्पष्ट रूप में समझ सकना व उनके असुन्दर लेखन को पढ़कर समझना एक कठिन कार्य हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप वस्तुनिष्ठ निष्कर्षो की प्राप्ति दुष्कर हो जाती है।

6. सार्वभौमिक प्रश्नों का निर्माण असम्भवः- प्रश्नावली प्रविधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि, प्रश्नावलियों को इस प्रकार नहीं बनाया जा सकता कि वे सभी सूचनादाताओं के लिए एकसमान हों। प्रश्नावली का स्वरूप सार्वभौमिक नहीं हो सकता, वह सभी के लिए एक ही अर्थ नहीं रखती। इसका कारण प्रत्येक सूचनादाता की भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमियों का, विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों व शिक्षा और वैचारिक पद्धति का अलग होना है। यही भिन्नता अध्ययन विषय से सम्बन्धित सभी सूचनादाताओं को परस्पर अत्यधिक भिन्न करती है और इसका प्रभाव उनके द्वारा दिए गए उत्तरों पर भी पड़ता है।

उपरोक्त दोषों के विद्यमान रहते हुए भी प्रश्नावली विधि में सीमित साधनों से ही अध्ययन कार्य को पूरी सक्षमता से एक विशाल क्षेत्र में क्रियान्वित करने का सामथ्र्य होने का गुण भी निहित है।

12.7 प्रश्नावली की विश्वसनीयता

प्रश्नावली निर्माण का केवल यह लक्ष्य नहीं होता कि वह सूचनादाताओं के पास से समुचित उत्तर सहित अनुसंधानकत्र्ता के पास शीघ्र वापस आ जाए। प्रश्नावली प्रविधि द्वारा अनुसंधान कार्य करते समय यह एक मूलभूत प्रश्न समक्ष आता है कि क्या यह पक्के तौर पर कहा जा सकता है कि प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाएं

पूर्णतः विश्वास करने योग्य हैं ? क्या प्रश्नावली में प्रदत्त प्रश्नों का स्वरूप सभी सूचनादाताओं को समान रूप से समझ में आया अथवा उत्तरदाताओं ने अपने-अपने विचारानुसार प्रश्न समझकर भिन्न-भिन्न अर्थों को ग्रहण कर, भिन्न संदर्भों में एक ही प्रश्न के विभिन्न उत्तर दिये हैं? ऐसी स्थिति में प्रश्नावली की विश्वसनीयता पर ही प्रश्नचिन्ह लग जाता है। प्रश्नावली के विश्वसनीय होने का अभिप्राय ही यही है कि प्रश्नावली के प्रश्नों का अनुसंधानकर्ता और सूचनादाता के समक्ष समान अर्थ हो।

12.7.1 प्रश्नावली की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक

प्रश्नावली का निर्माण करते समय उसमें कई बार कतिपय ऐसे प्रश्नों का समावेश हो जाता है जिनका उत्तरदाता सही अर्थ ग्रहण करने में असमर्थ रहता है। प्रश्न समझ में न आने की स्थिति में वह प्रश्न का जो तात्पर्य लगाता है, उसी के अनुसार उत्तर दे देता है। परिणामस्वरूप कई बार प्रश्न के अर्थ के विपरीत उत्तर से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित निष्कर्ष विश्वसनीय नहीं रह जाते हैं। प्रश्नावली की विश्वसनीयता को जो कारण मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं वह निम्नलिखित हैं:

1- गलत या असंगत प्रश्न:- प्रथम कारक जो प्रश्नावली की विश्वसनीयता खोने का सर्वप्रमुख कारण है, वह है प्रश्नों की असंगतता या गलत प्रकार के प्रश्नों चयन। जब प्रश्नावली में प्रश्न-निर्माण करते समय त्रुटिपूर्ण प्रश्नों का समावेश कर लिया जाता है तो प्रश्नों से प्राप्त उत्तर भी दोषपूर्ण या असंगत हो जाते हैं। ऐसे प्रश्नों में निम्न प्रकार के प्रश्न आते हैं:

- ऐसे प्रश्न जो कि गोपनीय प्रकृति के या निजी-जीवन से संबंधित हों।
- ऐसे प्रश्न जिनमें पारिभाषिक शब्दों की बहुलता हो।
- अकल्पनात्मक प्रश्नों का चयन।
- अस्पष्ट प्रश्न
- बहुअर्थी प्रश्न
- व्यंग्यार्थी शब्द

2. पक्षपातपूर्ण निदर्शन:- शोध-कार्य का पक्षपातपूर्ण तरीके से निदर्शन करने के परिणामस्वरूप भी प्रश्नावली की विश्वसनीयता प्रभावित होती है। जब पक्षपातपूर्ण निदर्शन को चयनित करते हैं तो उसमें समग्र का प्रतिचयन भी सम्भव नहीं रह पाता है। प्रश्नावली के द्वारा केवल शिक्षित व्यक्तियों के मतानुसार उत्तरों से प्राप्त सामग्री का प्रयोग होता है, फलस्वरूप जो निदर्शन चयनित होते हैं, वह प्रतिनिधित्वपूर्ण न होकर

एकपक्षीय रह जाते हैं। कई बार प्रश्नावली लौटकर भी नहीं आती हैं। यह कार्य भी प्रतिनिधित्व की समस्या को उत्पन्न करता है।

3. पक्षपात पूर्ण उत्तरः- प्रश्नावली के प्रश्नों का पक्षपातपूर्ण तरीके से उत्तर दिया जाना भी इसकी विश्वसनीयता की राह में तीसरी सबसे बड़ी बाधा बनता है। प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर सूचनादाता द्वारा स्वयं हाथों से लिखकर दिया जाता है। सूचनादाता के अंतर्मन में सदैव यह चिन्ता या अंदेशा व्याप्त रहता है कि कहीं उसके द्वारा प्रदत्त उत्तरों का अनुसंधानकत्र्ता द्वारा गलत रूप से प्रयोग न किया जाए। इस कारण अधिकांशतः वह प्रश्नावली के प्रश्नों का कृत्रिम व पक्षपात की भावना से युक्त होकर उत्तर देता है। इस कार्य में वह संतुलित उत्तर न देकर या तो तीखी आलोचनायुक्त उत्तर देता है या फिर पूर्णतयाः सहमति प्रदर्शित करता है।

12.7.2 विश्वसनीयता की जांच

प्रश्नावली के उत्तरों से प्राप्त सूचनाएं मिश्रित प्रकार की विशेषतायुक्त होती हैं अर्थात् इनमें विश्वसनीय, और अविश्वसनीय दोनों प्रकार की सूचनाओं का समन्वय होता है। इन सूचनाओं की विश्वसनीयता की जांच हेतु कुछ उपायों का आश्रय लिया जाता है जो निम्नलिखित हैं:

1. प्रश्नावली को पुनःभेजनाः- प्रश्नावली विश्वसनीय सूचना दे रही है या नहीं, इसको जाँचने के लिए पहले भेजी गई प्रश्नावलियों को उन्हीं सूचनादाताओं के पास पुनः प्रेषित करना चाहिए। यदि दूसरी बार प्राप्त उत्तरों से पुरानी प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों की समानता परिलक्षित होती है, तो पहले प्राप्त सूचनाएं विश्वसनीय कहीं जा सकती हैं। परन्तु यदि स्थिति इसके विपरीत हो अथवा दोनों बार प्राप्त सूचनाओं में मतैक्य न हो, तब यह समझना चाहिए कि प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाएं विश्वसनीय नही हैं।

2. समान वर्गों का अध्ययनः- प्रश्नावली के प्रश्नों की जाँच हेतु प्रश्नावली को समान वर्गों को उत्तर देने हेतु प्रेषित करना चाहिए। तत्पश्चात् जो उत्तर समान वर्गों से प्राप्त हुए हों उन्हें पूर्व प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों से मिलाना चाहिए। मिलान करने पर यदि दोनों प्रकार के उत्तरों में समानता परिलक्षित होती है, तब प्रदत्त सूचना व आँकड़ों को विश्वास योग्य माना जा सकता है। यदि यह समानता परिलक्षित न हो तब प्रश्नावली भी विश्वास योग्य नहीं मानी जानी चाहिए।

3. उप- निदर्शन का प्रयोगः- प्रश्नावली विश्वसनीय है या नहीं, यह जाँचने हेतु एक मार्ग यह है कि जो मुख्य निदर्शन निर्धारित किया गया है उसमें से एक उपनिदर्शन का चुनाव किया जाए और चयनित उपनिदर्शन में अनुसूची का निर्माण कर उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाओं व तथ्यों का संग्रह

किया जाए। अब यदि प्रमुख निदर्शन की सहायता से प्राप्त पूर्व सूचनाओं और पश्चात्वर्ती चयनित उपनिदर्शन से प्राप्त सूचनाओं के मध्य पर्याप्त अन्तर प्राप्त हो, तब प्रश्नावली अविश्वसनीय व संशयपूर्ण मानी जायेगी और यदि दोनों से प्राप्त तथ्यों में पर्याप्त समानता प्रदर्शित हो तब प्रश्नावली विश्वसनीय समझी जायेगी।

4. अन्य अनुसंधान प्रविधियों का उपयोगः- अनुसंधान की अन्य प्रविधियाँ भी, यथा साक्षात्कार, अवलोकन आदि प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जाँच हेतु सहायक होती हैं। उदाहरणस्वरूप, साक्षात्कार व अवलोकन आदि विधियों द्वारा समान प्रश्नों के उत्तरों में समानता लक्षित हो तब प्रश्नावली विश्वसनीय मानी जाएगी, और ऐसा न होने पर अविश्वसनीय मानी जायेगी।

5. पूर्व ज्ञानः- अनुसंधानकर्ता को यदि शोध समस्या या घटना के विषय में पहले से ही सही कारण या तथ्यों का ज्ञान है, तब प्रश्नावली विधि द्वारा उस समस्या के विषय में भिन्न सूचनाएं प्राप्त होने पर वह स्वयं ही विश्वसनीयता की जाँच कर सकता है और विपरीत सूचना प्राप्त होने पर प्रश्नावली की विश्वसनीयता के विषय में शंका कर सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

4. प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जाँच की कोई दो विधियाँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

12.8 सार-संक्षेप

इस इकाई में हमने सबसे पहले प्रश्नावली का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं की चर्चा की है। अनुसूची प्राथमिक तथ्य संकलन की एक महत्वपूर्ण प्रविधि है जिसे डाक द्वारा सूचनादाताओं को प्रेषित किया जाता है। प्रश्नावली द्वारा कम समय में विस्तृत क्षेत्र से अधिक से अधिक सूचनाएं एकत्रित होती हैं। इसके पश्चात् प्रश्नावली के प्रकारों की चर्चा करते हुए इसके गुण-दोष की विवेचना की गयी है। इसके बाद प्रश्नावली निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है और अंत में प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जांच तथा विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा गई है। वर्तमान में प्रश्नावली की उपयोगिता को देखते हुए सरकारी तथा गैर सरकारी संगठन प्राथमिक तथ्य संकलन में इसका अधिकाधिक प्रयोग कर रहे हैं।

12.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. जब अनेक प्रकार के प्रश्नों को एक निश्चित क्रम से सूचीबद्ध कर दिया जाता है तब यह विधि प्रश्नावली कही जाती है। इसके अन्तर्गत अध्ययन विषय से सम्बद्ध विभिन्न पहलुओं के विषय में पूर्व निर्धारित/निर्मित प्रश्नों को सम्मिलित कर अनुसंधान किया जाता है। अनुसंधानित विषय के समस्त पक्षों को समेटकर सम्बन्धित विषय की वांछित सूचनाएँ व आँकड़े एकत्र करने में प्रश्नावली बहुत सहायक होती है। प्रश्नावली विधि का प्रयोग अनुसंधानकर्ता द्वारा अन्वेषित विषय से सम्बन्धित प्रश्नों की सूची को डाक द्वारा उत्तरदाताओं को प्रेषित करके किया जाता है। शोधित विषय के महत्व को उत्तरदाताओं को समझाने हेतु एक व्याख्या पत्र भी डाक द्वारा उत्तरदाताओं को भेजा जाता है। प्रश्नावली के माध्यम से संचालित विषय को समझते हुए उत्तरदाताओं द्वारा स्वयं पढ़कर, समझकर उसके प्रश्नों के उत्तर को पूरित कर डाक द्वारा पुनः अनुसंधानकर्ता को भेजा जाता है। अध्ययनकर्ता डाक द्वारा प्राप्त प्रश्नावली एवं उस पर आधारित उत्तरों से प्राप्त सूचनाओं को व्याख्यायित एवं विश्लेषित कर अनुसंधानित विषय से सम्बन्धित निष्कर्ष निकालता है। अतः अनुसंधान कीगुणवत्ता प्रश्नावली के प्रश्नों एवम् प्राप्त उत्तरों कीगुणवत्ता पर बहुत कुछ निर्भर करती है।

2. लुण्डवर्ग ने प्रश्नावली को मुख्यतः दो प्रकारों में विभाजित किया है:

(i) तथ्य संबन्धी प्रश्नावली: - जिस प्रश्नावली के निर्माण का मुख्य उद्देश्य किसी समूह विशेष की सामाजिक-आर्थिक पक्षों से सम्बन्धित सूचना-सामग्री व तथ्यों का संकलन करना होता है, वह तथ्य सम्बन्धी प्रश्नावली कहलाती है।

(ii) मत और मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली: - जिस प्रश्नावली का लक्ष्य किसी विषय विशेष पर उत्तरदाताओं के अंतर्मन में विद्यमान विचारों, रुचियों अथवा अभिवृत्तियों को ज्ञात करना होता है वह मत और मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली कहलाती है।

पी. वी. यंग ने भी प्रश्नावली के दो प्रकारों को उल्लिखित किया है:-

(i) संरचित प्रश्नावली:- जब शोधकार्य में प्रयुक्त करने हेतु प्रश्नावली को पहले से ही निर्मित कर लिया जाता है तब इसे संरचित प्रश्नावली कहते हैं। इस प्रकार की प्रश्नावली में अधिकांशतया किसी प्रकार के परिवर्तन की संभावना नहीं रहती है। संरचित प्रश्नावली विशाल क्षेत्र में फैले व्यक्तियों से उत्तर प्राप्त कर प्राथमिक तथ्यों व आँकड़ों को एकत्र करने के पश्चात् संग्रहीत तथ्यों का पुनर्विश्लेषण करने में उपयोगी होती है। इसमें संकलित प्रश्नों की प्रकृति स्पष्ट, पूर्व-निर्धारित और एक विशेष क्रमानुसार होती है जिसके परिणामस्वरूप प्रश्नावली प्रत्येक उत्तरदाता के लिए बोधगम्य और एकसमान होती है।

(ii) असंरचित प्रश्नावली: - असंरचित प्रश्नावली के अन्तगर्त अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्र करने हेतु पूर्व निर्धारित प्रश्नों को समाविष्ट नहीं किया जाता है अपितु अनुसंधानित विषय का केवल उल्लेख कर उसे स्पष्ट कर दिया जाता है। अनुसंधान कार्य करते समय यह अनुसंधानकत्ता एवं उत्तरदाताओं को अपेक्षित सूचनाओं को एकत्र करने हेतु मार्ग-निदर्शन का कार्य करती है।

3- प्रश्नावली के गुण या लाभ

(1) विशाल अध्ययन:- अनुसूची और साक्षात्कार प्रविधियों के अन्तर्गत समय, धन और व्यक्तिगत क्षमता आदि के सीमित होने के कारण अध्ययनकर्ता द्वारा उत्तरदाताओं से निजी और सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करते हुए सीमित क्षेत्र में अन्वेषण कार्य किया जाता है। जबकि, प्रश्नावली के द्वारा विस्तृत क्षेत्र में स्थित बहुसंख्य व्यक्तियों से अल्प समय और अल्प व्यय में सुविधाजनक तरीके से अध्ययन किया जाता है।

(2) कम व्यय:- प्रश्नावली प्रविधि के द्वारा अध्ययन कार्य करने हेतु जहाँ एक ओर क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं की सहायता आवश्यक नहीं होती है, वहीं दूसरी ओर उत्तरदाताओं के विशाल क्षेत्र से होने के कारण व्यक्तिगत सम्वाद-सम्पर्क विकसित करने की भी आवश्यकता नहीं होती है जिस कारण अनुसंधान कार्य में व्यय पर भी अंकुश लगता है।

4. विश्वसनीयता की जांच: - प्रश्नावली के उत्तरों से प्राप्त सूचनाएं मिश्रित प्रकार की विशेषतायुक्त होती हैं अर्थात् इनमें विश्वसनीय, और अविश्वसनीय दोनों प्रकार की सूचनाओं का समन्वय होता है। इन सूचनाओं की विश्वसनीयता की जांच हेतु कुछ उपायों का आश्रय लिया जाता है जो निम्नलिखित हैं:

(1) प्रश्नावली को पुनः भेजना:- प्रश्नावली विश्वसनीय सूचना दे रही है या नहीं, इसको जाँचने के लिए पहले भेजी गई प्रश्नावलियों को उन्हीं सूचनादाताओं के पास पुनः प्रेषित करना चाहिए। यदि दूसरी बार प्राप्त उत्तरों से पुरानी प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों की समानता परिलक्षित होती है, तो पहले प्राप्त सूचनाएं विश्वसनीय कहीं जा सकती हैं। परन्तु यदि स्थिति इसके विपरीत हो अथवा दोनों बार प्राप्त सूचनाओं में मतैक्य न हो, तब यह समझना चाहिए कि प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाएं विश्वसनीय नही हैं।

(2) समान वर्गों का अध्ययन:- प्रश्नावली के प्रश्नों की जाँच हेतु प्रश्नावली को समान वर्गों को उत्तर देने हेतु प्रेषित करना चाहिए। तत्पश्चात् जो उत्तर समान वर्गों से प्राप्त हुए हों उन्हें पूर्व प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों से मिलाना चाहिए। मिलान करने पर यदि दोनों प्रकार के उत्तरों में समानता परिलक्षित होती है, तब प्रदत्त सूचना व आँकड़ों को विश्वास योग्य माना जा सकता है। यदि यह समानता परिलक्षित न हो तब प्रश्नावली भी विश्वास योग्य नहीं मानी जानी चाहिए।

12.10 अभ्यास-प्रश्न

1. प्रश्नावली क्या है? प्रश्नावली के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।

2. प्रश्नावली के निर्माण की प्रक्रिया का विवेचना कीजिए।

3. प्रश्नावली के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।

4. प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जांच-प्रविधियों का वर्णन कीजिए।

5. प्रश्नावली की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारको का वर्णन कीजिए।

12.11 पारिभाषिक शब्दावली

संरचित प्रश्नावली - इस प्रकार की प्रश्नावली की रचना अध्ययन प्रारम्भ करने पूर्व ही कर ली जाती है।

बन्द प्रश्नावली - इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्नों के साथ उसके सम्भावित उत्तर भी दिए जाते है।

खुली प्रश्नावली - इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के साथ उसके सम्भावित उत्तर नही दिए जाते है सूचनादाता स्वयं अपनी इच्छानुसार कोई भी उत्तर दे।

12.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

• Gardner, Lindzey and Elliott, (2nd ed.). (1975). The Handbook of Social Psychology. vol II. Amerind Publishing Co. New Delhi.

• Manheim Henry L., (1977). Sociological Research : Philosophy & Methods. The Dorsey Press. Illinois.

• Moser C .A. and G. Kalton. (2nd ed). (1980). Survey Methods in Social Investigation. Heinemann Educational Books . London.

• Selltiz, Jahoda and Claire Marie. (1959). Research Methods in Social Relations. Henry Holt and Company. New York.

• Kothari, C.R. (2009). Research Methodology Methods and Techniques. 2nd Revised ed., New Age International (P) Limited, Publishers. New Delhi.

• Selthiz, Claire. (1965). Research Methods in Social Relations. London: Methuen & Co. Ltd.

• राम आहूजा. 2005. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान. रावत पब्लिकेशन्स. दिल्ली.

• Ray & sagar Mondal. 2006. Research in Social Sciences and Extension Education. Kalyani Publishers. New Delhi.

इकाई- 13 **वैयक्तिक अध्ययन**

Case Study

इकाई की रूपरेखा

13.0 अध्ययन के उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13..2 वैयक्तिक अध्ययन: अर्थ तथा परिभाषा

13..2.1 वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएं

13.2.2 वैयक्तिक अध्ययन की मान्यताएं

13.3 वैयक्तिक अध्ययन के प्रकार

13.4 वैयक्तिक अध्ययन की प्रणाली

13.5 वैयक्तिक अध्ययन के स्रोत

13.6 वैयक्तिक अध्ययन के गुण

13.7 वैयक्तिक अध्ययन की दोष

13.8 सार-संक्षेप

13.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

13.10 अभ्यास-प्रश्नों के उत्तर

13.11 पारिभाषिक शब्दावली

13.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.1 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान में वैयक्तिक अध्ययन (जिसे एकल-विषय अध्ययन भी कहा जाता है) आँकड़े एकत्रित करने की सर्वाधिक प्राचीन प्रविधि है। यह किसी सामाजिक इकाई के गहन एवं विस्तृत अध्ययन

करने तथा इस प्रकार उस इकाई के बारे में सम्पूर्ण गुणात्मक आँकड़े एकत्रित करने की महत्वपूर्ण प्रविधि मानी जाती है। वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक अनुसंधानकत्र्ता को तीव्र एवं सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्रदान करके इकाई का गहन अथवा विस्तृत अध्ययन करने में सहायता प्रदान करता है। इसमें किसी एक व्यक्ति, घटना अथवा संस्था का सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है।

13.2 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा;

- वैयक्तिक अध्ययन की परिभाषा देना,
- वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताओं तथा मान्यताओं की चर्चा करना,
- वैयक्तिक अध्ययन के प्रकारों को बताना,
- वैयक्तिक अध्ययन में तथ्य संकलन की प्रविधियों की चर्चा करना।

13.3 वैयक्तिक अध्ययन: अर्थ एवं परिभाषा

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति गुणात्मक प्रकृति के तथ्यों का अध्ययन करने की महत्वपूर्ण विधि है। इसके द्वारा किसी व्यक्ति, परिस्थिति अथवा संस्था का प्रत्यक्ष रूप से बहुत सूक्ष्म अवलोकन किया जाता है तथा उससे सम्बन्धित सभी पक्षों का गहन अध्ययन करके निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। अर्थात् सामाजिक अनुसंधान में किसी एकल घटना, समस्या, प्रकरण अथवा विषय का गहन अध्ययन वैयक्तिक अध्ययन होता है। इस अध्ययन प्रविधि के द्वारा एक व्यक्ति, संस्था, व्यवस्था, समुदाय, संगठन, घटना और यहाँ तक कि सम्पूर्ण संस्कृति का अध्ययन हो सकता है। इस विधि में विस्तृत तथ्यों का संकलन करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक, दोनों स्रोतों का प्रयोग किया जाता है।

क्रोमरे (1986) के मतानुसार ,''वैयक्तिक अध्ययन में व्यक्तिगत विषयों का अध्ययन सम्मिलित होता है, जो प्रायः अपने प्राकृतिक वातावरण में एक लम्बी समयावधि के लिए किया जाता है।''

गुडे एवं हाट ने वैयक्तिक अध्ययन की परिभाषा इस प्रकार दी है- ''वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक तत्वों को संगठित करने का वह ढंग है जिससे अध्ययन करने वाले विषय के एकात्मक स्वभाव का संरक्षण हो सके। थोड़े से भिन्न रूप में यह एक पद्धति है जिसमें किसी सामाजिक इकाई को एक ऐसी समग्र के रूप में देखा जाता है।''

स्वप्रगति परीक्षण

1. **वैयक्ति अध्ययन का आशय स्पष्ट करते हुए इसे परिभाषित कीजिए।**

.....

.....

.....

13.2.1 वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएं

वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) अध्ययन की विशेष इकाई: वैयक्तिक अध्ययन किसी एक विशेष सामाजिक इकाई का अध्ययन है। यह इकाई मूर्त भी हो सकती है और अमूर्त भी। यह इकाई कोई व्यक्ति, संस्था, जाति, समुदाय, संगठन और यहां तक सम्पूर्ण संस्कृति भी हो सकती है।

(2) गुणात्मक अध्ययन: इस पद्धति की सहायता से इकाई का गुणात्मक अध्ययन किया जाता है, संख्यात्मक अध्ययन नहीं। इस विधि में तथ्यों की विवेचना सांख्यिकी के रूप में नहीं की जा सकती। इस पद्धति के निष्कर्षों को कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(3) गहन अध्ययन: वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक इकाई का उसकी समग्रता में अध्ययन करता है। अध्ययनकर्ता समय की चिन्ता किए बिना तब तक अध्ययन में लगा रहता है जब तक अध्ययनपूर्ण न हो जायय। इस अध्ययन में इकाई के भूतकाल से लेकर वर्तमान तक का अध्ययन किया जाता है। अतः यह इकाई के विस्तृत एवं गहन अध्ययन से सम्बन्धित मुख्य पद्धति है।

(4) सीमित क्षेत्र: व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति में एक विशिष्ट इकाई का अध्ययन किया जाता है। इकाई के इस अध्ययन की प्रकृति गहन होती है और इसका परिणाम यह होता है कि अध्ययन का क्षेत्र सीमित होता है।

(5) कारकों का अध्ययन: इस प्रविधि के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता किसी इकाई की विभिन्न परिस्थितियों के बीच कार्य-कारण सम्बध को ज्ञात करता है। इस पद्धति के अन्तर्गत इकाई के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का भी पता लगाया जाता है।

(6) विश्लेषण के क्षेत्र का निर्धारण: इसके पश्चात् समस्या के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है, जिसमें अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण किया जाता है। अर्थात् अध्ययनकता द्वारा यह निर्णय भी लिया जाता है कि अध्ययन की जाने वाली इकाई से सम्बन्धित प्रमुख पक्ष कौन-कौन से हैं, इन पक्षों में उसे किन-किन पहलुओं का अध्ययन करना है और कौन-से पक्ष अध्ययन के लिए अनुपयोगी हैं।

13.2.2 व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति की मान्यताएं

व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति का प्रयोग सभी परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति की कुछ निश्चित मान्यताएं हैं। इन मान्यताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) व्यवहार में समानता: व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति की पहली मान्यता यह है कि सभी मनुष्यों में स्वाभाविक एकरूपता और समानता विद्यमान है तथापि उनके ऊपरी व्यवहार में कुछ असमानताएं देखी जा सकती हैं। इस पद्धति के अनुसार मानव व्यवहार की मौलिक पद्धतियों में समानता पाई जाती है जिसके कारण ही व्यक्तियों का विशेष परिस्थितियों में व्यवहार भी एक समान होता है। इसी समानता के कारण किसी एक इकाई का सम्पूर्ण अध्ययन करके उससे प्राप्त निष्कर्षो को सभी में लागू किया जाता है।

(2) सामाजिक घटनाओं में जटिलता: सामाजिक घटनाओं की प्रकृति अत्यन्त जटिल होती है क्योंकि ये अमूर्त होती हैं। इस जटिलता और अमूर्तता के कारण इनका अवलोकन नहीं किया जा सकता। अतः व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति के माध्यम से हम सामाजिक घटनाओं के सम्पर्क में अधिक समय तक रहते हैं और इससे विश्वसनीय सूचनाएं एकत्रित होती हैं।

(3) समय का प्रभाव: वैयक्ति अध्ययन की तीसरी मान्यता यह है कि सामाजिक घटनाएं और मानवीय व्यवहार समय के अनुसार प्रभावित होते रहते हैं, अतः जिस इकाई का अध्ययन किया जाता है उसके घटित होने वाले भूतकालीन समय में किसी न किसी कारक का प्रभाव गहन हो चुका होता है और उसका प्रभाव आने वाले वर्षों में पड़ सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसका अध्ययन एक लम्बी अवधि तक करना चाहिए।

(4) परिस्थितियों की पुनरावृत्ति: चैथी मान्यता यह है कि प्रत्येक मानव व्यवहार कुछ निश्चित परिस्थितियों से प्रभावित होता है। कुछ परिस्थितियां ऐसी हैं जो कि बार-बार लगभग एक समान रूप से घटित होती रहती हैं।

(5) सम्पूर्ण अध्ययन: इकाई का पूर्णतया अध्ययन करना ही वैयक्तिक अध्ययन की पांचवीं मान्यता है। किसी भी इकाई का अध्ययन उसे अनेक भागों में विभाजित करके नही किया जा सकता। इकाई का समग्र के रूप में किया गया अध्ययन ही इसे पूरी तरह समझने में सहायक होता है।

स्वप्रगति परीक्षण

2. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की कोई दो मान्यताएं बताइए।

.....

.....

.....

13.3 वैयक्तिक अध्ययन के प्रकार

रोबर्ट बर्न्स ने वैयक्तिक अध्ययन छः प्रकार के बताए हैं:

(1) ऐतिहासिक वैयक्तिक अध्ययन: इस अध्ययन से किसी संगठन, संस्था अथवा व्यवस्था के दीर्घकालीन विकास का पता लगता है।

(2) अवलोकन वैयक्तिक अध्ययन: यह अध्ययन अवलोकन पर केन्द्रित होता है जिसमें किसी घटना, नेता, यूनियन या भीड़ के व्यवहार का अवलोकन किया जाता है।

(3) मौखिक वैयक्तिक अध्ययन: यह आमतौर पर किसी व्यक्ति के कथन होते हैं जो कि अनुसंधानकर्ता किसी व्यक्ति के गहन साक्षात्कार के माध्यम से एकत्र करता है। इसको उत्तरदाताओं के स्वभाव व सहयोग की निर्भरता के कारण प्रयोग में लाया जाता है।

(4) स्थितीय वैयक्तिक अध्ययन: इस प्रकार के अध्ययन में विशेष घटनाओं का अध्ययन होता है, घटना से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के विचार लेकर उन सभी विचारों को साथ रखकर घटना की गहनता का अध्ययन किया जाता है जो घटना को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(5) चिकित्सकीय वैयक्तिक अध्ययन: इस उपागम का उद्देश्य किसी विशेष व्यक्ति को गहराई से समझने से होता है। उदाहरण के लिए किसी महिला के उत्पीड़न की समस्या से सम्बन्धित अध्ययन या छात्रों की समस्या का अध्ययन आदि।

(6) बहुवैयक्तिक अध्ययन: व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति को दो और भागों में विभक्त किया जा सकता है।

वैयक्तिक अध्ययन को दो और प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

(अ) व्यक्ति का अध्ययन: इस उपागम का प्रयोग किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन काल के अध्ययन हेतु किया जाता है। इस अध्ययन को करते समय विविध प्रकार के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों तथा उपलब्ध

प्रविविधयों का प्रयोग किया जाता है। साथ ही व्यक्ति-विशेष से साक्षात्कार द्वारा तथा उसके व्यवहार का अवलोकन करके उसके बारे में प्राथमिक जानकारी भी प्राप्त की जाती है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति-विशेष का अध्ययन करने के लिये विभिन्न स्रोतों जैसे डायरी, परिवार के सदस्यों की राय, व्यक्तियों के पत्रों से प्राप्त तथ्य, आत्म कथा और जीवनी, सस्मरणों तथा पड़ोस के सदस्यों और क्रीड़ा समूह से भी तथ्य प्राप्त किये जाते हैं।

(ब) समुदाय अथवा समूह का अध्ययन: दूसरे प्रकार का अध्ययन किसी समूह, संस्था या समुदाय के सूक्ष्म और गहन अध्ययन से सम्बन्धित है। इसके द्वारा किसी सम्पूर्ण समुदाय, जाति, वर्ग के सम्पूर्ण जीवन अथवा उसके किसी एक भाग का गहराई से अध्ययन किया जाता है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. वैयक्तिक अध्ययन के प्रकारों का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

13.4 व्यक्तिगत अध्ययन की प्रणाली

व्यक्तिगत अध्ययन में किसी व्यक्ति या संस्था के बारे में सम्पूर्ण अध्ययन किया जाता है तथा इसके लिये अनेक उपलब्ध प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिनकी सहायता से वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली का व्यवस्थित रूप में उपयोग किया जाता है।

(1) समस्या का विवेचन: वैयक्तिक अध्ययन के प्रयोग में अनुसंधानकर्ता के सामने सबसे पहला कार्य समस्या की प्रकृति, इसके अध्ययन की इकाई तथा उसके विभिन्न पक्षों से पूर्णतया अवगत होना आवश्यक होता है। व्यक्तिगत ढंग से किया जाने वाला कार्य वैयक्तिक अध्ययन की सम्भावना को बढ़ा देता है। समस्या का विवेचन निम्न तत्वों को ध्यान में रखकर किया जाता है:

(अ) विषय का चुनाव: वैयक्तिक अध्ययन में सबसे पहले अध्ययन से सम्बन्धित समस्या अथवा विषय का चयन करना आवश्यक होता है ताकि वह समस्या का सही प्रतिनिधित्व कर सके।

(आ) इकाईयों का प्रकार: समस्या का चुनाव करने के बाद इकाईयों के प्रकारों की व्याख्या करनी चाहिए कि अध्ययन की समस्या से सम्बन्धित इकाईयां कौन-कौन सी हैं। इकाई व्यक्ति, समूह या समुदाय हो सकती है।

(इ) इकाईयों की संख्याः अध्ययन की इकाई तय कर लेने के पश्चात् अनुसंधानकर्ता के सामने तीसरा कार्य इकाईयों की संख्या निश्चित करना है। इकाईयों की संख्या इतनी होनी चाहिए कि समस्या का गहन अध्ययन सम्भव हो सके।

(ई) अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण: वैयक्तिक अध्ययन के अध्ययनकर्ता द्वारा उस स्थान का निर्धारण करना भी आवश्यक होता है जहां पर विभिन्न इकाईयों का अध्ययन किया जाता है।

(2) घटनाओं के क्रम का वर्णन: अध्ययन के विषय या समस्या का चुनाव करने के पश्चात् समस्या से सम्बन्धित घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् अमुक घटना में समय के साथ-साथ किस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं तथा भविष्य में किसी विशेष इकाई से सम्बन्धित कौन-कौन सी घटनाएं घटित होने की सम्भावना की जा सकती है।

(3) निर्धारक कारक: यह अध्ययन पद्धति का तीसरा चरण है। इसके द्वारा घटनाओं के लिए उत्तरदायी उन कारकों का पता लगाना होता है जिनसे निश्चित अवधि में घटना के स्वरूप के व्यवहार में परिवर्तन होते रहते हैं। सामाजिक घटना को निर्धारित करने वाले कारक दो प्रकार के होते हैं:

(अ) मौलिक कारक/मुख्य कारकः जो घटना को संचालित करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

(आ) सहायक कारकः जो कारक गौण से होते हैं किन्तु मुख्य कारकों को शक्ति प्रदान करके घटना के घटित होने में सहायक होते हैं।

(4) विश्लेषण व निष्कर्ष: वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि का अन्तिम चरण घटनाओं या समस्या के सम्बन्ध में जो तथ्य एकत्रित किये जाते हैं, उनका विश्लेषण करना है।

13.5 वैयक्तिक अध्ययन में तथ्य संकलन की प्रविधियां

वैयक्तिक अध्ययन अनुसंधान की वह पद्धति है जिसके माध्यम से अध्ययन विषय की सम्पूर्ण एवं गहन जानकारी प्राप्त की जाती है। इसलिए इसमें इकाई के विभिन्न पक्षों के बारे में आकड़े संकलन करने के लिए विभिन्न उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति में तथ्य संकलन हेतु जिन यन्त्रों और विधियों का प्रयोग किया जाता है वह निम्नलिखित हैं:

प्राथमिक सूचनाएं संकलन करने की प्रविधियां

(1) साक्षात्कार: साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान की एक प्रक्रिया है, जो इस मान्यता पर आधारित होता है कि उत्तरदाताओं का मौखिक व्यवहार ही एक प्रकार से उनका वास्तविक व्यवहार है जिसके माध्यम से उनकी वास्तविक मनोवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। इस विधि के द्वारा अध्ययनकर्ता तथा सूचनादाता के बीच आमने-सामने की स्थिति उत्पन्न होती है जो परस्पर सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायक होती है। लिंडसे गार्डनर (1968) के अनुसार ''साक्षात्कार, साक्षात्कारकर्ता द्वारा अनुसंधान से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने के विशेष उद्देश्य के लिए चलाया जाने वाला दो व्यक्तियों का वार्तालाप होता है।'' पी० वी० यंग (1960) के अनुसार ''अनुसंधानकर्ता कल्पनात्मक रूप से सूचनादाता के जीवन में प्रवेश करता है तथा उसके जीवन के भूत, वर्तमान तथा भविष्यकाल की सूचना एकत्र करता है।'' सभी विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत विचारों एवं परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि किसी भी सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में वह अनुसंधान जिनकी प्रकृति वैज्ञानिक होती है, उनके अध्ययन में साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक यंत्र है।

(2) अवलोकन: अवलोकन तथ्य संकलन की एक विधि है, जिसमें दृष्टि आधारित सामग्री संग्रह होता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कानों तथा ध्वनि की तुलना में नेत्रों का प्रयोग महत्वपूर्ण होता है। यह विधि घटनाएं कैसे घटित होती हैं- इसे तथा उनका घटने का क्रम, कारण तथा प्रभावों और उनके पारस्परिक संबंधों को देखती है और उन्हें लेखबद्ध करती है। **लिंड्से गार्डनर (1975)** के मत के अनुसार ''अनुभव पर आश्रित उद्देश्यों के लिए जीवधारियों से सम्बंधित उनकी स्वाभाविक स्थितियों में जो एक-सी रहती हों, उनके व्यवहार तथा स्थितियों का चुनाव, उत्तेजन, अभिलेखन तथा कोडबद्ध करना होता है ।'' **सी० ए० मोजर (1971)** के अनुसार ''सही अर्थों में, कानों तथा वाणी की अपेक्षा आखों का प्रयोग ही अवलोकन कहलाता है।'' अवलोकन तीन प्रकार के होते हैं- प्रथम, सहभागी अवलोकन; इस विधि में अवलोकनकर्ता उस समूह का सदस्य बन जाता है जिसका अवलोकन कर रहा हो। द्वितीय, असहभागी अवलोकनय इसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के मध्य केवल उपस्थित रहता है, किन्तु समुदाय के क्रियाकलाप में प्रतिभाग नहीं लेता। तृतीय, अर्द्धसहभागी अवलोकन; जिसमें अवलोकनकर्ता समूह के दैनिक जीवन में भी भाग लेता है और अनेक विशेष परिस्थितियों में वह एक तटस्थ दर्शक बन जाता है।

(3) अनुसूची: अनुसूची प्रश्नों की एक ऐसी सूची है जिससे समस्या को प्रत्यक्ष रूप से अवलोकित करके जो सूचनाएं एकत्र की जाती हैं, वह अधिक उपयोगी एवं विश्वसनीय होती हैं। सामाजिक अनुसंधान में आँकड़े संकलित करने की प्रविधियों में से साक्षात्कार-अनुसूची का प्रयोग सर्वाधिक होता है। प्रो0 गुडे एवं हॉट के शब्दों में, ''अनुसूची उन प्रश्नों का समुच्चय है, जिन्हें साक्षात्कारकत्र्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति से आमने-सामने की स्थिति में पूछे और भरे जाते हैं''। वस्तुतः अनेक सामाजिक तथ्यों की प्रकृति इस तरह की होती है कि अवलोकन के द्वारा ही उन्हें समुचित रूप से नहीं समझा जा सकता है, इस सीमा को दूर करने के उद्देश्य से अनुसंधानकर्ता संरचित प्रश्नों की सूची का निर्माण कर अध्ययन क्षेत्र में उपस्थित होकर

उत्तरों को स्वयं लिखता है। प्राथमिक सामग्री संकलित करने के लिए अनुसूची में अवलोकन, साक्षात्कार तथा प्रश्नावली की विशेषताओं का समन्यव होता है।

(4) प्रश्नावली: प्रश्नावली प्रश्नों की एक क्रमबद्ध सूची है जो विषयवस्तु के सम्बन्ध में सूचनाएं अर्जित करने में योग देती है। इसे डाक द्वारा सूचनादाता के पास भेजा जाता है तथा सूचनादाता इस पर प्रश्नों के उत्तर देकर अनुसन्धानकर्ता को वापस भेज देता है। इस प्रकार प्रश्नावली एक ऐसा स्रोत है जिसमें अनुसन्धानकर्ता तथा सूचनादाता के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता। लेकिन फिर भी यह प्राथमिक सामग्री का संकलन करने में उपयोगी उपकरण है। प्रश्नावली विस्तृत क्षेत्र में बिखरे हुए सूचनादाताओं से सूचना एकत्रित करने तथा आंकड़े संकलन करने की शीघ्रतम पद्धति है।

(5) रेडियो अथवा टेलीविजन अपील: प्राथमिक सामग्री संकलन में रेडियो अथवा टेलीविजन का उपयोग भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान में विकसित तथा विकासशील देशों में इन उपकरणों का उपयोग किया जाता है। इनके द्वारा किन्हीं विशेष अवसरों पर विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण करके श्रोताओं से अपील की जाती है कि वे सम्बन्धित विषय में अपने विचारों अथवा प्रतिक्रियाओं को अमुक पते पर भेज दें इसके फलस्वरूप निश्चित अवधि के अन्दर विषय से सम्बन्धित बहुत अधिक उत्तर प्राप्त हो जाते हैं।

(6) टेलीफोन साक्षात्कार: टेलीफोन साक्षात्कार में सूचनादाताओं से अप्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया जाता है। वर्तमान समय में महानगरों, शहरों तथा विस्तृत क्षेत्र के कारण उनके पास पहुंचना आसान नहीं होता, अतः टेलीफोन के द्वारा चुने गये सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करके एक विशेष विषय से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करने का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु इसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं से प्राप्त निष्कर्षों का सत्यापन करना सम्भव नहीं होता।

द्वितीयक स्रोत

प्राथमिक स्रोतों के अतिरिक्त वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सूचनाओं के संकलन के लिए द्वितीयक स्रोत भी महत्वपूर्ण होते हैं। द्वितीयक सूचना उसे कहते हैं जिसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा लेखबद्ध नहीं किया जाता है। अन्य लोगों द्वारा लिखित रूप में उपलब्ध द्वितीयक सूचनाएं प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपकरण हैं:

(1) डायरी: व्यक्तिगत अध्ययन में डायरी का अत्यधिक महत्व होता है। डायरी के माध्यम से व्यक्ति के दैनिक क्रियाकलाप और उसके अन्तर्मन की भावनाओं को समझने में सहायता मिलती है। चूंकि डायरी एक पूर्णतः गोपनीय दस्तावेज है, अतः व्यक्ति के जीवन की रहस्यमयी बातों का पता लगाने का यह एक विश्वसनीय स्रोत है ऐसी बातें सिर्फ डायरी में लिखी जा सकती हैं।

(2) जीवन इतिहास: तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत के रूप में जीवन इतिहास का काफी महत्व है। जीवन इतिहास में व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं और अनुभवों का बहुत विस्तार के साथ स्वाभाविक विवेचन करता है। इसमें किसी व्यक्ति के जीवन इतिहास से, उसके समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं अन्य विभिन्न प्रकार की घटनाओं को समझने में सहायता मिलती है। इससे किसी एक विशेष काल की सामाजिक परिस्थितियों एवं समस्याओं को भली प्रकार समझा जा सकता है।

(3) वैयक्तिक पत्र: वैयक्तिक अध्ययन में वैयक्तिक पत्रों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में कई पत्र लिखता है। इनमें व्यक्ति महत्वपूर्ण विचारों, भावनाओं, जीवन की प्रमुख घटनाओं, अनुभवों, प्रेम, घृणा, अपनी योजनाओं आदि को व्यक्त करता है जिसके द्वारा जीवन के अप्रत्याशित और अत्यधिक गोपनीय तथ्यों को भी ज्ञात किया जा सकता है। अतः इनमें यथार्थ तथा विश्वसनीय सामग्री मिल पाती है।

स्वप्रगति परीक्षण

4. सिद्ध कीजिए कि साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान का महत्वपूर्ण उपकरण है।

.....

.....

.....

13.6 वैयक्तिक अध्ययन की उपयोगिता या गुण

सामाजिक अनुसंधान में व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यदि किसी सामाजिक इकाई का सम्पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन करना है तो ऐसी परिस्थिति में वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। यह पद्धति सैद्धांतिक और व्यावहारिक, दोनों दृष्टिकोणों से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसके प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं:

(1) गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन: इस पद्धति की मौलिक विशेषता यह है कि इसके माध्यम से किसी भी सामाजिक इकाई या समस्या का सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया जा सकता है। यह पद्धति किसी समस्या या इकाई के एक पक्ष का अध्ययन नहीं करती, बल्कि इसके द्वारा इकाई से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इसीलिये इसे सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र माना जाता है।

(2) उपकल्पनाओं का स्रोत: इस पद्धति के माध्यम से किसी सामाजिक इकाई का सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के पश्चात् सामान्यीकरण किया जाता है, अर्थात् निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिनकी सहायता से वह उपयोगी परिकल्पनाओं का निर्माण कर सकता है।

(3) विशिष्ट पहलुओं का अध्ययन: इसमें प्रतिनिधि इकाईयों का गहन अध्ययन किया जाता है। इसके माध्यम से इकाईयों के एक पक्ष का अध्ययन न करके विशिष्ट पहलुओं जैसे पारिवारिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा राजनैतिक आदि का अध्ययन किया जाता है।

(4) प्रलेखों में सुधार संभव: वैयक्तिक अध्ययन में जिन विभिन्न प्रविधियों, विशेष रूप से साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रश्नावली, का प्रयोग किया जाता है उनमें वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्रयोग द्वारा सुधार के समुचित अवसर मिलते हैं। इस पद्धति द्वारा इकाई का सम्पूर्ण अध्ययन करके महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी हो जाती है और अनुसन्धानकर्ता के लिए यह सुविधा हो जाती है कि प्रश्न-सूची में किन प्रश्नों का समावेश किया जाय और किन प्रश्नों का नहीं।

(5) इकाईयों का वर्गीकरण: इस पद्धति द्वारा प्रत्येक इकाई के अलग-अलग गुणों का अध्ययन किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न प्रकार की इकाईयों को अलग-अलग बांटने में सहायता मिलती है।

(6) विरोधी इकाईयों का ज्ञान: कुछ इकाईयां ऐसी भी होती हैं जो उपकल्पना के विपरीत होती हैं किंतु उनके द्वारा भी कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को ज्ञात किया जा सकता है, ऐसी विरोधी इकाईयों का ज्ञान वैयक्तिक अध्ययन के अतिरिक्त किसी अन्य विधि से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(7) अनुसन्धानकर्ता के ज्ञान का विस्तार: इस पद्धति द्वारा अनुसन्धानकर्ता किसी सामाजिक इकाई या समस्या का गहराई से अध्ययन करता है तो उसे अध्ययन के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करने की स्वयं ही एक अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिससे उसके अपने अनुभवों का विस्तार होता है।

(8) दीर्घकालीन प्रक्रियाओं का अध्ययन: सामाजिक अनुसंधान की अन्य प्रविधियां केवल एक समय पर तथ्य संकलन करने में सहायता प्रदान करती हैं जबकि वैयक्तिक अध्ययन में अनुसंधानकर्ता अतीत, वर्तमान और भविष्य को समझकर तथा उनका समन्वय करके निष्कर्ष देने में सफल हो सकता है। अर्थात् इसमें दीर्घकालीन घटनाओं एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन भी कर सकते हैं।

(9) प्रारम्भिक अन्वेषणों में उपयोगी: किसी भी अनुसंधान को प्रारम्भ करने से पहले विषय से सम्बन्धित इकाईयों की जानकारी होना अत्यधिक आवश्यक होता है। ऐसा करने से समय का निर्धारण, निर्देश-प्राप्ति तथा उपकरणों के निर्माण में सहायता मिलती है। इन इकाईयों की जानकारी प्राप्त करने के लिए वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सर्वोत्तम साधन है।

(10) व्यक्तित्वों का अध्ययन: वैयक्तिक अध्ययन द्वारा विभिन्न व्यक्तियों के जीवन सम्बन्धी गुणों का विश्लेषण किया जा सकता है। इसमें व्यक्तियों की समस्त, क्षमताओं, मनोवृत्तियों तथा सामाजिक मूल्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। मानसिक दशायें की प्रकृति जटिल, और सूक्ष्म होती है, अतः प्राथमिक अथवा द्वितीयक स्रोतों की सहायता से उनका अध्ययन नहीं किया जा सकता। ऐसे अध्ययनों के लिए वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

13.7 वैयक्तिक अध्ययन के दोष

यद्यपि वैयक्तिक अध्ययन इकाई के गहन, सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन में अति उपयोगी प्रविधि है। इसके बावजूद यह पद्धति दोषमुक्त नहीं है। इसके प्रमुख दोषों को निम्न भागों में विभक्त किया गया है:

(1) सीमिति इकाईयों का अध्ययन: वैयक्तिक अध्ययन का सबसे बड़ा दोष इसके द्वारा सीमित इकाईयों का ही अध्ययन हो पाना है। ये इकाईयां अक्सर सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर पातीं। इससे प्राप्त सूचनाएं कभी-कभी अपूर्ण होती हैं।

(2) दोषपूर्ण प्रलेख: वैयक्तिक अध्ययन में द्वितीयक आकड़ों का प्रयोग किया जाता है। इन द्वितीयक आंकड़ों के उपयोग में अध्ययनकर्ता की निर्भरता अत्यधिक होती है। ऐसी सूचनाएं अपूर्ण और दोषपूर्ण होती हैं। अध्ययनकर्ता इन्हीं प्रलेखों के द्वारा निष्कर्ष देने का प्रयत्न करता है। वहीं प्रलेखों को प्राप्त करना सरल नहीं होता, यदि वे उपलब्ध हो भी जाते हैं तो अविश्वसनीय और अपूर्ण होते हैं। वास्तव में प्रलेखों की विश्वसनीयता की जांच करना कठिन होता है।

(3) पक्षपात: इस पद्धति में अनुसंधानकर्ता इकाई के सभी पक्षों का विस्तृत अध्ययन करता है जिसके कारण अध्ययन की समयावधि अधिक होती है। अतः अनुसंधानकर्ता को सूचनादाता से हमदर्दी हो जाती है। साथ ही अनुसंधानकर्ता अध्ययन इकाई से सूचना एकत्र करके तथा उनका विश्लेषण करने में पूर्णतया स्वतन्त्र होता जिसके कारण अपने बौद्धिक स्तर और विचारों के अनुसार तथ्यों को समझने का प्रयत्न करता है जिसके कारण इसमें पक्षपात की सम्भावना बढ़ जाती है।

(4) अधिक समय एवं धन की आवश्यकता: सामाजिक अनुसंधान की अन्य प्रविधियों की तुलना में वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के उपयोग में अधिक समय और धन की आवश्यकता होती है क्योंकि इस पद्धति में इकाई का सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया जाता है, जोकि लम्बी अवधि का हो सकता है।

(5) प्रतिचयन का अभाव: वैयक्तिक अध्ययन में अनुसंधानकर्ता जिन इकाईयों का अध्ययन करता है उन इकाईयों का चयन प्रतिचयन की किसी वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा न करके सुविधापूर्वक और उद्देश्यपूर्ण रूप से कर लिया जाता है। अतः प्रतिनिधि इकाईयों के चुनाव में निदर्शन पद्धति की उपेक्षा की जाती है।

13.8 सार-संक्षेप

इस इकाई में हमने सबसे पहले वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ समझाते हुए एवं उसकी मान्यताओं की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि यह विधि किसी सामाजिक इकाई के गहन एवं विस्तृत अध्ययन करने तथा उस इकाई के बारे में सम्पूर्ण गुणात्मक आँकड़े एकत्रित करने की महत्वपूर्ण प्रविधि है। इसके पश्चात् वैयक्तिक अध्ययन के प्रकारों की चर्चा की गयी है। वैयक्तिक अध्ययन द्वारा किसी भी संस्था का सम्पूर्ण अध्ययन करने के लिए व्यवस्थित प्रणाली का प्रयोग किया जाता है जिससे संस्था का गहन अध्ययन सम्भव हो सके। अंत में वैयक्तिक अध्ययन के गुण और दोषों की चर्चा से निष्कर्ष निकलता है कि वैयक्तिक अध्ययन के दोषों को दूर कर दिया जाए तो यह सामाजिक अनुसंधान की सर्वोत्तम पद्धति है।

13.9 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति गुणात्मक प्रकृति के तथ्यों का अध्ययन करने की महत्वपूर्ण विधि है। इसके द्वारा किसी व्यक्ति, परिस्थिति अथवा संस्था का प्रत्यक्ष रूप से बहुत सूक्ष्म अवलोकन किया जाता है तथा उससे सम्बन्धित सभी पक्षों का गहन अध्ययन करके निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। अर्थात् सामाजिक अनुसंधान में किसी एकल घटना, समस्या, प्रकरण अथवा विषय का गहन अध्ययन वैयक्तिक अध्ययन होता है। इस अध्ययन प्रविधि के द्वारा एक व्यक्ति, संस्था, व्यवस्था, समुदाय, संगठन, घटना और यहाँ तक कि सम्पूर्ण संस्कृति का अध्ययन हो सकता है। इस विधि में विस्तृत तथ्यों का संकलन करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक, दोनों स्रोतों का प्रयोग किया जाता है।

क्रोमरे (1986) के मतानुसार ''वैयक्तिक अध्ययन में व्यक्तिगत विषयों का अध्ययन सम्मिलित होता है, जो प्रायः अपने प्राकृतिक वातावरण में एक लम्बी समयावधि के लिए किया जाता है।''

2. व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति की मान्यताएं: व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति का प्रयोग सभी परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता क्योंकि व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति की कुछ निश्चित मान्यताएं हैं। इन मान्यताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) व्यवहार में समानता: व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति की पहली मान्यता यह है कि सभी मनुष्यों में स्वाभाविक एकरूपता और समानता विद्यमान है तथापि उनके ऊपरी व्यवहार में कुछ असमानताएं देखी जा सकती हैं। इस पद्धति के अनुसार मानव व्यवहार की मौलिक पद्धतियों में समानता पाई जाती है जिसके कारण ही व्यक्तियों का विशेष परिस्थितियों में व्यवहार भी एक समान होता है। इसी समानता के कारण किसी एक इकाई का सम्पूर्ण अध्ययन करके उससे प्राप्त निष्कर्षो को सभी में लागू किया जाता है।

(ii) सामाजिक घटनाओं में जटिलता: सामाजिक घटनाओं की प्रकृति अत्यन्त जटिल होती है क्योंकि ये अमूर्त होती हैं। इस जटिलता और अमूर्तता के कारण इनका अवलोकन नहीं किया जा सकता। अतः व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति के माध्यम से हम सामाजिक घटनाओं के सम्पर्क में अधिक समय तक रहते हैं और इससे विश्वसनीय सूचनाएं एकत्रित होती हैं।

3. वैयक्तिक अध्ययन के प्रकार: रोबर्ट बर्न्स ने वैयक्तिक अध्ययन छः प्रकार के बताए हैं:

(i) ऐतिहासिक वैयक्तिक अध्ययन: इस अध्ययन से किसी संगठन, संस्था अथवा व्यवस्था के दीर्घकालीन विकास का पता लगता है।

(ii) अवलोकन वैयक्तिक अध्ययन: यह अध्ययन अवलोकन पर केन्द्रित होता है जिसमें किसी घटना, नेता, यूनियन या भीड़ के व्यवहार का अवलोकन किया जाता है।

(iii) मौखिक वैयक्तिक अध्ययन: यह आमतौर पर किसी व्यक्ति के कथन होते हैं जो कि अनुसंधानकर्ता किसी व्यक्ति के गहन साक्षात्कार के माध्यम से एकत्र करता है। इसको उत्तरदाताओं के स्वभाव व सहयोग की निर्भरता के कारण प्रयोग में लाया जाता है।

(iv) स्थितीय वैयक्तिक अध्ययन: इस प्रकार के अध्ययन में विशेष घटनाओं का अध्ययन होता है, घटना से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के विचार लेकर उन सभी विचारों को साथ रखकर घटना की गहनता का अध्ययन किया जाता है जो घटना को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(v) चिकित्सकीय वैयक्तिक अध्ययन: इस उपागम का उद्देश्य किसी विशेष व्यक्ति को गहराई से समझने से होता है। उदाहरण के लिए किसी महिला के उत्पीड़न की समस्या से सम्बन्धित अध्ययन या छात्रों की समस्या का अध्ययन आदि।

(vi) बहुवैयक्तिक अध्ययन: व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति को दो और भागों में विभक्त किया जा सकता है।

4. साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान की एक प्रक्रिया है, जो इस मान्यता पर आधारित होता है कि उत्तरदाताओं का मौखिक व्यवहार ही एक प्रकार से उनका वास्तविक व्यवहार है जिसके माध्यम से उनकी वास्तविक मनोवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। इस विधि के द्वारा अध्ययनकर्ता तथा सूचनादाता के बीच

आमने-सामने की स्थिति उत्पन्न होती है जो परस्पर सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायक होती है। **लिंडसे गार्डनर (1968) के अनुसार** ''साक्षात्कार, साक्षात्कारकर्ता द्वारा अनुसंधान से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने के विशेष उद्देश्य के लिए चलाया जाने वाला दो व्यक्तियों का वार्तालाप होता है।'' **पी० वी० यंग (1960) के अनुसार** ''अनुसंधानकर्ता कल्पनात्मक रूप से सूचनादाता के जीवन में प्रवेश करता है तथा उसके जीवन के भूत, वर्तमान तथा भविष्यकाल की सूचना एकत्र करता है।'' सभी विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत विचारों एवं परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि किसी भी सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में वह अनुसंधान जिनकी प्रकृति वैज्ञानिक होती है, उनके अध्ययन में साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक यंत्र है।

13.10 अभ्यास-प्रश्न

1. वैयक्तिक अध्ययन किसे कहते हैं ? वैयक्तिक अध्ययन के प्रमुख स्रोतों की विवेचना कीजिए।

2. वैयक्तिक अध्ययन की प्रणाली का उल्लेख करते हुए इसकी विशेषताएँ बताइये।

3. वैयक्तिक अध्ययन के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

4. वैयक्तिक अध्ययन के गुणों का वर्णन कीजिए।

5. वैयक्तिक अध्ययन के दोषों का वर्णन कीजिए।

13.11 परिभाषिक शब्दावली

अनुसूचीः यह प्रश्नों की सूची होती है जिसे अनुसंधानकर्ता स्वयं उत्तरदाताओं के पास ले जाकर भरता है।

प्रश्नावलीः प्रश्नों की ऐसी सूची होती है जिसे डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेजा जाता है तथा सूचनादाता इस पर प्रश्नों के उत्तर देकर अनुसन्धानकर्ता को वापस भेज देते हैं।

अवलोकनः अवलोकन तथ्य संकलन की एक विधि है, जिसमें दृष्टि आधारित सामग्री का संग्रह होता है।

13.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. त्रिवेदी व शुक्ला. रिसर्च मैथडोलाॅजी. कालेज बुक डिपो .जयपुर।
2. राय, पारस नाथ. 2004. अनुसंधान परिचय. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल. आागरा.
3. गुडे एंड हाट. 1983. मैथड्स इन सोशियल रिसर्च मैकग्रू हिल इंटरनेशनल आाॅकलैण्ड
4. राम आहूजा. 2005. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान. रावत पब्लिकेशन्स. दिल्ली.
5. Singh, K. (1983**).** Techinques of method of Social Survey Research and Statistics, Prakashan Kendra, Lucknow.
6. Kothari, C.R. (2009). *Research Methodology Methods and Techniques*. 2nd Revised ed., New Delhi: New Age International (P) Limited, Publishers.
7. Young P.V. (1960). Scientific Social Surveys and Research. Asia Publishing House. Bombay.

इकाई-14 तथ्यों का वर्गीकरण व सारणीयन

Classification and Tabulation of Data

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 अध्ययन के उद्देश्य

14.2 तथ्यों का वर्गीकरण - अर्थ एवं परिभाषायें

14.2.1 तथ्य-विश्लेषण से पूर्व की आवश्यकतायें

14.2.2 वर्गीकरण के आधार

14.2.3 वर्गीकरण के प्रकार

14.3 तथ्यों का सारणीयन- अर्थ एवं परिभाषायें

14.4 सारणीयन के प्रकार

14.5 आवृत्ति के आधार पर सारणीयन

14.6 सारणी निर्माण के नियम एवं सावधानियां

14.7 सार-संक्षेप

14.8 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.9 अभ्यास-प्रश्न

14.10 पारिभाषिक शब्दावली

14.11 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान विभिन्न सामाजिक समस्याओं, यथा सामाजिक विकासऔद्यौगीकरण, नगरीकरण, निर्धनता, बेराजेगारी, प्रवास, भ्रष्टाचार, दहेज, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, आदि को लेकर किये जाते हैं। इन समस्याओं के लिए पहले समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनायें बनायी जाती हैं। उनके परीक्षण के बाद विभिन्न अनुसन्धान प्रविधियां जैसे निरीक्षण, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि में से सबसे उपयुक्त प्रविधियों का चयन करके तथ्यों का संकलन किया जाता है। तथ्यों को एकत्रित करके उनको व्यवस्थित करना अनिवार्य होता है ताकि तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष तक पहुंचा जा सके।

वर्गीकरण का उद्देश्य बिखरी हुई सामग्री या तथ्यों को व्यवस्थित कर इसे विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करके अर्थपूर्ण बनाना होता है। इसी प्रकार जब वर्गीकृत तथ्यों को एक तालिका या सारणी के रूप में कुछ कॉलमों तथा पंक्तियों में व्यवस्थित किया जाता है तो उसे सारणीयन कहा जाता है। वर्गीकरण व सारणीयन सामाजिक अनुसन्धान के महत्वपूर्ण अंग हैं।

14.1 अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:

- तथ्यों के वर्गीकरण के अर्थ तथा परिभाषा से परिचित हो सकेंगे।
- वर्गीकरण के आधारों तथा प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- तथ्यों के सारणीयन के अर्थ एवं परिभाषाओं से अवगत हो सकेंगे।
- सारणीयन के नियमों तथा उसके प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- सारणी-निर्माण में अपेक्षित सावधनियों से अवगत हो सकेंगे।

14.2 तथ्यों का वर्गीकरण-अर्थ एवं परिभाषायें

विभिन्न विद्वानों ने वर्गीकरण की परिभाषायें इस प्रकार दी हैं:

मन के अनुसार- वर्गीकरण अनिवार्य रूप से वस्तुओं को समान विशेषताओं के आधार पर एक साथ रखने का एक प्रकार है ताकि उन्हें सरलता से समझा जा सके।

कॉनर के अनुसार- ''वर्गीकरण वस्तुओं को उनकी समानताओं अथवा गुणों के आधार पर समूहों एवं वर्गों में क्रमबद्ध करने की एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विभिन्न व्यक्तियों के समान गुणों को खोजकर एक साथ रखना है।''

14.2.1 तथ्य विश्लेषण से पूर्व की आवश्यकतायें

तथ्यों का विश्लेषण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है परन्तु इसकी सफलता हेतु बहुत आवश्यक हो जाता है कि अनुसन्धानकर्ता के वैयक्तिक गुणों में अन्वेषक या खोजकर्ता के दूरदर्शी गुण निहित हों। उसमें पक्षपात की भावना न हो, इस प्रकार अनुसन्धानकर्ता के वैयक्तिक गुणों पर तथ्य विश्लेषण एवं वर्गीकरण बहुत कुछ निर्भर करता है। अनुसन्धानकर्ता को व्यवस्थित रूप से तथ्यों का विश्लेषण करने से पूर्व कुछ आवश्यक नियमों का पालन करना पड़ता है जो निम्नवत् है:

(1) तथ्यों के विषय में पूर्ण ज्ञान- तथ्यों के व्यवस्थित व सही विश्लेषण के लिये पहली शर्त है कि अनुसन्धानकर्ता को उन तथ्यों का पूर्ण और व्यवस्थित ज्ञान हो जिनका वह विश्लेषण कर रहा है। क्योंकि तथ्य बिखरे हुए और संख्या में अधिक हो सकते हैं जिससे उनका वर्गीकरण करना बड़ा कठिन हो जाता है, इसलिए अध्ययनकर्ता को स्वयं भी विभिन्न तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए।

(2) घटनाओं के प्रति अन्तर्दृष्टि- अध्ययनकर्ता जब बहुत से संकलित तथ्यों का अवलोकन करता है तो उसके सम्मुख अनेक घटनाओं अथवा परिस्थितियों का अवलोकन करने की समस्या आती है। इन घटनाओं और परिस्थितियों के सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्ता की अन्तर्दृष्टि जितनी गहरी व स्पष्ट होगी, वह तथ्यों का विश्लेषण उतने ही वैज्ञानिक रूप में कर पायेगा।

(3) अनुभव तथा बौद्धिक ईमानदारी- अनुसन्धानकर्ता में जब तक व्यक्तिगत अनुभव बौद्धिक ईमानदारी का गुण न हो तो व्यवस्थित रूप से तथ्यों का विश्लेषण नहीं हो पाता। अनुसन्धानकर्ता में बौद्धिक ईमानदारी का गुण अवश्य होना चाहिए जिससे कि व्यक्तिगत अभिनति से बचा जा सके।

(4) आलोचनात्मक कल्पना शक्ति- अनुसन्धानकर्ता का कार्य तथ्यों का वर्गीकरण करना अथवा उनकी विवेचना करना मात्र ही नहीं होता, इसके अन्तर्गत विभिन्न तथ्यों के बीच पाये जाने वाले सह-सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए एक आलोचनात्मक कल्पना शक्ति की आवश्यकता होती है।

(5) वैयक्तिक पक्षपात से स्वतन्त्र- तथ्यों के विश्लेषण के लिए यह भी आवश्यक है कि अनुसन्धाकर्ता संकलित तथ्यों के अनुरूप ही विषय को वस्तुनिष्ठ रूप से प्रस्तुत करे। इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी स्थिति में तथ्यों के विश्लेषण में वैयक्तिक पक्षपात अथवा अभिनति का समावेश नहीं होना चाहिए।

स्वप्रगति परीक्षण

1. तथ्य विश्लेषण से पूर्व की किन्हीं दो आवश्यकताओं को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

14.2.2 तथ्य-वर्गीकरण के आधार

एक सफल वर्गीकरण किस प्रकार किया जाये यह अनुसन्धान में एक आवश्यक कार्य हो जाता है। एकत्रित सामग्री को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाये जाता कि वर्गीकरण वैज्ञानिक हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि तथ्यों की प्रकृति तथा प्रकार का पता लगाया जाये तथ्यों के वर्गीकरण के लिए ऐसे आधारों का पता लगाया जाये जिसमें एक अच्छे वर्गीकरण की सभी विशेषतायें सम्मिलित हो सकें। वर्गीकरण के आवश्यक आधारों का वर्णन इस प्रकार है:

(1) गुणात्मक आधार - अधिकांशतः सामाजिक अनुसन्धान में गुणात्मक आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। वर्गीकरण का आधार कोई गुण माना जाता है तथा इसी गुण के आधार पर तथ्यों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करते हैं। उदाहरण के लिए जाति, धर्म, वैवाहिक स्थिति, शैक्षणिक योग्यता, व्यवसाय इत्यादि विशेषताओं के आधार पर किया गया वर्गीकरण गुणात्मक वर्गीकरण कहा जायेगा।

(2) गणनात्मक आधार- यदि एकत्रित सामग्री ऐसी है कि उसे गुणों के आधार पर व्यक्त करने की अपेक्षा संख्याओं में व्यक्त करना सरल है तो गणनात्मक आधार का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के लिए, ऊँचाई, वजन, आय, उत्पादन इत्यादि के आधार पर किया गया वर्गीकरण गणनात्मक वर्गीकरण कहा जाता है।

(3) सामयिक आधार- सामग्री का वर्गीकरण विभिन्न समयों को सामने रखकर भी किया जा सकता है। ऐसे अनुसन्धानों में जोकि विकास सम्बन्धी अथवा पैनल अध्ययन द्वारा किये गये हैं, समय एक महत्वपूर्ण आधार हो सकता है। उदाहरण स्वरूप, हम प्रत्येक दस वर्ष के बाद की जाने वाली जनगणना जिसमें विभिन्न वर्षों में किसी देश व क्षेत्र विशेष की जनसंख्या वृद्धि, वृद्धि दर अथवा उत्पादन, प्रगति इत्यादि को बताना सामयिक आधार पर वर्गीकरण करना ही है।

(4) भौगोलिक आधार- वर्गीकरण में उक्त तीनों के अतिरिक्त भौगोलिक आधार भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विभिन्न स्थानों का भौगोलिक आधार पर भी वर्गीकरण किया जाता है। किसी एक प्रान्त व विभिन्न प्रान्तों के जिलों में जनसंख्या का वर्गीकरण भौगोलिक वर्गीकरण ही है। इस प्रकार समय तथा स्थान वर्गीकरण के प्रमुख आधार हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

2. तथ्य वर्गीकरण के किन्हीं दो आधारों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

14.2.3 वर्गीकरण के प्रकार

गुणात्मक वर्गीकरण- तथ्यों का वर्गीकरण जब विभिन्न गुणों या विशेषताओं के आधार पर किया जाता है तो इस प्रकार का वर्गीकरण गुणात्मक वर्गीकरण कहलाता है। इसमें तथ्यों को किसी गुण विशेष के होने पर या न होने पर श्रेणियों में बांटते हैं। उदाहरण के लिए वैवाहिक स्थिति के आधार पर हमें 100 व्यक्तियों का वर्गीकरण करना है तो वह इस प्रकार होगा:

विवाहित	**52**
अविवाहित	23
विधवा	11
विधुर	4
तलाकशुदा	10
कुल योग	100

गणनात्मक वर्गीकरण- यह वह वर्गीकरण है जिसमें सामग्री को अंकों अर्थात् संख्याओं में प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरण के लिए, आय, व्यय, लम्बाई के आधार पर वर्गीकरण करना ही गणनात्मक वर्गीकरण है। गणनात्मक वर्गीकरण के निम्न दो प्रकार हैं-

(1) खण्डित श्रेणी के अनुसार वर्गीकरण- इस प्रकार के वर्गीकरण को असतत् या विछिन्न वर्गीकरण भी कहा जाता है। इसमें मूल्यों की आवृत्ति जितनी बार होती है उसे उसी संख्या के सामने लिखकर एक आवृत्ति सारणी के रूप में दर्शाया जाता है।

उदाहरणार्थ- यदि किसी गांव में 20 परिवार हैं, 20 परिवारों में प्रति परिवार बच्चों की संख्या 5, 3, 4, 2, 6, 7, 2, 1, 8, 3, 1, 5, 4, 5, 3, 4, 1, 5, 4 और 6 है तो खण्डित श्रेणियों के अनुसार आवृत्ति विवरण के आधार पर इन 20 परिवारों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है-

बच्चों की संख्या (प्रति परिवार)	परिवारों की संख्या (आवृत्ति)
1	3
2	2
3	3
4	4
5	4
6	2
7	1
8	1
कुल योग	20

(2) अखण्डित श्रेणी या वर्गान्तर के अनुसार वर्गीकरण- इस प्रकार के वर्गीकरण को सतत् या अविछिन्न वर्गीकरण भी कहा जाता है तथा प्रयोग सामग्री की संख्या अधिक होने के कारण सामग्री को अलग-अलग प्रस्तुत न करके वर्गों में प्रस्तुत किया जाता है।

प्राप्तांक (100 अंकों में)	आवृत्ति
20 से कम	200
20-30	150
30-40	100
40-50	90

50-60	60
60-70	50
70 से आधिक	50
कुल योग	**700**

14.3 तथ्यों का सारणीयन- अर्थ एवं परिभाषा

अनुसन्धान में तथ्यों या सामग्री के विश्लेषण के वर्गीकरण के बाद अगला चरण सारणीयन का है। तथ्य जटिल और बिखरे हुए हो सकते हैं, यदि इन्हें व्यवस्थित कर स्पष्ट न किया जाये तो इन्हें समझना सरल न होगा। इसलिए अनुसन्धानकर्ता तथ्यों का वर्गीकरण करने के पश्चात् सारणीयन करता है जिससे यह सरल व बोधगम्य हो सकें। सारणीयन में सूचनाओं को अनेक स्तम्भों तथा पंक्तियों में व्यवस्थित करके उन्हें क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार सारणीयन का उद्देश्य तथ्यों को सुव्यवस्थित रूप देकर स्पष्ट करना है। प्रमुख विद्वानों ने सारणीयन को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है:

कॉनर के शब्दों में, 'सारणीयन किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से संख्यात्मक तथ्यों को क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की एक विधि है।'

एलहांस के शब्दों में, 'विस्तृत अर्थों में सारणीयन तथ्यों की कॉलमों एवं कतारों में क्रमबद्ध व्यवस्था है।'

स्वप्रगति परीक्षण

3. तथ्यों के सारणीयन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसे परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

14.4 सारणीयन के प्रकार

सारणियों के अनेक प्रकार हैं। सारणियों के विभिन्न प्रकारों को उद्देश्य तथा आकार के आधार पर निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:

1. सामान्य उद्देश्य सारणी- सामान्य उद्देश्य का कोई विशिष्ट उद्देश्य नहीं होता है। इस प्रकार की सारणी में तथ्यों को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत करके ज्यों का त्यों केवल सूचना प्रदान करने के उद्देश्य से व्यवस्थित करके रख दिया जाता है। इसी प्रकार किसी विषय के संदर्भ को ढूंढ़ने में आसानी हो, इस उद्देश्य से भी इस प्रकार की सारणियों को किसी प्रकाशित रिपोर्ट के अन्त में लगा दिया जाता है।

2. विशिष्ट उद्देश्य या संक्षिप्त सारणी- क्रॉक्सटन तथा काउडेन के अनुसार, 'संक्षिप्त सारणी जो प्रायः आकार में छोटी होती है, किसी एक निष्कर्ष या कुछ निकट सम्बन्ध वाले निष्कर्षों को अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से रखने के लिए तैयार की जाती है। इस प्रकार यदि देखा जाये तो संक्षिप्त सारणी सामान्य उद्देश्य सारणी का एक छोटा रूप होता है जिसे कुछ तथ्यों की विशेषताओं को विशिष्ट रूप से प्रदर्शित करने के उद्देश्य से तैयार किया जाता है।

3. सरल सरणी- सरल सारणी एकगुणीय सारणी होती है, क्योंकि इस प्रकार की सारणी में तथ्यों के केवल एक लक्षण या गुण को ही प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार की सारणी एक या अधिक प्रश्नों का सरलता से उत्तर दे सकती है जो एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं वरन् स्वतन्त्र होते हैं।

उदाहरण के लिए, निम्नलिखित एकगुणीय सारणी 100 छात्रों द्वारा केवल समाजशास्त्र में प्राप्त अंकों का प्रदर्शन करती है:

समाजशास्त्र एम0ए0 में 100 छात्रों का परिणाम (अंक सौ में से)

प्राप्तांक	विद्यार्थियों की संख्या
30-40	15
40-50	25
50-60	29
60-70	21
70-80	10

योग	100

उपरोक्त सारणी से 100 छात्रों के केवल एक गुण का प्रदर्शन होता है, अर्थात् समाजशास्त्र में उन्हें कितने अंक मिले हैं।

4. जटिल सारणी- जटिल सारणी में तथ्यों के विषय में एक से अधिक लक्षणों पर प्रकाश डाला जाता है। इस प्रकार की सारणी जटिल केवल इसी अर्थ में है कि तथ्यों से सम्बन्धित कई गुणों को इसमें एक साथ प्रदर्शित किया जाता है। क्योंकि यह कई गुणों को प्रदर्शित करती है, इस आधार पर जटिल सारणी को द्विगुणीय सारणी, त्रिगुणीय सारणी एवं बहुगुणीय सारणी में भी विभाजित किया जाता है।

14.5 आवृत्ति के आधार पर सारणीयन

आवृत्ति के आधार पर भी सारणी दो प्रकार की होती हैं जो निम्नवत् हैं:

(1) आवृत्ति सारणी- जब खण्डित श्रेणियों या अखण्डित श्रेणियों को सारणी में प्रदर्शित किया जाता है तो उसे आवृत्ति सारणी कहते हैं। निम्नलिखित उदाहरण से आवृत्ति सारणी का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा:

कानपुर के दयानन्द कॉलेज के 50 छात्रों के समाजशास्त्र में प्राप्तांक

प्राप्तांक	आवृत्ति
0-10	3
10-20	5
20-30	10
30-40	9
40-50	7
50-60	6

60-70	4
70-80	3
80-90	2
90-100	1
योग	50

उपर्युक्त सारणी में अखंण्डित श्रेणियों के आधार पर सारणीयन किया गया है। इसी प्रकार खण्डित श्रेणियों को लेकर भी आवृत्ति सारणी का निर्माण किया जा सकता है:

40 परिवारों में बच्चों की संख्या

बच्चों की संख्या	**आवृत्ति**
1	6
2	8
3	7
4	9
5	6
6	2
7	2
योग	40

(2) संचयी आवृत्ति सारणी- इसमें प्रत्येक समूह या वर्ग की आवृत्ति को अलग-अलग प्रदर्शित नहीं करते बल्कि पिछली आवृत्ति में जोड़कर प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिए, कानपुर के दयानन्द कॉलेज के 50 छात्रों के समाजशास्त्र में प्राप्तांक को प्रदर्शित करते हुए सारणी इस प्रकार की होगी:

प्राप्तांक	संचयी आवृत्ति
10 से कम	3
20	8
30	18
40	27
50	34
60	40
77	44
80	47
90	49
100	50
योग	320

14.6 सारणी निर्माण के नियम तथा सावधानियां

सारणी निर्माण में कुछ नियमों व सावधानियों का अनुपालन करना होता है जिसका पालन यदि न किया जाये तो सारणी का निर्माण नहीं हो सकता है। इसलिए सारणी के निर्माण सम्बन्धी नियमों एवं सावधानियों को अपनाना अनिवार्य होता है। सारणी निर्माण के नियम इस प्रकार है:

(1) शीर्षक- प्रत्येक सारणी का एक उपयुक्त शीर्षक होता है जोकि इस सारणी के तथ्यों व सामग्री के गुणों को स्पष्ट करता है और उनका वर्णन करता है। शीर्षक छोटा, स्पष्ट तथा आकर्षक होना चाहिए।

(2) स्तम्भ या कॉलम- सारणी का निर्माण करते समय स्तम्भों के आकार का विशेष ध्यान रखना चाहिए अथवा पृष्ठ के स्थान को ध्यान में रखते हुए स्तम्भों की संख्या एवं आकार का निर्धारण किया जाना चाहिए। स्तम्भों में लिखी जाने वाली संख्या कागज के आकार पर ही निश्चित करनी चाहिए। प्रत्येक सारणी में स्तम्भों का योग अन्तिम पंक्ति में दर्शाया जाना चाहिए।

(3) अनुशीर्षक- प्रत्येक स्तम्भ का एक अनुशीर्षक होता है जो तथ्यों की प्रकृति या गुण को स्पष्ट करता है। अनुशीर्षक स्पष्ट होना चाहिए तथा इसे सुन्दर लेख में लिखा जाना चाहिए। अगर अनुशीर्षक के नीचे लिखी जाने वाली संख्यायें बड़ी हों तो हजारों में संख्याओं को अनुशीर्षक के नीचे लिखा जा सकता है।

(4) कतारें या पंक्तियां- क्षैतिज रेखाओं द्वारा बने खानों को जोकि लम्बवत् रेखाओं को काटते हुए बनाये जाते हैं, कतारें या पंक्तियां कहा जाता है। इन पंक्तियों में सूचना का आधार सामग्री का कोई भी गुण हो सकता है। वर्णनात्मक, भौगोलिक, सामाजिक लक्षण या संख्यात्मक महत्व के आधार पर पंक्तियां बनाई जा सकती हैं।

(5) स्तम्भों का क्रम- स्तम्भों का क्रम सोच-विचार कर निर्धारित करना चाहिए। पहला स्तम्भ बड़ा होता है क्योंकि इसमें श्रेणिउयों का विवरण होता है। साथ ही, सारणी को सामान्यतः बायीं से दायीं ओर पढ़ा जाता है। इसलिए सर्वाधिक महत्व की सूचनायें बायीं ओर के स्तम्भों में शुरू की जानी चाहिए।

(6) टिप्पणियां- कई बार सारणी में दिये गये तथ्यों के बारे में विशेष सूचना देनी पड़ती है जिसका प्रदर्शन सारणी में संभव नहीं हो पाता। इस प्रकार की परिस्थितियों में सारणी में दिखाये गये आंकड़ों पर कोई संकेत जैसे 'ए '' इत्यादि देकर नीचे इसी प्रकार का संकेत बनाकर टिप्पणी लिखी जा सकती है।

स्वप्रगति परीक्षण

4. सारणीय-निर्माण के किन्हीं तीन नियमों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

14.7 सार-संक्षेप

तथ्यों का वर्गीकरण और सारणीयन दोनों ही अनुसन्धान में बड़े महत्वपूर्ण हैं। बिना इनकी सहायता के अनुसन्धान नहीं हो सकता। क्योंकि बिखरे हुए अनेकों तथ्यों व सामग्री का व्यवस्थित और गुणात्मक स्पष्ट

वर्णन तभी किया जा सकता है जब अनुसन्धनकर्ता द्वारा सही वर्गीकरण व सारणीयन किया जाये। इसके बाद ही अनुसन्धान से सही निष्कर्ष निकाले जाते हैं व अनुसन्धान आगे बढ़ता है।

14.8 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.तथ्य विश्लेषण से पूर्व की आवश्यकतायें: तथ्यों का विश्लेषण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है परन्तु इसकी सफलता हेतु बहुत आवश्यक हो जाता है कि अनुसन्धानकर्ता के वैयक्तिक गुणों में अन्वेषक या खोजकर्ता के दूरदर्शी गुण निहित हों। उसमें पक्षपात की भावना न हो, इस प्रकार अनुसन्धानकर्ता के वैयक्तिक गुणों पर तथ्य विश्लेषण एवं वर्गीकरण बहुत कुछ निर्भर करता है।

अनुसन्धानकर्ता को व्यवस्थित रूप से तथ्यों का विश्लेषण करने से पूर्व कुछ आवश्यक नियमों का पालन करना पड़ता है जो निम्नवत् है:

(i) तथ्यों के विषय में पूर्ण ज्ञान- तथ्यों के व्यवस्थित व सही विश्लेषण के लिये पहली शर्त है कि अनुसन्धानकर्ता को उन तथ्यों का पूर्ण और व्यवस्थित ज्ञान हो जिनका वह विश्लेषण कर रहा है। क्योंकि तथ्य बिखरे हुए और संख्या में अधिक हो सकते हैं जिससे उनका वर्गीकरण करना बड़ा कठिन हो जाता है, इसलिए अध्ययनकर्ता को स्वयं भी विभिन्न तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए।

(ii) घटनाओं के प्रति अन्तर्दृष्टि- अध्ययनकर्ता जब बहुत से संकलित तथ्यों का अवलोकन करता है तो उसके सम्मुख अनेक घटनाओं अथवा परिस्थितियों का अवलोकन करने की समस्या आती है। इन घटनाओं और परिस्थितियों के सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्ता की अन्तर्दृष्टि जितनी गहरी व स्पष्ट होगी, वह तथ्यों का विश्लेषण उतने ही वैज्ञानिक रूप में कर पायेगा।

2. तथ्य-वर्गीकरण के आधार: एक सफल वर्गीकरण किस प्रकार किया जाये यह अनुसन्धान में एक आवश्यक कार्य हो जाता है। एकत्रित सामग्री को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाये जाता कि वर्गीकरण वैज्ञानिक हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि तथ्यों की प्रकृति तथा प्रकार का पता लगाया जाये तथ्यों के वर्गीकरण के लिए ऐसे आधारों का पता लगाया जाये जिसमें एक अच्छे वर्गीकरण की सभी विशेषतायें सम्मिलित हो सकें। वर्गीकरण के आवश्यक आधारों का वर्णन इस प्रकार है:

(i) गुणात्मक आधार - अधिकांशतः सामाजिक अनुसन्धान में गुणात्मक आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। वर्गीकरण का आधार कोई गुण माना जाता है तथा इसी गुण के आधार पर तथ्यों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करते हैं। उदाहरण के लिए जाति, धर्म, वैवाहिक स्थिति, शैक्षणिक योग्यता, व्यवसाय इत्यादि विशेषताओं के आधार पर किया गया वर्गीकरण गुणात्मक वर्गीकरण कहा जायेगा।

(ii) गणनात्मक आधार- यदि एकत्रित सामग्री ऐसी है कि उसे गुणों के आधार पर व्यक्त करने की अपेक्षा संख्याओं में व्यक्त करना सरल है तो गणनात्मक आधार का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के लिए, ऊँचाई, वजन, आय, उत्पादन इत्यादि के आधार पर किया गया वर्गीकरण गणनात्मक वर्गीकरण कहा जाता है।

3. तथ्यों का सारणीयन- अनुसन्धान में तथ्यों या सामग्री के विश्लेषण के वर्गीकरण के बाद अगला चरण सारणीयन का है। तथ्य जटिल और बिखरे हुए हो सकते हैं, यदि इन्हें व्यवस्थित कर स्पष्ट न किया जाये तो इन्हें समझना सरल न होगा। इसलिए अनुसन्धानकर्ता तथ्यों का वर्गीकरण करने के पश्चात् सारणीयन करता है जिससे यह सरल व बोधगम्य हो सकें। सारणीयन में सूचनाओं को अनेक स्तम्भों तथा पंक्तियों में व्यवस्थित करके उन्हें क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार सारणीयन का उद्देश्य तथ्यों को सुव्यवस्थित रूप देकर स्पष्ट करना है। प्रमुख विद्वानों ने सारणीयन को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है:

कॉनर के शब्दों में, 'सारणीयन किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से संख्यात्मक तथ्यों को क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की एक विधि है।'

एलहांस के शब्दों में, 'विस्तृत अर्थों में सारणीयन तथ्यों की कॉलमों एवं कतारों में क्रमबद्ध व्यवस्था है।'

4.सारणी निर्माण के नियम तथा सावधानियां: सारणी निर्माण में कुछ नियमों व सावधानियों का अनुपालन करना होता है जिसका पालन यदि न किया जाये तो सारणी का निर्माण नहीं हो सकता है। इसलिए सारणी के निर्माण सम्बन्धी नियमों एवं सावधानियों को अपनाना अनिवार्य होता है। सारणी निर्माण के नियम इस प्रकार है:

(i)शीर्षक- प्रत्येक सारणी का एक उपयुक्त शीर्षक होता है जोकि इस सारणी के तथ्यों व सामग्री के गुणों को स्पष्ट करता है और उनका वर्णन करता है। शीर्षक छोटा, स्पष्ट तथा आकर्षक होना चाहिए।

(ii)स्तम्भ या कॉलम- सारणी का निर्माण करते समय स्तम्भों के आकार का विशेष ध्यान रखना चाहिए अथवा पृष्ठ के स्थान को ध्यान में रखते हुए स्तम्भों की संख्या एवं आकार का निर्धारण किया जाना चाहिए। स्तम्भों में लिखी जाने वाली संख्या कागज के आकार पर ही निश्चित करनी चाहिए। प्रत्येक सारणी में स्तम्भों का योग अन्तिम पंक्ति में दर्शाया जाना चाहिए।

(iii)अनुशीर्षक- प्रत्येक स्तम्भ का एक अनुशीर्षक होता है जो तथ्यों की प्रकृति या गुण को स्पष्ट करता है। अनुशीर्षक स्पष्ट होना चाहिए तथा इसे सुन्दर लेख में लिखा जाना चाहिए। अगर अनुशीर्षक के नीचे लिखी जाने वाली संख्यायें बड़ी हों तो हजारों (000) में संख्याओं को अनुशीर्षक के नीचे लिखा जा सकता है।

14.9 अभ्यास-प्रश्न

1. तथ्यों के वर्गीकरण को परिभाषित करते हुए इसका अर्थ बताइए।

2. तथ्यों के वर्गीकरण के प्रकार बताइये।

3. सारणीयन को परिभाषित करते हुए इसका आशय स्पष्ट कीजिए।

4. सारणी के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

5. सारणीयन के नियम अथवा सावधानियों का वर्णन कीजिए।

14.10 पारिभाषिक शब्दावली

वर्गीकरण- वर्गीकरण से आशय किसी तथ्य व सामग्री गुणों व विशेषताओं के आधार पर किए गए वर्गीकरण से है।

सारणीयन- बिखरे हुए तथ्यों व सामग्री को व्यवस्थित, क्रमबद्ध ढंग से कॉलमों तथा पंक्तियों में सही प्रकार से रखना ही सारणीयन है।

14.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. Connor, L.R. Statistics in Theory and Practice.

2. Elhance, D.N. Fundamentals of Statistics

3. Agarwal, G.K., Pandey, S.S.. Social Research Method, SBPD Publication.

4. Baghel, D.S. Research Methodology, S.B. Publication Pvt. Ltd.

5.Kothari, C.R. (2009). Research Methodology, New Age, International Publication.

इकाई- 15 **सांख्यिकी**

Statistics

इकाई की रूपरेखा

15.0 अध्ययन के उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15..2 सांख्यिकी का अर्थ तथा परिभाषा

15.2.1 सांख्यिकी की विशेषताएं

15.3 सांख्यिकी के प्रकार

15.4 सांख्यिकी की श्रेणियां

15.5 सांख्यिकी की उपयोगिता एवं महत्व

15.6 सांख्यिकी की सीमाएं

15.7 सार-संक्षेप

15.8 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

15.9 अभ्यास-प्रश्न

15.10 परिभाषिक शब्दावली

15.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.0 प्रस्तावना

वर्तमान में समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। हमें अपने दैनिक जीवन में तरह-तरह के संख्यात्मक आंकड़े देखने को मिलते हैं। इन आंकड़ों का संबंध जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से होता है। आज हम अनेक गंभीर समस्याओं जैसे मूल्यवृद्धि, बढ़ती जनसंख्या, साक्षरता, जनस्वास्थ्य, कृषि, बेरोजगारी, निर्धनता आदि के विश्लेषण में सांख्यिकी का अधिकाधिक प्रयोग

कर रहे हैं, ताकि इन समस्याओं को हल करने के उपाय ढूढ़े जा सकें। अनुसंधान कार्य में प्रायः बहुत से आंकड़ों को एकत्र किया जाता है। यदि इनको ज्यों का त्यों ही प्रस्तुत कर दिया जाय तो वह आंकड़ों के समूह के अतिरिक्त और कोई अर्थ नही रखेगा। अतः यह आवश्यक है कि आंकड़ों को व्यवस्थित करके उनका अध्ययन किया जाय और उनसे उपयोगी सूचना प्राप्त की जाये। यही सांख्यिकी का मूल उद्देश्य है।

15.1 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा(

- सांख्यिकी की परिभाषा देना,
- सांख्यिकी की विशेषताओं की चर्चा करना,
- सांख्यिकी के प्रकारों व श्रेणियों को बताना,
- सांख्यिकी की उपयोगिता को बताना,
- सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं की बेहतर समझ के लिए सांख्यिकी के प्रयोगों के बारे में सीखना,
- सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी का ज्ञान कैसे सहायक हो सकता है, यह समझाना।

15.2 सांख्यिकी का अर्थ तथा परिभाषा

शाब्दिक रूप में सांख्यिकी शब्द अंग्रेजी के शब्द (Statistics) का हिन्दी रूपान्तर है। कुछ विद्वान इसे लैटिन भाषा के शब्द स्टेटस (Status) तथा जर्मन भाषा के शब्द statistik से भी जोड़ते हैं जिसका अर्थ राज्य है। इसका अर्थ प्राचीन काल में राजनीतिक रूप से राज्य व्यवस्था के लिए किया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस विषय की उत्पत्ति राज्य विज्ञान के रूप में हुई। शासन को भली प्रकार से चलाने के लिए राजा आंकड़े एकत्र करवाते थे| जैसे सेना की संख्या, रसद की मात्रा, कर्मचारियों का वेतन, भूमि कर आदि। आंकड़ों की सहायता से ही राज्य के आय-व्यय का सही अनुमान लगाया जाता था। राजाओं की

नीति बहुत आगे तक आंकड़ों पर निर्भर करती थी। अतः मूल रूप से सांख्यिकी में राज्य के लिए उपयोगी विभिन्न पक्षों पर संख्यात्मक आंकड़ों का केवल संग्रह होता था।

सांख्यिकी का शाब्दिक अर्थ है संख्या से संबंधित शास्त्र। इस प्रकार विषय के रूप में सांख्यिकी ज्ञान की वह शाखा है जिसका संबंध संख्याओं या संख्यात्मक आंकड़ों से हो। सांख्यिकी के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय जर्मन विद्वान गॉटफ्रायड एकेनवाल को है। इसी कारण एकेनवेल को सांख्यिकी का जनक कहा जाता है। वर्तमान युग में सांख्यिकी को विकसित करने में कार्ल पियर्सन का योगदान सबसे अधिक है।

सांख्यिकी शब्द का प्रयोग दो भिन्न-भिन्न अर्थो में किया जाता है:

i) बहुवचन

ii) एक वचन

बहुवचन में इसका अभिप्राय आँकड़ों या समंकों से होता हैऋ जैसे अपराध, आयात-निर्यात, राष्ट्रीय आय जबकि एक वचन के रूप में सांख्यिकी का अर्थ सांख्यिकी विज्ञान से होता है अर्थात किसी विशेष विधि के द्वारा आंकड़ों के संग्रह, विश्लेषण और विवेचन से होता है।

सांख्यिकी का अर्थ इस प्रकार दो रूपों में प्रस्तुत किया गया:

(1) एक वचन के रूप में सांख्यिकी का अर्थ 'सांख्यिकी विज्ञान' के रूप में है।

(2) बहुवचन के रूप में सांख्यिकी का अर्थ आंकड़ों या समंकों से होता है।

सांख्यिकी की परिभाषाएँ

बाउले के अनुसार "सांख्यिकी किसी अनुसंधान के किसी विभाग में तथ्यों का संख्या या समंक के रूप में प्रस्तुतीकरण है, जिन्हें एक दूसरे से सम्बन्धित रूप में प्रस्तुत किया जाता है।''

कॉनर के अनुसार "सांख्यिकी किसी प्राकृतिक अथवा सामाजिक समस्या से सम्बन्धित माप की गणना या अनुमान का क्रमब) एवं व्यवस्थित ढंग है जिससे कि अन्तसम्बन्धों का प्रदर्शन किया जा सके।"

वालिस तथा रॉबर्ट्स "सांख्यिकी के परिमाणात्मक पहलुओं से संख्यात्मक विवरण प्राप्त होता है जो मदों की गिनती या माप के रूप में व्यक्त होते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सांख्यिकी वह प्रविधि या कार्य प)ति है जिसको संख्यात्मक तथ्यों के संकलन, प्रस्तुतीकरण तथा विश्लेषण करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। सांख्यिकी द्वारा ऐसे परिणाम प्राप्त होते हैं जिनसे विभिन्न दशाओं के बीच कार्य और कारण के सम्बन्ध का स्पष्ट करके एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके।

स्वप्रगति परीक्षण

1. सांख्यिकी का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....

2. सांख्यिकी की परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।

.....
.....
.....
.....

15.2.1 सांख्यिकी की विशेषताएं

समाजशास्त्र में सांख्यिकी की उपयोगिता निम्नलिखित तथ्यों के द्वारा स्पष्ट की जा सकती है:

(1) तथ्यों का समूहीकरण- तथ्यों के किसी समूह अथवा उस पर आधारित निष्कर्ष को सांख्यिकी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, किसी एक व्यक्ति की मासिक आय सांख्यिकी नहीं है अपितु बहुत से लोगों की मासिक आय से प्राप्त औसत आय को सांख्यिकी आँकड़ा कहा जाता है।

(2) तथ्यों का संख्यात्मक प्रस्तुतीकरण- सांख्यिकी का उपयोग किसी तथ्य के गुणात्मक महत्व अर्थात् अच्छा, बुरा, उचित अथवा अनुचित को व्यक्त नहीं करता है। इसके विपरीत प्रत्येक निष्कर्ष को प्रतिशत, अनुपात, औसत अथवा विचलन के रूप में संख्या के द्वारा व्यक्त किया जाता है। वास्तविक अर्थों में सांख्यिकी संख्यात्मक आँकड़ों का समूह होता है। किसी उद्योग क्षेत्र के प्रबन्धक का वेतन श्रमिकों से ज्यादा होता है, इस तथ्य द्वारा सांख्यिकी की प्रकृति प्रदर्शित नहीं होती है, जबकि विभिन्न श्रेणियों के कार्मिकों की औसत मासिक आय की परस्पर तुलना तथ्यों को सांख्यिकी के रूप में प्रस्तुत करेगी।

(3) पूर्व निर्धारित उद्देश्य- विशेषतः सांख्यिकी के अन्तर्गत संबंधित आँकड़ों या समंकों का संकलन एक पूर्व निश्चित उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर किया जाता है। सांख्यिकीय समंक यत्र-तत्र अव्यवस्थित नहीं होते वरन् यह अति व्यवस्थित एवं योजनाब) रूप में होते हैं। किसी पूर्व निर्धारित उद्देश्य की अनुपस्थिति में प्राप्त किये जाने वाले तथ्यों को संख्या कहा जा सकता है, परन्तु वह आँकड़ों की श्रेणी में नहीं आते हैं। जैसे किसी औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया जाना है तो इसका उद्देश्य पूर्व में ही निर्धारित किया जाता है कि तथ्यों का संग्रहीकरण किस लक्ष्य हेतु किया जा रहा है। इस लक्ष्य के लिए कार्य के घण्टे, दैनिक मजदूरी , स्वास्थ्य दशाएं, परिवार का आकार, शैक्षणिक स्तर आदि तथ्य एकत्र किये जा सकते हैं।

(4) तुलनात्मक आधार- सांख्यिकी का संबंध उन आँकड़ों से भी होता है जो एक दूसरे के साथ तुलना योग्य होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन के लिए तुलना की श्रेणियों में सजातीय एकरूपता का होना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए, यदि व्यक्तियों की आय की तुलना वृक्षारोपण के आँकड़ों से की जायेगी तो समरूपता न होने का कारण उन्हें सांख्यिकी के अर्न्तगत नहीं रखा जा सकता है। उक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि आँकड़ों के केवल उन समूहों को सांख्सिकी कहा जा सकता है जो परस्पर तुलना योग्य हों।

(5) आँकड़ों का विशुद्ध रूप- आँकड़ों में पर्याप्त शु)ता की उपस्थिति सांख्यिकी की एक विशेष आवश्यकता होती है। इसका तात्पर्य यह है कि अध्ययन विषय की प्रकृति तथा अनुसंधान का उद्देश्य विशु) होना चाहिए। आँकड़ों की शुद्धता का संबंध विषय की प्रकृति एवं विशिष्ट परिस्थिति से होता है। इस परिशुद्धता का निर्धारण संमकों की मात्रा अथवा संख्या से किया जाता है जिसके आधार पर एक उपयोगी निष्कर्ष निरूपित किया जा सकता है।

(6) आँकड़ों का व्यवस्थित एकत्रीकरण- सांख्यिकी की इस विशेषता के अन्तर्गत तथ्यों का संकलन योजनाब) तरीके से किया जाता है क्योंकि अव्यवस्थित आँकड़े किसी भी निष्कर्ष को वस्तुनिष्ठतापूर्वक निरूपित नहीं कर सकते हैं।

(7) विभिन्न दशाओं से प्रभावित - यह सर्वविदित है कि विज्ञान होने के कारण सांख्यिकी से संबंधित आँकड़े अनेक कारणों अथवा कारकों से प्रभावित होते हैं। सांख्यिकी का संबंध किसी एक पक्ष मात्र के

विश्लेषण से ही नहीं होता अपितु उन सभी कारकों के आकलन अथवा विवेचन से भी होता है जो किसी विशेष दशा में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं, साथ ही घटनाओं के मध्य परस्पर सह-संबंध को व्यक्त करते हैं।

(8) संगणना व निदर्शन पर आधारित होना- सांख्यिकी के अर्न्तगत निहित आँकड़ों का संकलन विभिन्न प)तियों एवं प्रविधियों पर आधारित होता है। उद्देश्यपूर्ण विधि से संकलित संगणना व निदर्शन आधारित आँकड़े सांख्यिकी की विशेषता को स्पष्ट करते हैं। सीमित अनुसंधान क्षेत्र में संमकों का एकत्रीकरण संगणना विधि, तथा विस्तृत अनुसंधान क्षेत्र में आँकड़ों का संकलन निदर्शन अर्थात् संबंधित पूर्ण इकाईयों में से कुछ प्रतिनिधि इकाईयों का चयन करके किया जाता है।

(9) सामान्य प्रवृत्तियों का अध्ययन- विशेष रूप से सांख्यिकी एक ऐसा विज्ञान है जो आँकड़ों के आधार पर किसी विषय से संबंधित सामान्य प्रवृत्तियों को स्पष्ट करता है। सांख्यिकी की आधारभूत मान्यता यह है कि कतिपय संख्याओं के आधार पर निरूपित निष्कर्ष दूसरी संख्याओं पर लागू होता है। जैसे- यदि किसी विशेष समाज में कार्यदशाओं, स्वास्थ्य- स्तर, मासिक आय, जन्म दर, मृत्यु दर आदि के आँकड़े एकत्रित कर लिये जाएँ तो उनके आधार पर उसी प्रकार के अन्य समाजों के लिए भी जनसंख्या संबंधी सामान्य प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है।

डी0 एन0 एलहान्स के शब्दों में, ''सांख्यिकी आँकड़ों के रूप में संख्यात्मक विवरणों के वह तथ्य हैं जो विश्लेषण एवं व्याख्या के योग्य होते हैं।'' उपरोक्तानुसार सांख्यिकी वह विषय है जिसके द्वारा किसी अनुसंधान में आँकड़ों का संग्रह, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण और विवेचन करके प्रक्रियाएं निष्पादित की जाती हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

3. सांख्यिकी की किन्ही तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

15.3 सांख्यिकी के प्रकार

प्रक्रिया की आधारभूत मान्यताओं के आधार पर सांख्यिकी के मुख्यतः निम्नलिखित दो रूप प्रचलित हैं:

(i) प्राचल सांख्यिकी

(ii) अप्राचल सांख्यिकी

(1) प्राचल सांख्यिकी - इसके अन्तर्गत अध्ययन समग्र के किसी एक विशेष प्राचल से संबंधित होता है तथा आंकड़ों के आधार पर प्राचल के संबंध में अनुमान लगाया जाता है। अर्थात् इसके अन्तर्गत जिस प्रकार के आंकड़ों का विश्लेषण किया जाता है वह आंकड़े न्यादर्श और सामान्य विवरण से संबंधित होते हैं।

(2) अप्राचल सांख्यिकी - इसे वितरण मुक्त सांख्यिकी भी कहा जाता है क्योंकि कुछ आंकड़े ऐसे भी होते हैं जहां न तो संयोगिक चयन होता है और न सामान्य वितरण हों। ऐसे आंकड़ों की संख्या कम होने के कारण आकड़ों का स्वरूप विकृत होता है और इनका एक समग्र के प्राचल से संबंध नहीं होता है। ऐसे आंकडों से संबंधित सांख्यिकी विधियां अप्राचल सांख्यिकी के अन्तर्गत आती हैं। इनमें माध्यिका, सहसंबंध, काई टेस्ट, माध्यिका टेस्ट आदि प्रमुख सांख्यिकी विधियां हैं।

व्यावहारिक सांख्यिकी को मुख्यतः दो प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं:

(i) वर्णनात्मक सांख्यिकी

(ii) अनुमानिक सांख्यिकी

(i) वर्णनात्मक सांख्यिकी: इसके अन्तर्गत वे विधियां आती हैं जिनके प्रयोग से किसी न्यादर्श की विशेषताओं का प्राप्त आंकडों के आधार पर वर्णन किया जाता है। इस प्रकार की सांख्यिकी का प्रयोग सांख्यिकी में प्रदत्तों के संकलन, संगठन, प्रस्तुतीकरण एवं परिकलन में होता है। इसके अंतर्गत प्रदत्तों का संकलन करके सारणीब) किया जाता है और प्रदत्तों की विशेषता स्पष्ट करने के लिए कुछ सरल सांख्यिकीय मानों की गणना की जाती है- जैसे केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों, विचलन मापकों तथा सहसंबंध आदि का प्रयोग वर्ग की प्रकृति तथा स्थिति आदि जानने के लिए किया जाता है।

(ii) अनुमानिक सांख्यिकी: इस सांख्यिकी विधि का प्रयोग किसी जनसंख्या से लिये गए न्यादर्श के विशेष सन्दर्भ में तथ्य एकत्र करके उनके आधार पर जनसंख्या के विषय में निष्कर्ष निकालने के लिए किया जाता है। बहुधा इस सांख्यिकी की सहायता से परिणामों की वैधता की जांच की जाती है। बहुधा अनुमान

के लिए अपेक्षाकृत उच्च सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया जाता है, जैसे सम्भावना नियम, मानक त्रुटि, सार्थकता, परीक्षण आदि। चूंकि समूह विस्तृत होते है तथा इनके सदस्यों की संख्या अधिक होती है, अतः अध्ययनकर्त्ता अध्ययन के लिए इन बड़े समूहों से न्यादर्श को चुनकर समस्या का अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं।

15.4 सांख्यिकी की श्रेणियां

जब तथ्यों के संकलन को क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप में लिखा जाता है, तब उसे हम सांख्यिकी की श्रेणी या पदमाला कहते हैं।

सेक्रिस्ट के अनुसार, ''सांख्यिकी में समंक श्रेणी उन पदों या इकाईयों के गुणों को कहा जा सकता है जो किसी तर्कपूर्ण क्रम के अनुसार व्यवस्थित किए गए हैं।''

सांख्यिकी की श्रेणियों को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:

1. प्रकृति के आधार पर-सांख्यिकीय श्रेणियां तीन प्रकार की होती है:

(i) कालानुसार श्रेणी

(ii) स्थानानुसार श्रेणी

(iii) परिस्थित्यनुसार श्रेणी

2.बनावट के आधार पर-सांख्यिकीय श्रेणियां तीन प्रकार की होती है:

(i) व्यक्तिगत श्रेणी

(ii) खंण्डित श्रेणी

(iii) अविच्छिन्न श्रेणी

समाजशास्त्र में सामान्यतः तीन सांख्यिकी श्रेणियां है:

(1) व्यक्तिगत श्रेणी या सरल श्रेणीयां- व्यक्तिगत श्रेणी में प्रत्येक पद या इकाई का अलग-अलग माप दिया जाता है। अर्थात् पद मूल्य एक संख्या के रूप में होते है तथा उनकी आवृत्ति भी केवल एक-एक स्वतन्त्र संख्यामें हो तो हम उसे व्यक्तिगत श्रेणी कहते है।

उदाहरण- किसी वार्षिक परीक्षा में 9 छात्रों के इतिहास में प्राप्तांक निम्नवत् थे, उनके प्राप्तांकों का समान्तर माध्य प्रत्यक्ष विधि से ज्ञात कीजिए।

छात्र	A	B	C	D	E	F	G	H	I
प्राप्तांक	26	20	25	29	21	32	41	22	39

(2) खंण्डित श्रेणी या असतत् श्रेणी- समंकों के संकलन के समय जब एक ही मूल्य के अनेक पद एकत्रित हो जाते हैं तब उन्हें अलग-अलग करना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में उन पदों की केवल आवृत्ति लिख दी जाती है। अर्थात् श्रेणी में मूल्यों की आवृत्ति जितनी बार होती है वह संख्या उसी मूल्य के सामने लिखी जाती है। इसके अन्तर्गत माप निश्चित एवं पूर्णांकों में लिखा जाता है और उनके खण्ड नहीं होते हैं। बच्चों की संख्या, अण्डों की या व्यक्तियों की संख्या आदि ऐसे मूल्य हैं जो पूर्णांक होते हैं और उनके टुकडें या खण्ड नहीं होते।

उदाहरण-

प्राप्तांक	छात्र संख्या
28	4
99	1
31	3
40	1
42	7
44	1
46	6
47	2
48	1

(3) अविच्छिन्न श्रेणी या सतत श्रेणी- इस प्रकार की श्रेणि में विभिन्न मदों के मूल्य निश्चित संख्याओं के रूप में न दिये जाकर वर्गान्तर में दिये जाते हैं अर्थात् अखण्डित श्रेणी में आवृत्तियों की संख्या अत्यधिक होने के कारण पदों को कुछ निश्चित वर्गों में विभक्त कर दिया जाता है। इसमें प्रत्येक मूल्य की मद को कहीं

न कहीं अवश्य ही सम्मिलित किया जाता है। एक वर्ग के समाप्त होते ही दूसरा वर्ग प्रारम्भ हो जाता है। खण्डित श्रेणी में मूल्य पूर्णांकों में दिया जाता है जबकि सतत् श्रेणी में मूल्य वर्गों में दिया जाता है। ये श्रेणियाँ दो प्रकार की होती हैं-

(अ) असम्मिलित श्रेणी- असम्मिलित सतत् श्रेणी में पिछले वर्गान्तर की मुख्य सीमा एवं उसके वर्गान्तर की निम्न सीमा दोनों एक ही होती है। उदाहरण-

वर्गान्तर	छात्र संख्या
10-20	4
20-30	1
30-40	3
40-50	1
50-60	7

(ब) सम्मिलित श्रेणी- सम्मिलित सतत् श्रेणी में पिछले वर्गान्तर की उच्च सीमा एवं उसके अगले वर्गान्तर की निम्न सीमा एक ही नहीं होती हैं।

उदाहरण

वर्गान्तर	छात्र संख्या
10-19	5
20-29	7
30-39	6
40-49	1
50-59	8

प्रत्येक प्रश्न को हल करते समय सम्मिलित श्रेणी को असम्मिलित श्रेणी में परिवर्तित कर लेना चाहिए।

उदाहरण

वर्गान्तर	**छात्र संख्या**
10-20	5
20-30	7
30-40	6
40-50	1
50-60	8

प्रकृति के आधार पर

(1) कालानुसार श्रेणी- इस श्रेणी को ऐतिहासिक श्रेणी भी कहा जाता है क्योंकि वर्ग पदों को ऐतिहासिक क्रम में लिखा जाता है। संकलित तथ्यों का जब काल या समय के अनुसार वर्गीकरण किया जाता है तब इस प्रकार की वर्गीकृत श्रेणी को काल श्रेणी कहते हैं। जैसे वर्ष, माह, सप्ताह या दिन को समय की इकाई के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। यह पदमाला समय, काल या इतिहास को दर्शाती है।

उदाहरण- एक महाविद्याालय में विभिन्न सत्रों में बी. ए. प्रथम वर्ष में छात्रों की संख्या निम्न थी:

वर्ष	**2005**	**2006**	**2007**	**2008**	**2009**	**2010**	**2011**	**2012**	**2013**
छात्रों की संख्या	26	20	25	29	21	32	41	22	39

(2) स्थानानुसार श्रेणी- इसके अन्तर्गत संकलित तथ्यों को स्थान संबंधी जानकारी के आधार पर बांटा जाता है। इस प्रकार की श्रेणियों को स्थान या भौगोलिक श्रेणियां कहते हैं। इस श्रेणी में एक ही समय पर विभिन्न स्थानों की स्थिति दर्शायी जाती है।

उदाहरण:

राज्य का नाम	जनसंख्या (करोड़ मे)

दिल्ली	20
उत्तर प्रदेश	28
हिमांचल प्रदेश	2
उत्तराखंड	1

(3) परिस्थित्यनुसार श्रेणी- जब श्रेणियों में आंकड़ों को परिस्थितियों के अनुसार या दशा के अनुसार दर्शाया जाता है, तब उसे परिस्थित्यनुसार श्रेणी कहते हैं। इन श्रेणियों में प्रत्येक इकाई का माप अलग-अलग दिया जाता है, अर्थात् भिन्न- भिन्न दशाओं में सांख्यिकी श्रेणियों की आवृत्तियां परिवर्तनशील रहती हैं। जैसे- लम्बाई, वेतन, आयु, प्राप्तांक आदि श्रेणियां इसके अन्तर्गत आती हैं।

उदाहरण - समाजशास्त्र विषय में 70 छात्रों के प्राप्तांकों को दर्शाने वाली श्रेणी परिस्थित्यनुसार श्रेणी है।

प्राप्तांक	छात्र संख्या
10-20	12
20-30	10
30-40	22
40-50	8
50-60	18

15.5 सांख्यिकी की उपयोगिता एवं महत्व

वर्तमान में सांख्यिकी का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है क्योंकि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीति-निर्धारण आवश्यक होता है और नीतियों का निर्धारण संमकों के बिना सम्भव नहीं है। भारत तथा अन्य विकासशील देशों की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का नियोजन प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सांख्यिकी के प्रयोग पर ही आधारित है। एकत्रित सांख्यिकीय आँकड़ों के माध्यम से ही भविष्य की आवश्यकताओं का

अनुमान लगाया जाता है और विकासोन्मुख दिशा में संसाधनों की अभिवृद्धि करने का प्रयास होता है। वर्तमान परिपेक्ष्य में सांख्यिकी के सामयिक महत्व तथा उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में समझा जा सकता है:

(1) तथ्यों को संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत करना- सांख्यिकी का एक महत्वपूर्ण कार्य विषय से संबंधित तथ्यों का संख्या के रूप में प्रस्तुतीकरण होता है। पूर्व में इसका उपयोग मात्र संख्या में मापे जाने योग्य आँकड़ों की प्राप्ति तक ही सीमित था,परन्तु मनोवृत्ति मापक पैमानों के विकास के साथ ही मानव-विचारों के अध्ययन और मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में भी सांख्यिकी की उपयोगिता व्यापक हो गई है। इसके द्वारा समस्याओं को अपेक्षाकृत अधिक सरल रूप में समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ, वर्तमान में चुनाव से पूर्व विभिन्न राजनीतिक दलों को चुनाव के वक्त मिलने वाली सीटों के अनुमान के लिए मीडिया द्वारा एक्जिट पोल किया जाता है ताकि लोगो की राय जानी जा सके।

(2) संमकों के सरलीकरण में सहायक- आँकड़ों का सरल और सुबोध रूप में प्रस्तुतीकरण सांख्यिकी के द्वारा ही सम्भव होता है। अत्यन्त जटिल दृष्टव्य तथ्यों को सांख्यिकी के वर्गीकरण, सारणीयन, दण्डचित्र, ग्राफ, बिन्दुरेखाओं के द्वारा सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है और सामान्य जनसमुदाय उसे आसानी से समझ सकता है। उदाहरण के लिए, प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय को सारणी तथा रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित पर उनकी ग्राह्यता अत्यन्त सरल व स्मरणीय हो जाती है।

(3) तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन- सांख्यिकी विषय में निहित तथ्यों अथवा विभिन्न विषयों से संबंधित आँकड़ों का तुलनातमक अध्ययन करती है। औसत तथा गुणांक के द्वारा किन्हीं भी दो तथ्यों की तुलना करके उनके मध्य सहसंबंध प्रदर्शित करते हैं। जैसे- यदि हम समुदाय में परिवारों की आर्थिक स्थिति और शैक्षिक स्तर के मध्य अध्ययन करते हैं तो प्राप्त आँकड़ों से यह ज्ञात करना सरल हो जाता है कि परिवारों की आर्थिक स्थिति का शिक्षा से क्या संबंध है।

(4) पूर्वानुमान की सुविधा- सांख्यिकी के द्वारा न केवल आँकड़ों का विश्लेषण किया जाता है, वरन् सांख्यिकी के रूप में प्राप्त आँकड़ों की सहायता से भावी परिस्थितियों अथवा दशाओं का पूर्व में अनुमान लगाया जा सकता है। पुर्वानुमान विज्ञान की आवश्यक विशेषता है, जिसके आधार पर भावी योजनाएं निर्मित की जाती हैं। जनसंख्या से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर भविष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने

के लिए प्राथमिकता आधारित कार्य क्षेत्रों का निर्णय महत्वपूर्ण होता है। सांख्यिकी की उपरोक्त विशेषता के कारण सभी सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकीय पद्धतियों के अध्ययन को अधिकाधिक महत्व दिया जा रहा है।

(5) व्यक्तिगत ज्ञान में वृद्धि- सांख्यिकी द्वारा व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभवों में वृद्धि होती है। इसका उपयोग करके किसी भी समस्या के व्यावहारिक पक्ष को अधिक सरल व सहज तरीके से समझा जा सकता है क्योंकि सांख्यिकी मूलतः अनुभूत व सिद्ध तथ्यों से संबंधित है। यह व्यक्ति की तर्क शक्ति को बढ़ाती है, साथ ही विचारों की स्पष्टता को प्रखर करती है। अध्ययनरत समूह की व्यावहारिक समस्याओं के सरल व अनुभूत बोध के साथ हमारे व्यावहारिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण परिवर्तित हो सकते हैं।

(6) विषय की सही जानकारी- यद्यपि सामाजिक जीवन में अधिकांश विषयों की जानकारी सामान्य कथनों व द्वितीय स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित होती है, तथापि स्पष्ट तथा अनुभव सिद्ध भिज्ञता मात्र सांख्यिकी के द्वारा ही प्राप्त होती है। अतएव यह स्पष्ट है कि सामाजिक विषयों की जानकारी का सबसे प्रामाणिक आधार सांख्यिकी ही है।

(7) राज्य-प्रशासन के क्षेत्र में महत्व- वर्तमान युग में विकासोन्मुखी प्रशासनिक कार्यों के संचालनार्थ भी सांख्यिकी का प्रयोग महत्वपूर्ण है। सरकारों का मुख्य दायित्व विकास के लिए प्रशासन को अधिकाधिक कार्य-कुशल बनाना होता है। विकास के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित आँकड़ों का संकलन करके नीति-नियोजन के द्वारा सरकारें प्रशासनिक क्रियान्वयन को और अधिक सजग व प्रभावपूर्ण बनाती हैं ताकि विकास-लक्ष्यों की गुणात्मक व मात्रात्मक उपलब्धि सुनिश्चित हो सके।

(8) अन्य विज्ञानों के नियमों के सत्यापन में सहायक-सामान्यतः परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण पुराने सिद्धान्त पूर्व की भाँति वर्तमान में प्रामाणिक तथा उपयोगी नहीं रह गए हैं। सांख्यिकी के द्वारा प्राप्त अध्ययन पद्धतियों के प्रयोग से वर्तमान तथ्यों का संकलन सम्भव होता है कि अतीत का कोई नियम अथवा सिद्धान्त वर्तमान में किस सीमा तक उपयोगी अथवा अनुपयोगी है। इसी के द्वारा नई परिकल्पनाएं सृजित होती हैं जो नवीन नियमों एवं सिद्धान्तों को विकसित होने का आधार देती हैं।

(9) नियोजन के क्षेत्र में महत्व- नियोजन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जिस देश में नियोजन जितना व्यावहारिक होता है, वहाँ का सामाजिक-आर्थिक विकास उतनी ही तीव्र गति से होता है। सांख्यिकीय

आँकड़ों की उपलब्धता इस दिशा में उपलब्ध साधनों तथा भविष्य की आवश्यकताओं के मध्य संतुलन स्थापित करती है। आँकड़ों के द्वारा ही यह ज्ञात करना सम्भव होता है कि उस क्षेत्र अथवा समूह की अल्पकालीन व दीर्घकालीन आवश्यकताएं क्या हैं। इन्हीं आवश्यकताओं के आधार पर विकास कार्यों से संबंधित प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाता है।

(10) आर्थिक क्षेत्र में महत्व-व्यक्ति के आर्थिक उत्पादन व उपभोग के मध्य संतुलन, व्यापारिक क्रियाओं तथा औद्योगिक विकास पर निर्भर करता है। व्यक्तियों की अभिरुचियाँ, जीवन-शैली, जीवन-स्तर, क्रय-क्षमता तथा दैनिक व्यावहारिक आदतों का अध्ययन उत्पादन के व्यवस्थापन अथवा प्रबन्धन के लिए अत्यावश्यक है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस क्षेत्र में औद्योगिक तथा आर्थिक समंक जितनी कुशलता से एकत्रित किये जाते हैं, उस क्षेत्र का आर्थिक विकास उतनी ही त्वरित गति से नियोजित किया जा सकता है। नियोजन हेतु सांख्यिकी का प्रयोग महत्वपूर्ण है।

(11) सामाजिक अनुसंधान में महत्वपूर्ण- सामाजिक घटनाओं का क्रम बड़ी सीमा तक अमूर्त तथा गुणात्मक होता है, परन्तु सांख्यिकीय उपकरणों की मदद से घटनाओं से संबंधित प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है। सांख्यिकी के अभाव में सामाजिक अनुसंधान यथार्थ एवं वस्तुनिष्ठ नहीं बनाया जा सकता है। सामाजिक विकास के कार्यों का मूल्यांकन भी आँकड़ों के आधार पर ही किया जाता है।

स्वप्रगति परीक्षण

4. सांख्यिकी की किन्ही तीन उपयोगिताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

15.6 सांख्यिकी की सीमाएं

यद्यपि सांख्यिकी का वैज्ञानिक महत्व स्पष्ट है, परन्तु इसके प्रयोग की कुछ सीमाएं भी हैं। तथ्यों का संकलन, विश्लेषण तथा विवेचन प्रविधियों में सीमाओं का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक होता है, अन्यथा निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण हो सकते हैं। सांख्यिकी की प्रमुख सीमाओं को निम्नानुसार समझा जा सकता है:

(1) संख्यात्मक अध्ययन की सीमितता- सांख्यिकी का उपयोग केवल उन्हीं अध्ययनों में किया जा सकता है जिनमें तथ्यों को संख्याओं के रूप में स्पष्ट करना सम्भव होता है। अधिकांशतः सामाजिक घटनाएँ गुणात्मक होती हैं, यथा-जनसमुदाय की सांस्कृतिक विशेषताओं, नैतिकता तथा चरित्र को आँकड़ों में नहीं मापा जा सकता है।

(2) व्यक्तिगत इकाईयों के अध्ययन का अभाव- सांख्यिकी का प्रयोग मात्र वर्गों के अध्ययन हेतु किया जा सकता है न कि व्यक्तिगत मूल्यों के संदर्भ में । साख्यिकी द्वारा व्यक्तिगत इकाईयों के संदर्भ में आंकड़े नहीं दिये जा सकते हैं और न ही अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(3) भ्रमपूर्ण निष्कर्ष प्राप्ति की सम्भावना- सांख्यिकी के आधार पर जो निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं उनकी विश्वसनीयता बहुत अधिक नहीं होती है। इस प्रकार के निष्कर्ष अथवा परिणाम अपूर्ण तथा अस्पष्ट होते हैं जो वास्तविकता से पृथक एक सामान्य दशा को व्यक्त करते हैं।

(4) सांख्यिकी के परिणाम औसत के सूचक होते हैं- सांख्यिकी की एक सीमा यह इंगित करती है कि सांख्यिकी द्वारा जो भी परिणाम प्राप्त होते हैं वे प्रायः औसत मान के रूप में ही रहते हैं। जहाँ एक ओर सांख्यिकी औसत को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान देती है, वहीं दूसरी तरफ औसत मान दीर्घकाल में उपयोगी नहीं रह पाते हैं। औसत मान सदैव परिवर्तित होता रहता है, साथ ही यह एक सामान्य प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है।

(5) उपयोग हेतु विशेष ज्ञान की आवश्यकता- अनुसंधान कार्य में सांख्यिकी का कुशल प्रयोग करने के लिए विशेष ज्ञान आवश्यक होता है। सांख्यिकी के आधार पर तथ्यों का संकलन, सारणीयन, विश्लेषण तथा विवेचन आदि करने हेतु समुचित ज्ञान होना नितान्त जरूरी है।

पद्धतियों गहन अध्ययन की शोध पद्धतियों में सांख्यिकी का प्रयोग करना लाभदायक नहीं होता है क्योंकि गहन अध्ययन के विषयों में जीवन की सूक्ष्म घटनाओं के संबंध में सांख्यिकी स्पष्ट निष्कर्ष प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं। इस प्रकार की अध्ययन शैली के अर्न्तगत वैयक्तिक अध्ययन तथा सहभागी अवलोकन पद्धतियाँ ही प्रभावी हो सकती हैं जो वास्तविक दशाओं को स्पष्ट करती हैं।

(7) पद्धति की अपूर्णता- सांख्यिकी एक सम्पूर्ण पद्धति नहीं है, अर्थात सांख्यिकी का उपयोग करके प्राप्त परिणामों को तभी सच माना जा सकता है जब अन्य पद्धतियों द्वारा उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि कर ली जाए।

(8) आँकड़ों में सजातीयता एवं एकरूपता की अनिवार्यता- इस सीमा के अन्तर्गत आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करके उपयोगी निष्कर्ष निरूपित किये जाते हैं, परन्तु तुलना के लिए आँकड़ों का समान प्रवृत्ति का होना अनिवार्य होता है। समंकों की समानता की दशा को सजातीयता अथवा एकरूपता कहते हैं। आँकड़ों के सजातीय होने पर ही निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं। तथ्यों में भिन्नता की दशा में त्रुटिपूर्ण परिणाम प्राप्त होते हैं।

(9) सांख्यिकी साधन प्रस्तुत करती है उसका समाधान नहीं- प्रो0 बाउले का विचार है कि सांख्यिकी का कार्य समंकों को संकलित कर प्रस्तुत करना होता है न कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचना। सांख्यिकी के द्वारा हमें मात्र कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर समस्या के समाधान का कार्य शोधकर्ता का होता है। यदि शोधकर्ता स्वयं योग्य और कुशल नहीं होगा तो वह किसी उपयोगी निष्कर्ष पर नही पहुँच सकता है। कोई व्यक्ति चाहे तो इनको परिणाम के रूप में उपयोग कर सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि सांख्यिकी एक साधन मात्र है।

15.7 सार-संक्षेप

इस इकाई में हमने सबसे पहले सांख्यिकी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं की चर्चा की है, जिससे स्पष्ट है कि सांख्यिकी अर्न्तनिहित आँकड़ों एवं समंकों सहित एक वैज्ञानिक विधि है जिसे अध्ययन हेतु एक आवश्यक आधार के रूप में देखा जाता है। सांख्यिकी आंकड़ों के समूह को कुछ संख्यात्मक मापों के रूप में संक्षिप्त करने में सहायता करती है। सांख्यिकी के द्वारा आंकड़ों के समूह के विषय में सार्थक एवं समग्र सूचनाएं प्रस्तुत की जाती हैं। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में सांख्यिकी यद्यपि अत्यधिक महत्वपूर्ण है, फिर भी इसका पूरक प)ति के रूप में उपयोग करना ही लाभदायक होता है। सांख्यिकी से प्राप्त महत्वपूर्ण तथ्यों को अनुसंधानकर्ता की व्यक्तिगत योग्यता द्वारा ही उपयोगी निष्कर्ष के रूप में निरूपित किया जा

सकता है। सांख्यिकी की उपयोगिता एवं महत्व दिनों दिन बढ़ रहे हैं। हमारे जीवन का कोई भी क्षेत्र सांख्यिकी के उपयोग से अछूता नहीं है।

15.8 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. सांख्यिकी का अर्थ तथा परिभाषा: शाब्दिक रूप में सांख्यिकी शब्द अंग्रेजी के शब्द सटटिस्टिस का हिन्दी रूपान्तर है। कुछ विद्वान इसे लैटिन भाषा के शब्द स्टेटस (Status) तथा जर्मन भाषा के शब्द statistic से भी जोड़ते हैं जिसका अर्थ राज्य है। इसका अर्थ प्राचीन काल में राजनीतिक रूप से राज्य व्यवस्था के लिए किया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस विषय की उत्पत्ति राज्य विज्ञान के रूप में हुई। शासन को भली प्रकार से चलाने के लिए राजा आंकड़े एकत्र करवाते थेऋ जैसे सेना की संख्या, रसद की मात्रा, कर्मचारियों का वेतन, भूमि कर आदि। आंकड़ों की सहायता से ही राज्य के आय-व्यय का सही अनुमान लगाया जाता था। राजाओं की नीति बहुत आगे तक आंकड़ों पर निर्भर करती थी। अतः मूल रूप से सांख्यिकी में राज्य के लिए उपयोगी विभिन्न पक्षों पर संख्यात्मक आंकड़ों का केवल संग्रह होता था।

सांख्यिकी का शाब्दिक अर्थ है संख्या से संबंधित शास्त्र। इस प्रकार विषय के रूप में सांख्यिकी ज्ञान की वह शाखा है जिसका संबंध संख्याओं या संख्यात्मक आंकड़ों से हो। सांख्यिकी के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय जर्मन विद्वान गॉटफ्रायड एकेनवाल को है। इसी कारण एकेनवेल को सांख्यिकी का जनक कहा जाता है। वर्तमान युग में सांख्यिकी को विकसित करने में कार्ल पियर्सन का योगदान सबसे अधिक है।

सांख्यिकी शब्द का प्रयोग दो भिन्न-भिन्न अर्थो में किया जाता है:

i) बहुवचन

ii) एक वचन

बहुवचन में इसका अभिप्राय आँकड़ों या समंकों से होता हैऋ जैसे अपराध, आयात-निर्यात, राष्ट्रीय आय जबकि एक वचन के रूप में सांख्यिकी का अर्थ सांख्यिकी विज्ञान से होता है अर्थात किसी विशेष विधि के द्वारा आंकड़ों के संग्रह, विश्लेषण और विवेचन से होता है।

2. बाउले के अनुसार "सांख्यिकी किसी अनुसंधान के किसी विभाग में तथ्यों का संख्या या समंक के रूप में प्रस्तुतीकरण है, जिन्हें एक दूसरे से सम्बन्धित रूप में प्रस्तुत किया जाता है।''

कॉनर के अनुसार "सांख्यिकी किसी प्राकृतिक अथवा सामाजिक समस्या से सम्बन्धित माप की गणना या अनुमान का क्रमब) एवं व्यवस्थित ढंग है जिससे कि अन्तसम्बन्धों का प्रदर्शन किया जा सके।"

वालिस तथा रॉबर्ट्स "सांख्यिकी के परिमाणात्मक पहलुओं से संख्यात्मक विवरण प्राप्त होता है जो मदों की गिनती या माप के रूप में व्यक्त होते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सांख्यिकी वह प्रविधि या कार्य पद्धति है जिसको संख्यात्मक तथ्यों के संकलन, प्रस्तुतीकरण तथा विश्लेषण करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। सांख्यिकी द्वारा ऐसे परिणाम प्राप्त होते हैं जिनसे विभिन्न दशाओं के बीच कार्य और कारण के सम्बन्ध का स्पष्ट करके एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके।

3. सांख्यिकी की विशेषताएं: समाजशास्त्र में सांख्यिकी की उपयोगिता निम्नलिखित तथ्यों के द्वारा स्पष्ट की जा सकती है:

(i) तथ्यों का समूहीकरण- तथ्यों के किसी समूह अथवा उस पर आधारित निष्कर्ष को सांख्यिकी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, किसी एक व्यक्ति की मासिक आय सांख्यिकी नहीं है अपितु बहुत से लोगों की मासिक आय से प्राप्त औसत आय को सांख्यिकी आँकड़ा कहा जाता है।

(ii) तथ्यों का संख्यात्मक प्रस्तुतीकरण- सांख्यिकी का उपयोग किसी तथ्य के गुणात्मक महत्व अर्थात् अच्छा, बुरा, उचित अथवा अनुचित को व्यक्त नहीं करता है। इसके विपरीत प्रत्येक निष्कर्ष को प्रतिशत, अनुपात, औसत अथवा विचलन के रूप में संख्या के द्वारा व्यक्त किया जाता है। वास्तविक अर्थों में सांख्यिकी संख्यात्मक आँकड़ों का समूह होता है। किसी उद्योग क्षेत्र के प्रबन्धक का वेतन श्रमिकों से ज्यादा होता है, इस तथ्य द्वारा सांख्यिकी की प्रकृति प्रदर्शित नहीं होती है, जबकि विभिन्न श्रेणियों के कार्मिकों की औसत मासिक आय की परस्पर तुलना तथ्यों को सांख्यिकी के रूप में प्रस्तुत करेगी।

(iii) पूर्व निर्धारित उद्देश्य- विशेषतः सांख्यिकी के अन्तर्गत संबंधित आँकड़ों या समंकों का संकलन एक पूर्व निश्चित उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर किया जाता है। सांख्यिकीय समंक यत्र-तत्र अव्यवस्थित नहीं होते वरन् यह अति व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध रूप में होते हैं। किसी पूर्व निर्धारित उद्देश्य की अनुपस्थिति में प्राप्त

किये जाने वाले तथ्यों को संख्या कहा जा सकता है, परन्तु वह आँकड़ों की श्रेणी में नहीं आते हैं। जैसे किसी औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया जाना है तो इसका उद्देश्य पूर्व में ही निर्धारित किया जाता है कि तथ्यों का संग्रहीकरण किस लक्ष्य हेतु किया जा रहा है। इस लक्ष्य के लिए कार्य के घण्टे, दैनिक मजदूरी , स्वास्थ्य दशाएं, परिवार का आकार, शैक्षणिक स्तर आदि तथ्य एकत्र किये जा सकते हैं।

4. सांख्यिकी की उपयोगिता: वर्तमान में सांख्यिकी का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है क्योंकि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीति-निर्धारण आवश्यक होता है और नीतियों का निर्धारण संमकों के बिना सम्भव नहीं है। भारत तथा अन्य विकासशील देशों की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का नियोजन प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सांख्यिकी के प्रयोग पर ही आधारित है। एकत्रित सांख्यिकीय आँकड़ों के माध्यम से ही भविष्य की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जाता है और विकासोन्मुख दिशा में संसाधनों की अभिवृद्धि करने का प्रयास होता है। वर्तमान परिपेक्ष्य में सांख्यिकी के सामयिक महत्व तथा उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में समझा जा सकता है:

(i) तथ्यों को संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत करना- सांख्यिकी का एक महत्वपूर्ण कार्य विषय से संबंधित तथ्यों का संख्या के रूप में प्रस्तुतीकरण होता है। पूर्व में इसका उपयोग मात्र संख्या में मापे जाने योग्य आँकड़ों की प्राप्ति तक ही सीमित था,परन्तु मनोवृत्ति मापक पैमानों के विकास के साथ ही मानव-विचारों के अध्ययन और मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में भी सांख्यिकी की उपयोगिता व्यापक हो गई है। इसके द्वारा समस्याओं को अपेक्षाकृत अधिक सरल रूप में समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ, वर्तमान में चुनाव से पूर्व विभिन्न राजनीतिक दलों को चुनाव के वक्त मिलने वाली सीटों के अनुमान के लिए मीडिया द्वारा एक्जिट पोल किया जाता है ताकि लोगो की राय जानी जा सके।

(ii) संमकों के सरलीकरण में सहायक- आँकड़ों का सरल और सुबोध रूप में प्रस्तुतीकरण सांख्यिकी के द्वारा ही सम्भव होता है। अत्यन्त जटिल दृष्टव्य तथ्यों को सांख्यिकी के वर्गीकरण, सारणीयन, दण्डचित्र, ग्राफ, बिन्दुरेखाओं के द्वारा सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है और सामान्य जनसमुदाय उसे आसानी से समझ सकता है। उदाहरण के लिए, प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय को सारणी तथा रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित पर उनकी ग्राह्यता अत्यन्त सरल व स्मरणीय हो जाती है।

(iii) तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन- सांख्यिकी विषय में निहित तथ्यों अथवा विभिन्न विषयों से संबंधित आँकड़ों का तुलनातमक अध्ययन करती है। औसत तथा गुणांक के द्वारा किन्हीं भी दो तथ्यों की तुलना करके उनके मध्य सहसंबंध प्रदर्शित करते हैं। जैसे- यदि हम समुदाय में परिवारों की आर्थिक स्थिति और शैक्षिक स्तर के मध्य अध्ययन करते हैं तो प्राप्त आँकड़ों से यह ज्ञात करना सरल हो जाता है कि परिवारों की आर्थिक स्थिति का शिक्षा से क्या संबंध है।

15.9 अभ्यास-प्रश्न

1. सांख्यिकी को परिभाषित करते हुए उनका अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी के लाभों या उपयोगिताओं का वर्णन कीजिए।
3. सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी के महत्व का वर्णन कीजिए।
4. सांख्यिकी की विशेषताओं तथा प्रकारों का विवेचन कीजिए।
5. सांख्यिकी की श्रेणियों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

15.10 परिभाषिक शब्दावली

वर्गीकरण- यह एक ऐसी रीति है जिसके द्वारा संगृहीत आंकड़ों को उनकी समानता एवं असमानता के अनुसार विभिन्न वर्गों में बांट दिया जाता है।

सारणीयन- यह एक ऐसी रीति है जिसमें वर्गीकृत आंकड़ों को पक्तियों एवं स्तम्भों में व्यवस्थित रूप में रखा जाता है।

अवर्गीकृत आंकड़े- अव्यवस्थित आंकड़ों को ही अवर्गीकृत आंकडें: कहते हैं।

वर्गीकृत आंकड़े- अव्यवस्थित आंकड़ों को विभिन्न वर्गों में बांटकर व्यवस्थित किया जाये तो इन आंकड़ों को वगीकृत आंकड़े कहते हैं।

आँकड़े- किसी विषय की बेहतर समझ के लिए विशेष सूचना प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित क्रमब) संख्याओं का समुच्चय आकड़ा कहलाता है।

15-10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिवेदी व शुक्ला. रिसर्च मैथडोलॉजी. कालेज बुक डिपो .जयपुर.
- जैन एम. बी. रिसर्च मैथडोलॉजी. रिसर्च पब्लिकेशन. जयपुर।
- ज्योति वर्मा. 2007. सामाजिक सर्वेक्षण. डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस. नई दिल्ली।
- राम आहूजा. 2005. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान. रावत पब्लिकेशन्स. दिल्ली.
- Singh, K. (1983**).** Techinques of method of Social Survey Research and Statistics, Prakashan Kendra, Lucknow.
- Bailey, Kenneth D. (1982). Methods of Social Research. The Free Press. New York.
- Lundberg G. A., 1942, Social Research, Longmans, New York.
- Mukundlal. (1958). Elementary Statistical Methods. Manoj Prakashan. Varanasi.
- Sanders, Donald. (1955). Statistics. McGraw Hill. New York.

इकाई 16 केन्द्रीय प्रवृत्तियों का मापन

Measurement of Central Tendencies

इकाई की रूपरेखा

16.0 अध्ययन के उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 केन्द्रीय प्रवृत्तियों के प्रकार

16.3 मध्यमान की परिभाषा तथा विशेषताएं

16.3.1 समान्तर माध्य की गणना-विधि

16.3.2 विभिन्न श्रेणियों में मध्यमान

16.3.3 माध्यों की उपयोगिता एवं महत्व

16.3.4 माध्य के दोष

16.4 माध्यिका या मध्यांक का अर्थ एवं परिभाषाएं

16.4.1 मध्यिका की विशेषताएं

16.4.2 माध्यिका की गणना-विधि

16.4.3 माध्यिका के गुण

16.4.4 माध्यिका के दोष

16.5 बहुलक का अर्थ एवं परिभाषाएं

16.5.1 बहुलक की विशेषताएं

16.5.2 बहुलक की गणना-विधि

16.5.3 बहुलक के गुण

16.5.4 बहुलक के दोष

16.6 सार-संक्षेप

16.7 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

16.8 अभ्यास-प्रश्न

16.7 पारिभाषिक शब्दावली

16.0 प्रस्तावना

अनुसंधान कार्य में आँकड़ों की आवृति एवं वितरण के पश्चात् केन्द्रीय प्रवृत्तियों के मापन का महत्वपूर्ण स्थान है। केन्द्रीय प्रवृत्तियों को ज्ञात करने के दो लाभ होते हैं। प्रथम यह एक औसत है जो समूह के सभी प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व करता है। जैसे- सारे वर्गों के व्यक्तियों की अलग-अलग आय दर्शाने के स्थान पर औसत आय का वर्णन ही उपयुक्त होगा। दूसरा, अनेक वितरणों/आकड़ों की तुलना में मापन सहायक होता है। ऐसे माप जो किसी आवृति-वितरण की औसत विशेषताओं को दर्शाते हैं, ''केन्द्रीय प्रवृत्तियों के माप कहलाते हैं, जैसे- मध्यमान, मध्यांक और बहुलांक।

16.1 अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा;

- केन्द्रीय प्रवृत्तियों के प्रकार को बताना,
- माध्य, माध्यिका और बहुलांक की चर्चा करना,
- माध्य, माध्यिका और बहुलांक के सूत्रों का प्रयोग करना,
- माध्य, माध्यिका और बहुलांक के गुण व दोषों को बताना।

16.2 केन्द्रीय प्रवृत्तियों के प्रकार

केन्द्रीय प्रवृत्तियों के मानों के आधार पर यह निम्न प्रकार के होते है:

(i) माध्य, (ii) माध्यिका (iii) बहुलांक

16.3 मध्यमान (Mean) की परिभाषा तथा विशेषताएं

केन्द्रीय प्रवृत्तियों के मापन में माध्य सबसे अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय है। इसके माध्यम से आकड़ों के उन औसत मूल्यों का पता चलता है जो कि आकड़ों का प्रतिनिधित्व करते हैं। दैनिक जीवन में मध्यमान को औसत कहा जाता है। किसी पदमाला के योग में पदों की कुल संख्या का भाग दिया जाता है और जो भागफल प्राप्त होता है मध्यमान कहा जाता है।

क्लार्क तथा शिकाड़े के अनुसार, ''माध्य, सम्पूर्ण समंकों के समूह का विवरण देने वाली एकमात्र, संख्या प्राप्त करने का प्रयत्न है।''

किंग (W.I King) के अनुसार, ''समंकमाला के पदों के योग में उनकी संख्या के भाग देने पर जो अंक प्राप्त होता है, उसी को अंकगणितीय औसत अथवा माध्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

रीगलमैन एवं फ्रीसबी ने लिखा है, ''यह एक औसत है जो पद मूल्यों के जोड़ में उनकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।''

उपयुक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि माध्य एक ऐसा मूल्य है जो कि श्रेणी के समस्त मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि यह समंक श्रेणी के अन्तर्गत मध्य में ही स्थित होता है, अतः इसे केन्द्रीय प्रवृत्तियां का माप कहा जाता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. मध्यमान का आशय स्पष्ट करते हुए इसे परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

16.3.1 समान्तर माध्य की गणना-विधि

समान्तर माध्य निकालने की निम्नलिखित दो पद्धतियां या विधियाँ हैं जो पदमाला की प्रकृति पर निर्भर होती हैं:

1- प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

2- संक्षिप्त विधि (Short Cut Method)

1- प्रत्यक्ष विधि- इसे ऋजु पद्धति भी कहा जाता है। इस पद्धति का उपयोग तब किया जाता है जब पदमाला छोटी होती है। इस पद्धति के अन्तर्गत पदों के कुल योग में पदों की संख्या का भाग देकर समान्तर माध्य ज्ञात कर लिया जाता है। इसके लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग किया जाता है:

समान्तर विधि = $\frac{x_1+x_2+x_3+x_4+\text{----------}x_n}{2}$

स0 मा0 (M) = $\frac{\sum x}{n}$

संकेतों का अभिप्राय

M= समान्तर माध्य

x = पदों के मूल्य

$\sum$ = यह एक ग्रीक अक्षर है जो योगफल को प्रकट करता है।

$\sum$x = समस्त पदों के मूल्यों का योग

n = पदों की कुल संख्या

'$\sum$' यह चिन्ह ग्रीक भाषा का है, इसका उच्चारण सिगमा (Sigma) है। इसका अर्थ कुल या योग होता है।

2. संक्षिप्त विधि- इसे लघु विधि भी कहा जाता है। इस विधि का उपयोग तब किया जाता है जब पदों की संख्या अधिक हो। लघु विधि से समान्तर माध्य निकालने के लिए निम्न क्रिया अपनानी पड़ती है:

- पदमाला के किसी पद को कल्पित माध्य मान लेते हैं। साधारणतया दी हुई संख्याओं के बीच वाली संख्या को कल्पित माध्य माना जाता है जिससे गणना करना सरल होता है।
- द्वितीय चरण में इस कल्पित माध्य से बाद में आने वाली प्रत्येक संख्या के विचलन निकाल लिये जाते हैं। विचलन निकालते समय धन (+) और ऋण (-) चिन्हों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है। पदमाला में यदि पद का मूल्य यदि कल्पित माध्य से कम है तो ऋण (-) एवं यदि पद का मूल्य कल्पित माध्य से अधिक है तो धन (+) का चिन्ह लगाते हैं।
- अन्त में निम्न सूत्र का प्रयोग करके समान्तर माध्य की गणना की जाती है:

स0 मा0 (M) = A $\pm \frac{d_1+d_2+d_3+d_4\text{----------}d_n}{n}$

$$(M) = A \pm \frac{\sum d}{n}$$

संकेतों से अभिप्राय

$\sum x$ = स0 माध्य

A = कल्पित माध्य

n = पदों की संख्या

d = विचलन

$\sum d$ = विचलनों का योग

16.3.2 विभिन्न श्रेणियों में मध्यमान

1. व्यक्तिगत श्रेणी में मध्यमान:-व्यक्तिगत श्रेणी में अनेक पद-मूल्य बिखरे हुए होते हैं तथा प्रत्येक पद मूल्य की आकृति केवल एक ही होती है। व्यक्तिगत श्रेणियों में से प्रत्यक्ष विधि तथा लघु विधि के द्वारा माध्य निम्नांकित रूप से ज्ञात किया जा सकता है। व्यक्तिगत श्रेणी में मध्यमान की गणना सारे पदों का योग कर उसे पदों की संख्या से भाग देकर की जाती है। प्राप्त मान समान्तर माध्य होता है। इस विधि से माध्य निकालने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग किया जाता है:

$$\text{समान्तर माध्य} = \frac{x_1+x_2+x_3+x_4+----------x_n}{2}$$

या

$$\text{स0 मा0 (M)} = \frac{\sum x}{n}$$

संकेतों का अभिप्राय

M= समान्तर माध्य

x = पदों के मूल्य

$\sum$ = यह एक ग्रीक अक्षर है जो योगफल को प्रकट करता है।

$\sum x$ = समस्त पदों के मूल्यों का योग

n = पदों की कुल संख्या

उदाहरण 1 :- किसी वार्षिक परीक्षा मे 9 छात्रों के समाजशास्त्र मे प्राप्तांक निम्नवत थे, उनके प्राप्तांकों का समांतर माध्य प्रत्यक्ष विधि से ज्ञात कीजिए |

छात्र	**A**	**B**	**C**	**D**	**E**	**F**	**G**	**H**	**I**
प्राप्तांक	26	20	30	36	21	38	40	22	37

(i)- प्रत्यक्ष विधि द्वारा

हल

सूत्र: स0 मा0 (M) = $\frac{\sum x}{n}$

$\sum x$ = समस्त पद मूल्यों का योग

n = पदों की कुल संख्या

M= समान्तर माध्य

प्राप्तांकों का योग ($\sum x$) = 26+20+30+36+21+38+40+22+37 = 270

अतः $\sum x = 270$

छात्रों की कुल संख्या (n) = 09

अतः $\sum x = 270$

n = 09

M=?

उपरोक्त आकड़ों को सूत्र में रखने पर:

$$M = \frac{270}{9}$$

$$M = 30$$

माध्य = 30 अंक

(ii)- लघु विधि का प्रयोग

1. किसी उपयुक्त संख्या को कल्पित माध्य मान लेते हैं।

2. प्रत्येक पद में से कल्पित माध्य घटाकर कल्पित माध्य से विचलन ज्ञात कर लेते हैं।

अतः

कल्पित माध्य से विचलन = पद - कल्पित माध्य

$$\text{स 0 मा0 (M)} = A \pm \frac{d1+d2+d3+d4.....dn}{n}$$

$$(M) = A \pm \frac{\sum d}{n}$$

यहाँ $\pm$ से अर्थ है कि यदि विचलन का योग धनात्मक है तो + चिन्ह का उपयोग होगा यदि ऋणात्मक है तो ऋण चिन्ह का।

संकेतों से अभिप्राय

$\sum x$ = स0 माध्य

A = कल्पित माध्य

n = पदों की संख्या

d = विचलन

$\sum d$ = विचलनों का योग

उदाहरण 2:- सात महिला श्रमिकों की साप्ताहिक आय (रुपयों में) निम्न प्रकार है, लघु विधि से स0 माध्य की गणना कीजिए |

30, 35, 25, 40, 20, 45, 50

श्रमिक	साप्ताहिक आय (रुपयों में)	कल्पित माध्य (A)	कल्पित माध्य (40) से विचलन **(x –A = d)**
A	30		30-40 = -10
B	35		35-40 = -5
C	25		25-40 = -15
D	40	40	40-40=0
E	20		20-40= -20
F	45		45-40 = -50
G	50		50-40 = +10
n =7			$\sum dx = -35$

सूत्र

$$\mathbf{M = A} \pm \frac{\sum d}{n}$$

M = ?

A= 40

$$\sum d = -35$$

n = 7

प्रतिस्थापन करने पर

M = 40.5

=40.5

= 35

रुपए = 35 (उत्तर = साप्ताहिक माध्य आय- 35)

2. असतत् श्रेणी मे मध्यमान :- असतत् श्रेणी में मध्यमान (वर्गीकृत आँकड़े) शब्द असतत् से तात्पर्य लगातार न होना है। असतत् श्रेणी में प्रत्येक इकाई के पद को एक आवृत्ति प्रदान की गई होती है अथवा आँकड़ों को वर्गीकृत रूप में दिया जाता है। अतः आंकड़ों का योग ज्ञात करने हेतु प्रत्येक इकाई को उसकी आवृत्ति से गुणा करते है। फिर गुणनफलों के योगफल में आवृत्तियों के योगफल से भाग देकर अभीष्ट समान्तर माध्य प्राप्त होता है।

असतत् पदमाला में माध्य की गणना करने के लिए निम्न दो पद्धतियों में से किसी भी पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है:

(i)- प्रत्यक्ष विधि

सूत्र

$$M = \frac{\sum fx}{N}$$

संकेतों से अभिप्राय

M = स0 माध्य

F = आवृत्ति

N= आवृत्तियों का योग

$\sum$fx = पद मूल्यों का उनका आवृत्ति से गुणा करने के बाद योग

उदाहरण 1

प्राप्तांक (X)	**छात्र संख्या (f)**	**f. x**
38	4	38 ×4 =152
39	1	39× = 39
41	3	41 ×3 = 123

44	1	44 ×1 = 44
52	7	52 ×7 = 364
54	1	54 ×1 = 54
58	6	58 ×6 = 348
64	2	64 ×2= 128
71	1	71 ×1 = 71
	N= 26	Σfx= 1323

सूत्र

$$M = \frac{\sum fx}{N}$$

M = ?

$$\sum fx = 1323$$

N = 26

उपरोक्त आंकड़ों को सूत्र मे रखने पर

M = ?

$$= \frac{\sum 1323}{26}$$

= 50.9

अभीष्ट स0 माध्य = 50.9

(ii) लघु विधि द्वारा

सूत्र = स0 मा0 (M) = A+ $\frac{\sum fd}{n}$

A = कल्पित माध्य

N = आवृत्तियों का योग

$\sum fd$ = विचलनों का आवृत्तियों से गुणा करने के बाद प्राप्त योग :

प्राप्तांक (X)	छात्र संख्या (f)	कल्पित माध्य (d)	कल्पित माध्य से विचलन	fxd
38	4		-14	-56
39	1		-13	-13
41	3		-11	-33
44	1		0	0
52	7	52	+2	+2
54	1		+6	+36
58	6		+12	+24
64	2		+19	+19
71	1			
	N= 26			Σxd= -29

सूत्र

$$M = A \pm \frac{\sum fd}{n}$$

A = 52

N = 26

$$\sum fd = -29$$

M = ?

उपरोक्त आकड़ों को सूत्र मे रखने पर

$$M = 52 \pm \frac{-29}{26}$$

= 52 & 1.1

आभीष्ट समांतर माध्य = 50.9

3. सतत् श्रेणी मे माध्य

कभी-कभी आँकड़े अंकों के स्थान पर वर्ग अन्तराल के रूप में दिये जाते हैं। ऐसी स्थिति में केवल अन्तराल के मध्य बिन्दु की गणना की जाती है।

यह मध्यमान किसी वर्ग अन्तराल की उच्च सीमा तथा निम्न के योग का आधा होता है। यदि कोई वर्गान्तर सीमा 10-20 है तो इसका मध्यमान निम्नवत् होगा:

$$\text{मध्यमान} = \frac{10+20}{2}$$
$$= \frac{30}{2}$$
$$= 15$$

इसी मध्य बिन्दु को आवृत्ति से गुणा कर गुणांक fx ज्ञात किया जाता है |

(i) – प्रत्यक्ष विधि के सूत्र को हम इस प्रकार लिख सकते है :

$$\text{स0 माध्य } M = \frac{\sum fx}{N}$$

संकेतों से अभिप्राय

M = स0 माध्य

f = आवृत्ति

N= आवृत्तियों का योग

x= वर्ग अंतराल का मध्यमान

$\sum$fx = पद मूल्यों का उनका आवृत्ति से गुणा करने के बाद योग

उदाहरण 1: एक निजी प्रतिष्ठान के श्रमिकों की दैनिक मजदूरी का बंटन निम्नलिखित है |

दैनिक मजदूरी	**3-5**	**5-7**	**7-9**	**9-11**	**11-13**	**13-15**
श्रमिकों की संख्या	**7**	**6**	**8**	**10**	**12**	**14**

दैनिक मजदूरी (वर्ग अंतराल)	मध्यमान (x)	आवृत्ति(f)	आवृत्ति × मध्यमान = f × X
3-5	4	7	7 ×4 =28
5-7	6	10	10 × 6= 60
7-9	8	23	23 ×8 = 184
9-11	10	51	51 ×10 = 510
11-13	12	6	12 ×6 = 72
13-15	14	3	14 ×3 = 42
		n= 100	Σfx= 896

सूत्र

$$M = \frac{\Sigma fx}{N}$$

M = ?

$$\Sigma fx = 896$$

n = 100

उपरोक्त आंकड़ों को सूत्र मे रखने पर

M = ?

$$= \frac{896}{100}$$

= 8.96

अभीष्ट स0 माध्य = 8.96

(ii) लघु विधि द्वारा

- सर्वप्रथम प्रत्येक वर्ग अंतराल का मध्य बिन्दु ज्ञात करते है |
- पुनः किसी उपयुक्त मध्यमान को कल्पित माध्य मान लेते है |
- अब अग्रिम क्रिया प्रत्यक्ष विधि किमही भांति करते है |

सूत्र = स0 मा0 (M) = A+ $\frac{\sum fd}{n}$

A = कल्पित माध्य

N = आवृत्तियों का योग

$\sum fd$ = विचलनों का आवृत्तियों से गुणा करने के बाद प्राप्त योग :

उदाहरण :- 2 निम्न सारणी से लघु विधि द्वारा औसत दैनिक मजदूरी ज्ञात करना |

दैनिक मजदूरी अंतराल	**मध्यमान (x)**	**आवृत्ति (f)**	**कल्पित माध्य से विचलन (d=x-A)**	**आवृत्ति × विचलन ($f \times d$)**
3-5	**4**	**7**	**-6**	**-42**
5-7	**6**	**10**	**-4**	**-40**
7-9	**8**	**23**	**-2**	**-46**
9-11	**10 = (A)**	**51**	**0**	**0**
11-13	**12**	**6**	**+2**	**12**
13-15	**14**	**3**	**+4**	**12**
	N= 26			**Σfd= -104**

सूत्र

अतः स0 माध्य0 M = $A \pm \frac{\sum fd}{n}$

A = 10

n = 100

$$\sum fd = -104$$

M = ?

उपरोक्त आकड़ों को सूत्र मे रखने पर

$$M = 10 \pm \frac{104}{100}$$

= 100-1.04

आभीष्ट समांतर माध्य = रुपए 8.96

16.3.3 माध्यों की उपयोगिता या गुण या महत्व

माध्यों की उपयोगिता या गुणों या महत्व को निम्नांलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. सरल आगणन- माध्य निकालना व समझना अन्य सांख्यिकीय विधियों की तुलना में अत्यन्त सरल होता है। साधारण गणित के सूत्रों से माध्य आसानी से निकाले जा सकते हैं।

2. सुपरिभाषित- समान्तर माध्य पूरी तरह स्पष्ट और सुपरिभाषित होता है। जब हम सभी आँकड़ों के योग को आवृत्तियों की संख्या से भाग देते हैं तो हमें अंकगणितीय औसत प्राप्त होता है। इससे किसी भी प्रकार की अस्पष्टता नहीं होती है।

3. तुलनात्मक अध्ययन में उपयोगी- माध्य विभिन्न तथ्यों या आँकड़ों की तुलना करने में सहायता प्रदान करता है। माध्य समूह को संक्षिप्त रूप में प्रकट करता है, अतः तुलना कार्य सरल हो जाता है।

4. समग्र का प्रतिनिधित्व करना- माध्य एक ऐसी संख्या है जो सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधत्व करती है और सम्पूर्ण समूह की अधिकाधिक विशेषताओं को व्यक्त करती है।

5. सांख्यिकीय विवेचन का आधार- माध्यों के द्वारा संकलित सामग्री से सांख्यिकीय विश्लेषण, विवेचन और निर्वचन आदि में बहुत मदद मिलती है। सांख्यिकीय विश्लेषण की अधिकाश क्रियाऐं जैसे- अपकिरण, सहसम्बन्ध सूचकांक आदि के विवेचन का आधार माध्य ही है।

6. निष्कर्षों में समानता- माध्य का एक विशेष गुण यह है कि इसे चाहे किसी भी पद्धति से निकाला जाये, उनसे प्राप्त होने वाले उत्तर सदैव समान होते हैं। इसी कारण समान्तर माध्य की प्रकृति अधिक स्पष्ट होती है।

स्वप्रगति परीक्षण

2. मध्यों की उपयोगिता या महत्व का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

16.3.4 माध्य के दोष

1. केवल आवृत्तियों के आधार पर गणितीय माध्य को कल्पित करना मुश्किल होता है।

2. माध्य द्वारा गुणात्मक विशेषताओं से सम्बन्धित परिवर्तनों को स्पष्ट करना एक कठिन कार्य है।

3. माध्य के द्वारा जो मूल्य ज्ञात होते हैं वह एक सम्पूर्ण वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते। इस दशा में माध्य से सम्बन्धित निष्कर्ष अव्यावहारिक हो जाते हैं।

4. माध्य समस्त तथ्यों का प्रतिनिधि रूप मात्र ही होता है। अतः इससे वास्तविक प्रवृत्तियों का पता नहीं चल पाता है, क्योंकि इससे कमी या वृद्धि का ज्ञान नहीं होता।

5. प्रायः अंकगणितीय माध्य पूर्ण इकाईयों के रूप में नहीं निकलता। अविभाजित इकाईयों यथा- मनुष्यों, पशुओं और वाहनों आदि के सन्दर्भ में, यदि माध्य पूर्ण संख्या नहीं है तो इससे प्राप्त निष्कर्ष हास्यप्रद प्रतीत होते हैं।

16.4 माध्यिका (Median)

मध्यांक या माध्यिका किसी पद श्रंखला या श्रेणी में वह बिन्दु होता है जो सम्पूर्ण श्रृंखला व श्रेणी को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। आधे पद माध्यिका के ऊपर हों तथा आधे उसके नीचे। जैसे -श्रेणी 21, 22, 23, 24, 25, 27, 28 का मध्यांक बीच का पद अर्थात् 24 है क्योंकि यह अंक श्रेणी को दो भागों में विभाजित करता है जिससे उसके ऊपर 3 व नीचे भी 03 पद हो जाते हैं। परन्तु ऐसा होने के लिए यह आवश्यक है कि सभी पद-मूल्यों को आरोही या अवरोही क्रमों में रखा जाए।

16.4.1 माध्यिका या मध्यांक का अर्थ एवं परिभाषाएं

माध्यिका या मध्यांक वह पद मूल्य है जो कि आरोही (बढ़ते हुए) अथवा अवरोही (घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित किसी श्रेणी को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। इस प्रकार क्रमानुसार व्यवस्थित मूल्यों की श्रृंखला के मध्य के मूल्य का नाम ही माध्यिका है।

सेक्रिस्ट के अनुसार, ''पदमाला की मध्यिका वह वास्तविक या अनुमानित पद-मूल्य होता है, जो पदमाला को विस्तार के क्रम में व्यवस्थित करने पर उसे बराबर दो भागों में विभक्त कर देता है।''

कोनोर के अनुसार, ''माध्यिका समंक श्रेणी का वह पद मूल्य है जो समूह को दो भागों में इस प्रकार विभाजित करता है कि एक भाग में समस्त मूल्य मध्यिका से अधिक और दूसरे भाग में समस्त मूल्य मध्यिका से कम होते हैं।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है किसी पदमाला या श्रेणी को उतरते या चढ़ते क्रम में व्यवस्थित करने पर उसका मध्य मूल्य मध्यांक कहलाता है जो श्रेणी के पद-मूल्यों को दो बराबर भागों में बांट देता है। इस कारण मध्यिका से कम और अधिक वाले पद-मूल्य बराबर होते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

3. माध्य के दोषों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

16.4.1 मध्यांक या माध्यिका विशेषताएं

मध्यांक समंक श्रेणी को दो बराबर भागों में विभाजित करता है, अतः

1. मध्यांक ज्ञात करने के लिए समंक श्रेणी को आरोही एवं अवरोही क्रम में व्यवस्थित करना आवश्यक होता है।

2. मध्यांक का अर्थ किसी औसत से नहीं होता बल्कि यह एक समंक-माला के केन्द्र में स्थित एक विशेष पद-मूल्य होता है।

3. माध्यिका केवल एक विशेष मूल्य की ओर संकेत करता है। यह मूल्य जिस संख्या अथवा विशेषता से सम्बन्धित होता है, उसी को माध्यिका मान लिया जाता है।

16.4.2 माध्यिका की गणना विधि

माध्यिका का परिकलन भी श्रेणियों के अनुरूप दिया जाता है। जैसा स्पष्ट किया जा चुका है कि अंक श्रेणियाँ प्रमुख रूप से निम्नलिखित तीन प्रकार की होती हैं:

(1) सरल श्रेणी
(2) खण्डित श्रेणी
(3) अविच्छिन्त श्रेणी

1. सरल श्रेणी का मध्यांक

माध्यिका निकालने के दृष्टिकोण से सरल श्रेणियां दो प्रकार की हो सकती हैं:

(i) जब आँकड़ों की संख्या विषम (odd) हो

मान लिया आँकड़ों की संख्या=n

$\left(\frac{n-1}{2}\right)$पद $\left(\frac{n-1}{2}\right)$पद

माध्यिका =$\left(\frac{n-1}{2}+1\right)$ वां पद

स्पष्टतः है कि इन्हें आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर मध्यवाला पद

वां पद $\left(\frac{n-1}{2}+1\right)$ अर्थात् $\left(\frac{n-1}{2}\right)$वां पद होगा

अर्थात्

माध्यिका Md =$\left(\frac{n+1}{2}\right)$ वां पद

यहां पर Md= माध्यिका

N= पदों की संख्या

उदाहरण 1. यदि एक छात्र के नौ प्रश्नपत्रों में निम्नलिखित प्राप्तांक थे, तो मध्यांक ज्ञात कीजिए।

छात्र	A	B	C	D	F	G	H	I	J
प्राप्तांक	65	36	58	62	42	40	72	82	25

माध्यिका निकालने की विधि

सर्वप्रथम प्राप्तांकों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर,

25, 36, 40, 42, 58, 62, 65, 72, 82

यहाँ n= 9 अर्थात् पदों की संख्या विषम है।

अतः माध्यिका =$\left(\frac{n+1}{2}\right)$ वां पद

$= \left(\frac{9+1}{2}\right)$ पद

=5 वां पद

= 58 अंक

अतः माध्यिका = 58 अंक

(i)**जब आँकड़ों की संख्या सम हो** - तब निम्नांकित सूत्र का प्रयोग किया जाता है:

माध्यिका (Md)= $\left(\frac{n}{2}\right)$ वें पद का मान +$\left(\frac{n+1}{2}\right)$ वें पद का मान

2

उदाहरण 2: एक कार्यालय में दस कर्मचारियों का दैनिक वेतन निम्नलिखित है, तो वेतन की माध्यिका ज्ञात कीजिए

कर्मचारी	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10

दैनिक मजदूरी	**10**	**13**	**22**	**25**	**8**	**11**	**19**	**17**	**31**	**36**

हल - सर्वप्रथम उपर्युक्त संख्याओं को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर,

8, 10, 11, 13, 16, 17, 19, 22, 25, 26

यहां n= 10 अर्थात् पदों की संख्या सम है।

अतः माध्यिका (Md)= $\left(\frac{n}{2}\right)$ वें पद का मान +$\left(\frac{n}{2}+1\right)$ वें पद का मान

$$\frac{}{2}$$

अतः माध्यिका (Md)= $\left(\frac{10}{2}\right)$ वें पद का मान +$\left(\frac{10}{2}+1\right)$ वें पद का मान

$$\frac{}{2}$$

$$= 5 \text{ वें पद का मान} + 6 \text{ वें पद मान}$$

$$\frac{}{2}$$

$$= \frac{16+17}{2}$$

वेतन की माध्यिका = रुपये 16.50

2. असतत् श्रेणियों में मध्यांक

(1) पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने के पश्चात् सभी पदों की आवृत्तियों को संचयी आवृत्ति में बदलना आवश्यक होता है।

(2) संचयी आवृत्ति की गणना के लिए पहले पद की आवृत्ति से आरम्भ करके प्रत्येक अगली आवृत्ति को उसमें जोड़ दिया जाता है।

(3) पुनः ऊपर बतायी गयी विधि या सूत्र से माध्यिका ज्ञात कर लेते हैं।

उदाहरण 1. निम्न सारणी में माध्यिका की गणना कीजिए।

पद का आकार	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
आवृत्ति	5	8	4	12	5	11	14	12	7	19

हलः उपर्युक्त की संचयी आवृत्ति सारणी में निम्नवत् है:

पद का आकार	आवृत्ति (f)	संचयी आवृत्ति
4	5	5
5	8	13
6	4	17
7	12	29
8	5	34
9	11	45
(10)	(14)	(59)
11	12	71
12	7	78
13	19	97
	N=97	

यहां n=97 अर्थात् पदों की संख्या विषम है।

अतः

माध्यिका $= \frac{n+1}{2}$ वां पद

$= \frac{97+1}{2}$ वां पद

$= \frac{98}{2}$ वां पद

= 49 वां पद

संचयी आवृत्ति देखने से यह स्पष्ट है कि 49 वां पद, 45 से अधिक और 59 से कम है। अतः 49 वां पद उस वर्ग में होगा जिसकी संचयी आवृत्ति 59 है।

अतः 49 वें पद का मान =10

अतः अभीष्ट माध्यिका = 10 उत्तर

उदाहरण 2- निम्न सारणी से माध्यिका की गणना कीजिए।

पद का आकार	**11**	**12**	**13**	**14**	**15**	**16**	**17**	**18**	**19**	**20**
आवृत्ति	**5**	**8**	**12**	**20**	**24**	**18**	**13**	**11**	**6**	**3**

हल:

माध्यिका की गणना: उपर्युक्त की संचयी आवृत्ति सारणी में निम्नवत है:

पद का आकार	**आवृत्ति**	**संचयी आवृत्ति**
11	**5**	**8**
12	**8**	**5+8 =13**
13	**12**	**13+12 =25**
14	**20**	**25+20 =45**
15	**24**	**45+24 =69**
16	**18**	**69+18 =87**
17	**13**	**87+13 =100**
(18)	**(11)**	**100+11 =(111)**
19	**6**	**111 + 6 = 117**
20	**3**	**117 + 3 = 220**

	N= 220	

यहां n= 220

अर्थात् पदों की संख्या सम है।

सूत्रः अतः माध्यिका (Md)= $\left(\frac{n}{2}\right)$ वें पद का मान +$\left(\frac{n}{2}+1\right)$ वें पद का मान

2

अतः माध्यिका (Md)= $\left(\frac{220}{2}\right)$ वें पद का मान +$\left(\frac{220}{2}+1\right)$ वें पद का मान

2

= 110 वें पद का मान + 111 वें पद का मान

2

= $\frac{18+18}{2}$(क्योंकि दोनों पद उस स्तम्भ में हैं जिसकी संचयी बारंबारता 111 है)

$\frac{36}{2}$ =18

अभीष्ट माध्यिका = 18

3.सतत् श्रेणियों की माध्यिका निकालने की विधि: इस विधि के निम्नलिखित चरण हैं:

1) सर्वप्रथम संचयी आवृत्ति को ज्ञात करते हैं। इसके बाद उस वर्ग को ज्ञात करते हैं जिसमें आवृत्तियों के योग का आधा स्थित हो। इसे माध्यिका वर्ग कहते हैं, अर्थात् $\frac{n}{2}$ के आधार पर न कि $\frac{n+1}{2}$ सूत्र के आधार पर वर्गान्तर के मध्यांक की स्थिति ज्ञात की जाती है।

2) तत्पश्चात् निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग कर माध्यिका ज्ञात कर लेते हैं:

माध्यिका (Md) = $L2$

यहाँ Md= माध्यिका

L1= माध्यिका वर्ग की निम्न सीमा

L2= माध्यिका वर्ग की उच्च सीमा

f2= माध्यिका वर्ग की आवृत्ति

n= आवृत्तियों का योग

c= माध्यिका वर्ग के पहले वर्ग की संचयी आवृत्ति

उदाहरण. 1. निम्न सारणी से माध्यिका की गणना कीजिए।

वर्ग अन्तराल	आवृत्ति
5-25	**4**
25-45	**5**
45-65	**12**
65-85	**20**
85-105	**20**
105-125	**14**
125-145	**6**

हल

वर्ग अन्तराल	आवृत्ति	संचयी आवृत्ति
5-25	4	4
25-45	5	9
45-65	12	(21)c
65-85	(20)f	41
85-105	20	55
105-125	14	61
125-145	6	65
	n=65	

यहाँ n=65

$\frac{n}{2} = \frac{65}{2} = 32.5$

चूँकि 32.5 आवृत्ति 41 के अन्तर्गत है, इसलिए माध्यिका वर्ग (65-85) हुआ।

अतः $L_1 = 65$

$L_2 = 85$

$F = 20$

$C = 21$

Me= ?

सूत्र

माध्यिका $Me = L_1 + \frac{L_1 + L_2}{f} \left(\frac{n}{2} - C\right)$

$= 65 + \frac{85-65}{20}(32.5 - 21)$

$= 65 + \frac{20}{20}(32.5 - 21)$

$= 65 + 11.5$

$= 76.5$ उत्तर

16.4.3 माध्यिका के गुण

(1) माध्यिका हमेशा निश्चित एवं स्पष्ट होती हैं।

(2) माध्यिका दिये हुए पदों का ही एक अंश होता है, इसलिये वह सम्पूर्ण समूहों का उचित प्रतिनिधित्व करता है। इसका मान सभी पदों पर आधारित होता है।

(3) माध्यिका की गणना के समय सम्पूर्ण समंकों की जानकारी आवश्यक होती है।

(4) तुलनात्मक रूप से माध्यिका को ज्ञात करना भी अत्यधिक सरल होता है क्योंकि कभी-कभी पद-मूल्यों को क्रम से लगा लेने मात्र से ही माध्यिका को ज्ञात किया जा सकता है।

(5) माध्यिका का अनुमान निरीक्षण द्वारा भी किया जा सकता है।

(6) माध्यिका को बिन्दुरेखीय प्रदर्शन द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है।

16.4.4 माध्यिका के दोष

(1) माध्यिका की गणना करते समय सभी पदों को समान महत्व दिया जाता है, अतः यह गलत पद्धति है।

(2) माध्यिका मूल्य का बीजगणितीय विवेचन सम्भव नहीं है, अतः अन्य सांख्यिकीय रीतियों में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(3) इसका निर्धारण करने के लिए श्रेणी के सभी पदों को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करना पड़ता है। इस कार्य में गलती होने की सम्भावना रहती है।

(4) पदों की संख्या कम होने पर प्रतिनिधत्व ठीक नहीं रहता है।

(5) तुलनात्मक आधार पर माध्य की अपेक्षा माध्यिका को अधिक शुद्ध नहीं माना जाता है। यही कारण है कि यदि किसी स्थिति में माध्य अथवा माध्यिका में से किसी एक का प्रयोग करने की छूट हो तो माध्य को प्राथमिकता दी जाती है।

(6) पदमाला के अनियमित वितरण की स्थिति में माध्यिका दोषपूर्ण निकलती है।

(7) गुणात्मक गणनाओं के लिये मध्यांक या माध्यिका अनुपयोगी हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

4. माध्यिका या मध्यांक को परिभाषित करते हुए इसका आशय स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

16.5 बहुलक (Mode): अर्थ एवं परिभाषाएँ

बहुलांक को बहुलक तथा भूयिष्ठक जैसे शब्दों से भी सम्बोधित किया जाता है। बहुलांक के अंग्रेजी शब्द 'Mode' की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'la mode' से मानी जाती है जिसका अर्थ है सर्वाधिक 'फैशन' अथवा 'प्रचलन'।

बहुलांक या भूयिष्ठक किसी वितरण या श्रेणी में सर्वाधिक बार आने वाला पद है, अर्थात् भूयिष्ठक वह मूल्य है जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है। इस प्रकार भूयिष्ठक वह माप है जिसकी आवृत्ति पदमाला या श्रेणी में सबसे अधिक बार होती है।

क्राक्सटन एवं काउडेन के अनुसार, ''एक वितरण भूयिष्ठक वह मूल्य है जिसके चारों तरफ सर्वोच्च पद केन्द्रित हों। उसे मूल्यों की पदमाला के सर्वोच्च पद का प्रतिरूप कहा जा सकता है।''

जिजेक के अनुसार, ''बहुलक वह मूल्य है जो पदों की श्रेणी अथवा समूह में सबसे अधिक बार आता है तथा जिसके चारों ओर सबसे अधिक घनत्व में पदों का वितरण रहता है।''

गिलफोर्ड के अनुसार, ''माप के पैमाने पर बहुलक वह बिन्दु है, जहाँ पर वितरण मंे सबसे अधिक आवृत्तियाँ केन्द्रित होती हैं।''

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बहुलक पदों की श्रेणी में उस पद का मूल्य है जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है।

16.5.1 विशेषताएं

(1) बहुलक का मूल्य सबसे अधिक सम्भावित मूल्य होता है जिसके आस-पास सबसे अधिक आवृत्तियाँ केन्द्रित होती हैं।

(2) बहुलक का मूल्य प्रायः अधिकतम आवृत्तियों से निर्धारित होता है, इकाईयों से नहीं।

(3) बहुलक की गणना एक समंक के सभी पदों की आवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए की जाती है। इसके फलस्वरूप ये सभी पद मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

(4) बहुलक का मूल्य ही केवल ऐसा मूल्य है जिसका प्रयोग गुणात्मक तथ्यों के लिए भी किया जा सकता हैं।

16.5.2 बहुलक की गणना विधि

1. सरल श्रेणी का बहुलक

इस पद की आवृत्ति सबसे अधिक बार आई है और इसी सबसे अधिक बार आने वाली आवृत्ति का पद भूयिष्ठक होता है।

उदाहरण 1. निम्नलिखित पद मूल्यों से बहुलक ज्ञात कीजिए?

11, 21, 22, 30, 52, 30, 54, 30, 25, 30

हलः

इसमें 30 की आवृत्ति 4 है तथा किसी दूसरी संख्या की आवृत्ति 4 से अधिक नहीं है

अतः अभीष्ठ बहुलक =30

2. असतत् श्रेणी का बहुलक

पदमाला के साधारण निरीक्षण द्वारा इस बात का पता लगा लिया जाता है कि जिस पद की आवृत्ति सबसे अधिक होगी, वही पद बहुलक पद होगा।

उदाहरण 2. निम्नलिखित समंकों के बहुलक ज्ञात कीजिए।

पद	**25**	**35**	**45**	**55**	**65**	**75**	**85**
आवृति	**4**	**7**	**15**	**20**	**10**	**9**	**3**

हलः स्पष्ट है कि 55 की आवृत्ति 20 हैं तथा किसी भी दूसरे पद की आवृत्ति 20 अथवा 20 से अधिक नहीं है।

अतः अभीष्ट बहुलक = 55 उत्तर

3. सतत् या अविच्छिन्न या अखण्डित में बहुलक

(1) सर्वप्रथम अधिकतम आवृत्ति वाले वर्गान्तर को मालूम कर लेना चाहिए। वर्गान्तर बहुलक वर्गान्तर होगा।

(2) पदमाला की आवृत्ति यदि नियमित रूप से घटती या बढ़ती है, तब ऐसी पदमालाओं का भूयिष्ठक वर्ग अधिकतम आवृत्ति वाला पद ही होता है।

(3) निम्नलिखित सूत्र का उपयोग करते हैं:

$$M_0 = L_1 + \frac{f - f1}{2f - f1 - f2} \ (L_2 - L_1)$$

यहाँ

M_0 = बहुलक

L_1 = बहुलक वर्ग की निम्न सीमा

L_2 = बहुलक वर्ग की उच्च सीमा

f = बहुलक वर्ग की आवृत्ति

f_1 = बहुलक वर्ग के पहले वर्ग की आवृत्ति

f_2 = बहुलक वर्ग के अगले वर्ग की आवृत्ति

उदाहरण 3.

वर्ग अन्तराल	**3-6**	**6-9**	**9-12**	**12-15**	**15-18**	**18-21**	**21-23**
आवृत्ति	**2**	**5**	**21**	**(23)f**	**10**	**12**	**3**

हलः यहां अधिकतम आवृत्ति 23 है, अतः बहुलक वर्ग 12-15 हुआ।

L_1 = 12

L_2 = 15

f = 23

f_1 = 21

f_2 = 10

सूत्र

$$M_0 = L_1 + \frac{f - f1}{2f - f1 - f2}\ (L_2 - L_1)$$

$$M_0 = 12 + \frac{23-21}{46-21-10}\ (15 - 11)$$

$$= 12 + \frac{2}{15} \times 3$$

$$= 12 + \frac{2}{5}$$

$$= 12 + 0.4$$

$$= 12.4$$

अभीष्ट बहुलक = 12.4

16.5.3 बहुलक के गुण

(1) इसका परिकलन आसान है तथा अधिकतर मान प्रेक्षण से ही मालूम हो जाता है।

(2) बहुलक अधिकतम आवृत्ति वाला पद होता है, अतः इसे प्रतिनिधि माध्य भी कहा जा सकता है।

(3) रेखा चित्र द्वारा भी इसे ज्ञात कर लिया जाता है।

(4) बहुलक पदमाला की अधिकतम घनत्व वाली आवृत्तियों को प्रदर्शित करता है।

(5) बहुलक एक समंक माला से सम्बन्धित किन्हीं भी दूसरे पद मूल्यों से प्रभावित नहीं होता।

(6) बहुलक की गणना शीघ्रता, सरलता एवं यथार्थता से की जा सकती है।

16.6.4 बहुलक के दोष

(1) बहुलक पर बीजगणित का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि इसकी गणना आवृत्तियों के आधार पर की जाती है।

(2) कभी-कभी इसे ज्ञात करना कठिन होता है, क्योंकि एक ही पदमाला में दो या अधिक बहुलक पद आ जाते हैं।

(3) इसमें सीमांत पदों को छोड़ दिया जाता है, अतः उन पदों का प्रतिनिधित्व समाप्त हो जाता है।

(4) बहुलक वर्गान्तरों में परिर्वतन के कारण परिवर्तित हो जाता है।

(5) यदि बहुलांक का मूल्य और कुल पदों की संख्या ज्ञात हो तो उनका गुणा करके समंक-माला में स्थित सभी पद मूल्यों के योग को ज्ञात नहीं किया जा सकता। बहुलांक की यह एक सांख्यिकीय दुर्बलता है।

16.7 सार-संक्षेप

इस इकाई में हमने सबसे पहले केन्द्रीय प्रवृत्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों की चर्चा की है। केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप का प्रयोग आंकड़ों के संक्षेपण के लिए किया जाता है। इसके पश्चात् माध्य, माध्यिका तथा बहुलक की विवेचना से यह स्पष्ट हुआ कि माध्य, माध्यिका तथा बहुलक उन प्रतिनिधि अंकों के द्योतक हैं जोकि अनेक आँकड़ों के मध्य की स्थिति को व्यक्त करते हैं और आँकडों की केन्द्रीय प्रवृत्ति क्या होगी, इसकी ओर संकेत करते हैं। माध्य सर्वाधिक प्रयोग किया जाने वाला औसत है। यह परिकलन में सरल एवं सभी प्रेक्षणों पर आधारित होता है। इसके पश्चात् इन तीनों की गणना विधि को विभिन्न सांख्यिकीय श्रेणियों के आधार पर विवेचित किया गया है। अंत में माध्य, माध्यिका तथा बहुलक की

उपयोगिताओं और दोषों की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया गया है कि वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए यह कितने उपयोगी हैं।

16.7 स्वप्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1- केन्द्रीय प्रवृत्तियों के मापन में माध्य सबसे अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय है। इसके माध्यम से आकड़ों के उन औसत मूल्यों का पता चलता है जो कि आकड़ों का प्रतिनिधित्व करते हैं। दैनिक जीवन में मध्यमान को औसत कहा जाता है। किसी पदमाला के योग में पदों की कुल संख्या का भाग दिया जाता है और जो भागफल प्राप्त होता है मध्यमान कहा जाता है।

क्लार्क तथा शिकाड़े के अनुसार, ''माध्य, सम्पूर्ण समंकों के समूह का विवरण देने वाली एकमात्र, संख्या प्राप्त करने का प्रयत्न है।''

किंग (W.I King) के अनुसार, ''समंकमाला के पदों के योग में उनकी संख्या के भाग देने पर जो अंक प्राप्त होता है, उसी को अंकगणितीय औसत अथवा माध्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

रीगलमैन एवं फ्रीसबी ने लिखा है, ''यह एक औसत है जो पद मूल्यों के जोड़ में उनकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।''

उपयुक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि माध्य एक ऐसा मूल्य है जो कि श्रेणी के समस्त मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि यह समंक श्रेणी के अन्तर्गत मध्य में ही स्थित होता है, अतः इसे केन्द्रीय प्रवृŸिा का माप कहा जाता है।

2. माध्यों की उपयोगिता या गुण या महत्व: माध्यों की उपयोगिता या गुणों या महत्व को निम्नांलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है:

(i) सरल आगणन- माध्य निकालना व समझना अन्य संख्यिकीय विधियों की तुलना में अत्यन्त सरल होता है। साधारण गणित के सूत्रों से माध्य आसानी से निकाले जा सकते हैं।

(ii) सुपरिभाषित- समान्तर माध्य पूरी तरह स्पष्ट और सुपरिभाषित होता है। जब हम सभी आँकड़ों के योग को आवृत्तियों की संख्या से भाग देते हैं तो हमें अंकगणितीय औसत प्राप्त होता है। इससे किसी भी प्रकार की अस्पष्टता नहीं होती है।

(iii) तुलनात्मक अध्ययन में उपयोगी- माध्य विभिन्न तथ्यों या आँकड़ों की तुलना करने में सहायता प्रदान करता है। माध्य समूह को संक्षिप्त रूप में प्रकट करता है, अतः तुलना कार्य सरल हो जाता है।

(iv) समग्र का प्रतिनिधित्व करना- माध्य एक ऐसी संख्या है जो सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधत्व करती है और सम्पूर्ण समूह की अधिकाधिक विशेषताओं को व्यक्त करती है।

(v) सांख्यिकीय विवेचन का आधार- माध्यों के द्वारा संकलित सामग्री से सांख्यिकीय विश्लेषण, विवेचन और निर्वचन आदि में बहुत मदद मिलती है। सांख्यिकीय विश्लेषण की अधिकाश क्रियाऐं जैसे- अपकिरण, सहसम्बन्ध सूचकांक आदि के विवेचन का आधार माध्य ही है।

(vi) निष्कर्षों में समानता- माध्य का एक विशेष गुण यह है कि इसे चाहे किसी भी पद्धति से निकाला जाये, उनसे प्राप्त होने वाले उत्तर सदैव समान होते हैं। इसी कारण समान्तर माध्य की प्रकृति अधिक स्पष्ट होती है।

3. माध्य के दोष

(i) केवल आवृत्तियों के आधार पर गणितीय माध्य को कल्पित करना मुश्किल होता है।

(ii) माध्य द्वारा गुणात्मक विशेषताओं से सम्बन्धित परिवर्तनों को स्पष्ट करना एक कठिन कार्य है।

(iii) माध्य के द्वारा जो मूल्य ज्ञात होते हैं वह एक सम्पूर्ण वर्ग का प्रतिनिधत्व नहीं कर पाते। इस दशा में माध्य से सम्बन्धित निष्कर्ष अव्यावहारिक हो जाते हैं।

(iv) माध्य समस्त तथ्यों का प्रतिनिधि रूप मात्र ही होता है। अतः इससे वास्तविक प्रवृत्तियों का पता नहीं चल पाता है, क्योंकि इससे कमी या वृद्धि का ज्ञान नहीं होता।

(v) प्रायः अंकगणितीय माध्य पूर्ण इकाईयों के रूप में नहीं निकलता। अविभाजित इकाईयों यथा- मनुष्यों, पशुओं और वाहनों आदि के सन्दर्भ में, यदि माध्य पूर्ण संख्या नहीं है तो इससे प्राप्त निष्कर्ष हास्यप्रद प्रतीत होते हैं।

4. माध्यिका या मध्यांक का अर्थ एवं परिभाषाएं: माध्यिका या मध्यांक वह पद मूल्य है जो कि आरोही (बढ़ते हुए) अथवा अवरोही (घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित किसी श्रेणी को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। इस प्रकार क्रमानुसार व्यवस्थित मूल्यों की श्रृंखला के मध्य के मूल्य का नाम ही माध्यिका है।

सेक्रिस्ट के अनुसार, ''पदमाला की मध्यिका वह वास्तविक या अनुमानित पद-मूल्य होता है, जो पदमाला को विस्तार के क्रम में व्यवस्थित करने पर उसे बराबर दो भागों में विभक्त कर देता है।''

कोनोर के अनुसार, ''माध्यिका समंक श्रेणी का वह पद मूल्य है जो समूह को दो भागों में इस प्रकार विभाजित करता है कि एक भाग में समस्त मूल्य मध्यिका से अधिक और दूसरे भाग में समस्त मूल्य मध्यिका से कम होते हैं।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है किसी पदमाला या श्रेणी को उतरते या चढ़ते क्रम में व्यवस्थित करने पर उसका मध्य मूल्य मध्यांक कहलाता है जो श्रेणी के पद-मूल्यों को दो बराबर भागों में बांट देता है। इस कारण मध्यिका से कम और अधिक वाले पद-मूल्य बराबर होते हैं।

16.8 अभ्यास-प्रश्न

1. माध्य से आप क्या समझते हैं? माध्य के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।
2. माध्यिका से आप क्या समझते हैं? माध्यिका के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।
3. बहुलक को परिभाषित करते हुए उसका आशय स्पष्ट कीजिए।
4. बहुलक के गुण एवं दोषों की विवेचना कीजिए।
5. निम्न सारणी में माध्य तथा बहुलक की गणना प्रत्यक्ष विधि द्वारा कीजिए।

वर्ग-अन्तराल	**50-60**	**60-70**	**70-80**	**80-90**	**90-100**	**100-110**
आवृति	**6**	**8**	**10**	**16**	**14**	**9**

16.9 पारिभाषिक शब्दावली

सिग्मा '$\sum$' - यह चिन्ह ग्रीक भाषा का है जिसका अर्थ कुल या योग होता है।

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप- एक ऐसे एकल मान द्वारा आँकड़ों को संक्षिप्त करता है, जो संपूर्ण आँकड़ों का प्रतिनिधित्व कर सकें।

बहुलक- वह मान है जो सबसे अधिक बार प्रकट होता है।

अंतराल- वर्ग विस्तार उच्च सीमा तथा निम्न सीमा के बीच का अंतर है।

मध्य बिन्दु - किसी वर्ग का मध्य मान होता है। यह वर्ग की निम्न वर्ग सीमा तथा उच्च वर्ग सीमा के बीच होता है।

16.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- राम आहूजा. 2005. सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान. रावत पब्लिकेशन्स. दिल्ली.
- जैन एम. बी. रिसर्च मैथडोलॉजी. रिसर्च पब्लिकेशन. जयपुर।
- त्रिवेदी व शुक्ला. मैथडोलॉजी. कालेज बुक डिपो .जयपुर.
- ज्योति वर्मा. 2007. सामाजिक सर्वेक्षण. डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस. नई दिल्ली।
- Bailey, Kenneth D. (1982). Methods of Social Research. The Free Press. New York.
- Mukundlal. (1958). Elementary Statistical Methods. Manoj Prakashan. Varanasi.
- Sanders, Donald. (1955). Statistics. McGraw Hill. New York.
- Singh, K. (1983**).** Techinques of method of Social Survey Research and Statistics, Prakashan Kendra, Lucknow